सिद्धार्थ

(महाकाव्य)

लेखक—

अनूप शर्मा एम० ए०, एल० टी०
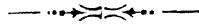
प्रकाशक—

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय

पहली बार

जुलाई १९३७

मूल्य तीन रुपया

मुद्रक—
रघुनाथ दिपाजी देसाई,
न्यू भारत प्रिंटिंग प्रेस,
६, केळेवाडी, गिरगाँव, बम्बई नं. ४.

' सिद्धार्थ'कार

पूजनीया माता
श्रीमती
सरस्वतीदेवीकी
पुण्य-स्मृतिमें

दो शब्द

मैंने अपने कालेज-जीवनमें कवि-श्रेष्ठ मैथ्यू अर्नाल्डका ‘ लाइट ऑफ एशिया ’ नामक काव्य पढ़ा था। उसका प्रभाव मेरे विचारोंपर उत्तरोत्तर बढ़ता गया। तदनन्तर बड़े प्रयत्नके बाद महाकवि अश्वघोषका बुद्ध-चरित भी प्राप्त हुआ जो अपूर्ण था। सात-आठ वर्ष पहले मुझे पं० रामचन्द्रजी शुक्ल-कृत ‘बुद्ध-चरित,’ जो व्रजभाषामें लिखा गया है, प्राप्त हुआ। उक्त तीनों ग्रन्थोंके पठन-पाठनका परिणाम आपके सम्मुख प्रस्तुत है।

यह आवश्यक नहीं है कि महाकाव्य-कार महाकवि ही हो। महाकवि क्या मुझे तो अपने कवि होनेमें भी शंका है। जिस चरित्रको लिखकर अश्वघोष, अर्नाल्ड आदि धन्य हुए उसको शिरोधार्य करना मात्र ही मेरा उद्देश्य रहा है।

इस ग्रन्थको आठ वर्ष पूर्व मैंने चार महीनेमें लिखा था, तदनन्तर, चार वर्ष तक यह मेरी अल्मारीमें कीटाणुओंसे मित्रता करता रहा। पुनः मैंने इसे कुछ कुछ संशोधित किया, कुछ घटाया-बढ़ाया भी, और फिर प्रतिलिपि करके रख दिया। गतवर्ष मुझे पाँच-छः महीनेका अवकाश सुलभ हुआ और मैं इसे वर्तमान स्वरूप दे सका।

ग्रन्थ समाप्त होनेपर प्रकाशनकी कठिनाई उपस्थित हुई। इतना बड़ा ग्रन्थ प्रकाशित करना, जैसा कि मैं चाहता था, व्यय-साध्य कार्य था, दूसरे यह कोई उपन्यास या गल्प-माला भी न थी जिससे जल्दी दाम वसूल होनेकी उम्मीद होती। इधर इसे ‘ पत्थरका अचार ’ बनाना भी उपयुक्त न था। जो दो-एक प्रकाशक मिले भी वे थे शून्यवादी। इसी उलझनमें था कि ‘ हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय ’ के मालिक श्रीयुत नाथूरामजी ‘प्रेमी ’ ने प्रकाशन-भार कृपया अपने ऊपर लेकर मेरी सहायता की और उनकी सहानुभूतिके फल-स्वरूप यह ग्रन्थ आपके सम्मुख प्रस्तुत किया गया।

मैं इतना और भी निवेदन कर देना अपना कर्तव्य समझता हूँ कि इस ग्रन्थको मैंने, जहाँतक हो सका है, शुद्ध खड़ी बोलीमें लिखनेका प्रयत्न किया है,—अर्थात् मिश्रित समास, उलटे समास, व्याकरण-असम्मत प्रयोग तथा व्रज-बोली अथवा अन्य किसी बोलीकी पुट इसमें आप बहुत कम पावेंगे। 'कवि और कविता' में जो व्यक्त किये गये हैं वे सभी विचार मेरे ही मस्तिष्ककी उपज हों, ऐसा नहीं है, परन्तु वे मुझे सर्वांशमें मान्य हैं। उक्त भावोंको व्यक्त करना मेरे लिए आवश्यक इसलिए भी था कि उनके वशवर्ती होकर मैंने यह काव्य रचा है।

यह काव्य केवल इसीलिए 'महाकाव्य' नहीं है कि इसमें प्राकृतिक दृश्यों, ऋतुओं आदिका वर्णन है,—जैसा कि हमारे ग्रन्थोंमें महाकाव्यके लक्षण दिये गये हैं, वरन् इसलिए भी कि इसमें मनुष्य-जीवनकी उन सभी घटनाओंका समावेश है जो उसके जीवनमें किसी न किसी समय आ उपस्थित होती हैं।

प्रश्न हो सकता है कि इस कार्यके लिए मैंने भगवान् बुद्धके चरित्रको ही क्यों चुना? हमारी भाषामें राम कृष्ण आदि महापुरुषों अथवा देवताओंके, या यों कहिए अवतारोंके, चरित्र प्रचुरतासे विद्यमान हैं, परन्तु एक तो वे बहुत पहलेके होनेके कारण पिष्ट-पेशित भी हो चुके हैं,—साथ ही वे पौराणिक आवरणमें इतने ढके हुए हैं कि, रामचरितमानसके पात्रोंको छोड़कर, उनको एक बुद्धि-सम्मत रूप देना कभी कभी हास्यास्पद हो जाता है। भगवान् बुद्धके चरित्रमें यह विशेषता है कि वह उत्तरोत्तर उन्नत होता चला गया है। हम उनके चरित्रमें मनुष्यकी आत्माका पूर्ण विकास पाते हैं। किस प्रकार एक विशुद्ध आत्मा संसारके घातोंसे प्रतिघात पाती हुई निःश्रेयसकी ओर बढ़ती है तथा किस प्रकार उसको सफलता प्राप्त होती है, यही बुद्ध-चरित्रकी विशेषता है। उनके चरित्रसे मैं बहुत ही अभिभूत हुआ हूँ क्योंकि वह सर्वथा निष्कलंक है।

अन्तमें, मैं उन सभी पूर्ववर्ती एवं सम-कालीन कवियोंका कृतज्ञ हूँ जिनके ग्रन्थोंको पढ़कर मेरी प्रतिभा उद्दीप्त हुई और जिनके ग्रन्थोंसे मैंने पूरा पूरा लाभ उठाया है।

'अनूप'

कवि और काव्य

ऐतिहासकोंने जिन्हें 'शौद्धोदनि' नामसे पुकारा, धार्मिकोंने जिन्हें 'सिद्ध,' 'महाबोधि' आदि पदोंसे विभूषित किया, नैयायिकोंने जिन्हें 'शाक्यमुनि' अवधानसे संबोधित किया, पौराणिकोंने जिन्हें 'मारजित्' उपाधिसे अलंकृत किया, वेदान्तियोंने जिन्हें 'षडभिज्ञ,' 'अद्वयवादी' आदि संज्ञाओंसे पहचाना, वही भगवान् बुद्ध कवियोंके लिए 'सिद्धार्थ,' 'तथागत,' 'समन्तभद्र' आदि रूपोंमें प्रकट हुए। इसमें क्या रहस्य है? ऐसा क्यों है?

बुद्ध भगवान् परम सुखका जीवन बिता रहे हैं। विवाह हुए अभी थोड़े ही दिन हुए हैं। विश्वका सारा शृंगार उनके महलोंमें केन्द्रीभूत हो रहा है। जब छद्मवेषिणी स्वर्कन्याएँ ही सेवामें निरत हैं तब यशोधराके रूप-सौन्दर्यका वर्णन ही कैसे हो सकता है? भोग-विलासका अक्षय्य भांडार भरा हुआ है। अपराह्नका समय है। भगवान् अलस-भावसे युक्त हैं। समीप ही गवाक्षमें एक वीणा रखी हुई है, उसमें एकाएक समीर-संचार होता है। वीणाके तार ध्वनित होने लगते हैं। उन्हीं तारोंसे 'सुर-संगीत' प्रकट होता है,—देवताओंका संदेश भगवानके हृदयमें हलचल उत्पन्न कर देता है,—गौतम 'गौतम बुद्ध' हो जाते हैं। यह कैसे? वीणा, संगीत, संदेश, वायु और वह?—इसके अन्तरंगमें क्या भेद निहित है?

जिन्हें काव्यके वास्तविक स्वरूपका ज्ञान है, जो काव्यकी आत्माको पहिचानते हैं, वे ही इस रहस्यकी उपलब्धि कर सकते हैं; और इस उपलब्धिमें ही उपर्युक्त प्रश्नोंका समाधान है।

काव्य-चित्रका अदृश्य भाग भी दर्शकोंको 'हृदयंगम' हो सकता है और बिना गायन-वादनकी क्रियाके भी काव्यके संगीतका आनन्द श्रोताओंको आन्दोलित कर सकता है। और यही अदृश्य चित्रण एवं अश्रुत संगीत काव्यकी आत्मा है। इस चित्रणमें वह रंग भी हैं जो 'ध्वनित' होते हैं और इस वीणामें केवल स्वरोंकी मधुरिमा ही नहीं वरन् उनकी संगति भी है। परंतु, यह माधुर्य्य केवल सहृदय-हृदयगम्य है। इने-गिने मर्म्मज्ञोंको ही इसका ठीक ठीक ज्ञान होता है।

अच्छा तो, इस कविताका स्वरूप क्या है?

कविताका स्वरूप निर्णय करना कठिन ही नहीं, असंभव भी है; क्योंकि, कविताका आश्रय न तो कोई पदार्थ है और न सिद्धान्त,—वह तो एक प्रकारकी मनःस्थिति है जो जितनी ही अधिक अधिगम्य है उतनी ही कम विवेचनीय। हाँ, साधारण रूपसे हम कह सकते हैं कि कविता एक ऐसी शक्ति है जो गद्य और पद्य दोनोंमें अनुभूत हो सकती है, जो केवल शब्दार्थोंमें ही नहीं वरन् स्वरोंमें भी वर्तमान रहती है और जो नादके अतिरिक्त उन दृश्योंसे भी अपना हृदय दिखलानेके लिए फूट निकलती है जो वास्तु एवं स्थापत्यद्वारा प्रदर्शित किये जाते हैं। ऐसी मन-स्थितिकी,—ऐसी शक्तिकी, परिभाषा न हो सकनेके कारण हमें उसका शुद्ध स्वरूप पहिचाननेके लिए अन्वय-व्यतिरेकसे काम लेना पड़ेगा और यह देखना पड़ेगा कि कौन-सी वस्तु कविता है और कौन-सी नहीं।

कविता विज्ञान नहीं है क्योंकि कविताका क्षेत्र भाव है और सहचरी श्रद्धा है; जब कि विज्ञानकी क्रीडा विचारपर निर्भर है जिसका कि सहचर विश्वास है। कविताके जिस स्वरूपका यहाँ वर्णन हो रहा है वह उपन्यासमें भी रहता है परंतु उपन्यास काव्य नहीं है। कविता केवल आलंकारिकता भी नहीं है क्योंकि आलंकारिकतामें सौन्दर्य ध्वनित होता है परन्तु कवितामें तो वह प्रतिध्वनित होता है और वह भी इस प्रकारसे जैसे किसी किसी समय बीनके 'जोड़' से ऐसे स्वर कानमें आते हैं जिनके वादन-मुहूर्तका ज्ञान तक हमको नहीं होता। आलंकारिक जो कुछ कहता है श्रोताओंसे कहता है और कवि 'स्वान्तः सुखाय' अपने भावोंको अपने आपपर ही प्रदर्शित करता है, जैसे कोई रजनीकी निस्तब्धतामें जंगलमें बाँसुरी बजाकर मस्त हो रहा हो। कविताद्वारा हम अपने भाव अपनेसे ही कहते हैं, आलंकारिकतासे हम अपना प्रभाव दूसरोंपर डालते हैं।

कविता 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' की समष्टि है क्योंकि यदि सत्यता न हो तो रसका परिपाक नहीं हो सकता, सौन्दर्य न हो तो आलंकारिकता नहीं आवेगी और कल्याणकारिता न होगी तो कवियोंको अन्य सांसारिक सफलता प्रायः प्राप्त होने न पर भी उन्हें 'सद्यः परिनिर्वृतये' का पाठ कौन पढ़ावेगा ?

इन तीनों गुणोंमें सौन्दर्य्य प्रधान है; क्योंकि, कविताका धर्म आनन्द देकर हृदयको सुसंस्कृत और उत्तेजित करना है और आनन्दके अत्यधिक स्वरूपको ही सौन्दर्य्यके नामसे पुकारा जाता है। अन्य ललित कलाओंके समान कविताका चरम उद्देश्य आनन्द प्रदान करना है और संसारमें मनुष्य-जीवनको किस प्रकार सुखी बनाया जाय, इस समस्याको सुलझाना है। कवितामें माधुर्य आदि गुण सत्य और सुन्दरको पर्य्याय बना देते हैं और यही कारण है कि वेदनात्मक चित्रण भी आनन्द-प्रद और सुखावह हो जाता है।

कविता जब सभी प्रकारका सौन्दर्य्य-चित्रण करती है तो शब्द-सौन्दर्य भी उससे बाह्य नहीं है और इसी कारण हमारे आचार्योंने अलंकारशास्त्रको काव्य-शास्त्रका एक

प्रधान अंग मान लिया है। सौन्दर्य अनेक प्रकारसे एक निश्चित गतिसे आविर्भूत होता है और उस परम गतिसे समन्वित एकतामें विभिन्नता तथा विभिन्नतामें एकताकी अवस्थाएँ कविताको चरम सीमापर पहुँचा देती हैं जिससे वह 'लोकोत्तरानन्दविधायिनी' हो जाती है।

मनुष्य एक प्रकारका वादन-यन्त्र है जिसपर सांसारिक घटनाओंके घात-प्रतिघात अपना अलग ही स्वर छेड़ते हैं; (परन्तु हाँ, मनुष्य और वादन-यंत्रमें एक भेद भी है। पहला चेतन है और दूसरा जड़। पहलेमें, अर्थात् मनुष्यमें, एक ताल या स्वर-सिद्धान्त निहित है जो आन्तरिक घात-प्रतिघातसे उत्तेजित हो उठता है, दूसरेमें नहीं।) एक बालक अथवा एक अशिक्षित मनुष्य बाजेके स्वर-तालको न जानते हुए भी जब बैण्ड या और कोई बाजा बजता सुनता है तो दूर ही खड़ा खड़ा अपने पाँवकी एड़ीसे भूमिपर ताल देने लगता है। इसका कारण उस स्वरसिद्धान्तके प्रति अनूकूलता है जो मनुष्यको सहृदय बनाती है।

सामाजिक बंधन अथवा वह नियम, जिनके वशवर्ती होकर मनुष्य-समाज एक विशेष परिस्थितिमें पहुँच जाता है, सहवासकी भावनाको और भी उत्तेजन देते हैं। समता, एकता, विभिन्नता, विरोध, पारस्परिक आदान-प्रदान आदि भाव मनुष्यको सामाजिक बनाते हैं और उपर्युक्त भावोंका किसी समाजमें एक उचित मात्रामें वर्तमान रहना उस समाजकी नैतिक उच्च स्थितिका द्योतक है तथा उन्हींके कारण हमें अनुभूतिमें आनन्द, भावोंमें नैतिकता, कलामें सौन्दर्य, विचारमें सत्यता तथा पारस्परिक आनन्द-प्रदानमें प्रेम देख पड़ता है। समाजमें जब एक मनुष्य दूसरेके राग एवं आनन्दका विषय हो जाता है तब उसके भाव और भी अधिक उत्तेजित हो उठते हैं; क्योंकि, तब उसे एक जड़ बाजेपर नहीं वरन् चेतन हृदयके घात-प्रतिघातसे अभिभूत होना पड़ता है; फलतः भाषा, भाव-भंगी एवं इंगित आदि माध्यम बन जाते हैं जो अभिव्यंजनाके परम साधन हैं और यही कविता और ललित कलाओंके प्रधान विषय हैं।

साधारणतया कविताकी परिभाषा करनेवाले लोग उसे कल्पनाका एक स्वरूप मानते हैं। अतएव, अब देखना यह है कि कल्पना यह खेल कैसे खेलती है।

गायन-वादनके प्रत्येक प्रकारमें एक नियम,—एक rhythm, निहित है जो नाचने, गाने और भाषामें सर्वत्र प्रकट होता है और जिसके वशवर्ती होकर श्रोताको विशेष आनन्द प्राप्त होता है। उक्त नियमके अनुकूल जो भाव मनुष्यमें उत्पन्न होता है वह 'अभिरुचि'के नामसे पुकारा जाता है। ललित कलाओंके प्रारम्भिक रूपमें सभी मनुष्य एक ऐसे ही नियमका अनुभव करते हैं और वह नियम ऐसा होता है जिससे अधिकाधिक आनन्द प्राप्त हो सके। उस नियमके अन्तर्गत जो विभिन्नता होती है उसको पहिचानना बहुत ही कठिन है, विशेषतया तब जब कि उक्त प्रवृत्ति अधिकसे अधिक मात्रामें न हो। वह नियम सौन्दर्यमय है और जिस मनुष्यमें वह अधिकसे अधिक मात्रामें पाया जाता है वह 'कवि' कहलाता है। इसीलिए, प्राथमिक कवियोंके शब्द अधिक आलंकारिक होते थे

क्योंकि सांसारिक वस्तुओंको इस प्रकार सम्बद्ध करना और इस प्रकारसे एक दूसरेकी सुसङ्गति या तारतम्य बतलाना, जैसा कभी नहीं बताया गया है, कालान्तरमें वह मानसिक स्थिति उत्पन्न कर देता है जिसके कारण भाव-चित्र भाव-चिह्नमें परिवर्तित हो जाते हैं। फलतः, यदि पुनः अच्छे कवि न उत्पन्न हुए तो भाषाकी अभिव्यंजना-शक्ति रुक जाती है। इसीलिए कहा गया है कि, समाजकी प्राथमिक स्थितियोंमें प्रत्येक लेखक कवि होता था; और अब भी अनुभूत होता है कि प्रत्येक नवयुवक कुछ न कुछ काव्यमय भाव रखता है। अपनी प्राथमिक स्थितिमें समाजके तथा नवयौवनमें मनुष्यके भाव निकटतः एक ही होते हैं क्योंकि भाव एवं भाषा उस समय काव्यमय हो जाती है।

कवि किसे कहते हैं ? उसका कार्य क्या है ? वह किसे संबोधित करता है और उसे किस प्रकारके माध्यम अर्थात् भाषाद्वारा सम्बोधित करना चाहिए ?—कविमें भावना-शक्ति अन्य मनुष्योंसे अधिक तीव्र होती है, उसका उत्साह और जीवनके प्रति भाव अधिक उत्तेजित होता है, उसकी आत्मा अधिक उदार और विस्तृत होती है और वह जो कुछ कहता है अपनेको या अपने जैसे दूसरे मनुष्यको संबोधित करके व्यक्त करता है। वह अपनी ही रागात्मिका प्रवृत्तियोंमें मग्न रहता है, जीवनके विविध अंगोंपर वह अपनी तीव्र दृष्टि डालता है, संसारकी गतिमें जो मानव-प्रवृत्तियाँ उत्पन्न होती हैं उनको वह वाणी देता है और जो अदृश्य रहती हैं उनको प्रकाशमें लाता है। साथ ही साथ उसमें एक और प्रवृत्ति होती है जो अ-कवि मनुष्योंमें नहीं पाई जाती,—वह अनुपस्थित भावोंका भी चित्रण करता है और इस प्रकारसे करता है जैसे वे उपस्थित ही हों। वह उन भावोंको भी व्यक्त करता है जो केवल दूसरे लोगोंद्वारा ही अनुभूत हुए हों और इसीलिए उसमें अभिव्यंजना इतनी अधिक मात्रामें उत्पन्न हो जाती है कि वह उन भावोंको, कारण न होते हुए भी, अपने हृदयमें उत्पन्न कर सकता है। इस तरह, कविको सर्व-भूत-हृदय बनना पड़ता है।

कविके हृदयमें सौन्दर्यकी पूर्णता भरी रहती है। वह सौन्दर्यके शाश्वत स्वरूपको पहिचानता है। जहाँ सहृदय श्रोताओंमें केवल भावयित्री प्रतिभा होती है वहाँ कविमें कारयित्री प्रतिभा होती है जो उसी वृक्षके उसी बीजको उसी रूपमें उगाते हुए भी विभिन्नता और नवीनता प्रदान कर देती है और, साथ ही, मनुष्यमें जो कुछ पवित्रता है अथवा निसर्गमें जो कुछ नैतिकता है उसके साथ पूर्ण सहानुभूति और सहज सद्भाव प्रकट करते हुए महत्ता और उदारताको पूर्ण आदर देती है।—यही नहीं, सारे संसारके सौन्दर्य और महत्ताको एकत्रित करके वह एक अपना ही संसार खड़ा करती है। इस प्रकार अपने लोकका निर्माण करके कवि संस्कृत और ओजस्वी माध्यमद्वारा सहृदय पुरुषोंको आकृष्ट करके उसमें बसाता है। मनुष्योंको आकर्षित करनेके लिए वह अलंकारोंका प्रयोग करता है क्योंकि साधारण शब्द इतने निर्बल होते हैं कि वे गंभीर और

उदार भावोंका भार वहन नहीं कर सकते। साथ ही, अमूर्त भावोंको साकार करनेका और साधन ही नहीं है इसलिए अलंकारोंका साधन गौण होते हुए भी अनिवार्य हो जाता है। इस दृष्टिसे यह भी कहा जा सकता है कि छन्दका आवरण भी उचित रूपसे ही काव्यपर चढ़ाया गया है क्योंकि छन्द कविके अन्तर्नादका बाह्य स्वरूप है। अतएव, छन्दका प्रयोग भी कविकी प्रतिभाका परिचायक है न कि बाधक, क्योंकि कवि उसे अपनी स्वतंत्र बुद्धिसे प्रयुक्त करता है। वह शाश्वत गान, जो कविके हृदयमें ध्वनित हो रहा है, अलंकारके वायु द्वारा संचालित होकर छन्दकी भित्तिपर प्रतिध्वनित होता है। कविता संगीतमय विचार है और कवि वह है जो संगीतमय ढंगसे सोच सकता है।

कवियोंके मस्तिष्ककी बनावट ही दूसरी होती है। उनके विचार और भाव रसोद्रेक-द्वारा एक दूसरेसे संबद्ध रहते हैं। यही सचे कविकी पहिचान है कि उनके जीवनमें उपर्युक्त सिद्धान्त अनवरत कार्य करता रहता है। और, जिन्होंने केवल अभ्यासद्वारा कविता सीखी है उनके लिए कविता करना एक गौण बात है। ऐसे कवि पहले अपने भावोंको गद्यमें नियत कर लेते हैं और फिर पद्यमें बदल देते हैं। परन्तु, सच्चा कवि अपने विषयको कवितामें ही देखता है। अभ्यासद्वारा कविता करनेवाले कवियोंकी कृतियोंमें विचारकी प्रधानता होती है,—अलंकारसे रस दब जाता है, क्योंकि उनका तो एकमात्र उद्देश्य यही है कि वह भावोंके आवरणमें अपने विचार उपस्थित करें; परन्तु, सहजकविकी कवितामें रसका अतिरेक होता है। वह विचारोंको गौण स्थान देता है। उसकी कृतिमें अलंकारोंको विशिष्ट स्थान नहीं मिलता। वह तो अपने भाव-प्रवाहमें विचारोंको बहा देता है। सचे कविकी पहिचान उसके विचारोंसे नहीं की जाती (अन्यथा महात्मा सुन्दरदास बिहारीसे अच्छे कवि कहे जायँगे) परन्तु जब उसके भाव रससे परिपुष्ट होकर अप्रतिहत गतिसे प्रवाहित होते हैं तभी वह सच्चा कवि कहा जाता है। उसका एक भाव ही दूसरे भावको जन्म देता है और दोनों एक साथ मिलकर तीसरेकी उत्पत्ति करते हैं; और इसी प्रकारसे काव्य-प्रवाह बह निकलता है। वह जब ऐसे शब्दोंका प्रयोग करता है अथवा ऐसी विचार-शैली प्रदर्शित करता है जिसे हम अपनी उत्तेजित मनोवृत्तिके समय प्रयुक्त करते हैं तब वह कविताकी भाषामें बोलता है।

अतएव, कल्पनाद्वारा उत्तेजित घटना-चक्र और घटना-चक्रद्वारा उद्भासित कल्पना, इन दोनोंका आधिक्य एक महाकविके लक्षण हैं। विचार और भाव द्वितीयश्रेणीके कवियोंके, तथा उक्ति तृतीय श्रेणीके कवियोंके, लक्षण कहे जा सकते हैं। क्योंकि, हमें स्मरण रखना चाहिए कि तुलसीदास इसलिए महाकवि हैं कि उनमें कथाकी काव्यात्मक घटनाओंको देख लेनेकी शक्ति है और देखते भी, इस प्रकार हैं जैसे वे वहाँ-पर उपस्थित ही हों। घटना ही नहीं, उसका वातावरण भी उनके मनोमंडलमें वर्तमान रहता है और वे जिस वस्तु या चरित्रका चित्रण करते हैं उसके प्रति उनका पूर्ण परिचय और सहानुभूति होती है। यही काव्य-गत सत्यता है। इस सत्यताका जितना ही

अधिक अंश जिस कविकी कृतिमें होगा वह उतना ही बड़ा कवि होगा। महाकवि वह है जिसकी कवितामें विचार, भाव, व्यक्तित्व, कल्पना, प्रवाह आदि अत्यधिक मात्रामें उपस्थित हों। ऐसे कवि विश्व-कवि कहे जाते हैं,—इसलिए नहीं कि वे सारे संसारमें प्रसिद्ध है, वरन् इसलिए कि सारा संसार उनमें उपस्थित है।

कवियोंकी महत्ता उनकी मौलिकतासे नापी जाती है। मौलिकताका यह अर्थ नहीं है कि कवि अन्य मनुष्योंसे भिन्न हृदय रखता हो। कवि मानव-समाजमें रहता है, घटना-चक्रों और पात्रोंके मध्यमें विचरण करता है और मनस्तुष्टिके लिए उनका चित्रण करता है। उसकी दशा उस मकड़ीकी भाँति होती है जो अपने पेटसे जाला निकाल कर एक चक्र बना देती है। सभी स्थपति, चाहे जैसा उनको मकान बनाना हो, ईंट चूनेका प्रयोग तो करेंगे ही। इसीलिए, कहा गया है कि, सर्वोत्तम प्रतिभाशाली कवि सारे संसारका ऋणी होता है। कवि कोई विक्षिप्त मनुष्य नहीं होता जो, जो कुछ हृदयमें आवे, व्यक्त करता जाय; वरन् उसका हृदय देश और कालके द्वारा सीमित तथा मर्य्यादित होता है। कवि प्रभात-कालमें उठकर यह नहीं सोचता कि आज मैं नवीन छन्द गढूँगा, आज मैं एक नवीन अलंकारका प्रयोग करूँगा, आज मैं ऐसा भाव सोच निकालूँगा जिसे आज तक त्रैलोक्यमें किसीने न सोच पाया हो इत्यादि, वरन् वह तो उस समय अपनेको विचार-प्रवाहमें बहता हुआ पाता है और वह प्रवाह समकालीन आवश्यकताओंसे प्रवाहित होता है। कवि उसी मार्गका अनुसरण करता है जिसपर सबकी दृष्टि पड़ती है और उसी दिशाको जाता है जिधर समाजका आदर्श निर्देश करता है।

प्रत्येक महाकविको साधन एकत्रित किये हुए मिलते हैं और वह उनका उपयोग सत्यता एवं सहानुभूतिके साथ करता है। 'नाना-पुराण-निगमागम-सम्मतं' तो उसके सम्मुख रहता ही है, साथ ही 'क्वचिदन्यतोऽपि' उसे एकत्रित किया हुआ मिल जाता है। उसे कुछ भी ढूँढ़ने नहीं जाना पड़ता। अत्युक्ति न होगी यदि कहा जाय कि एक महाकवि अपनी सारी भाव-संपत्ति संसारसे इकट्ठा करता है क्योंकि उसका हृदय जनताके विचार-प्रवाहका माध्यम है। सारा संसार उसीका कार्य करता है और वह अपने मस्तिष्कके माध्यमद्वारा सारे प्राणियोंके विचार व्यक्त करता है। तुलसीदासका उदाहरण सम्मुख है। हिन्दीमें उनकी श्रेणीका कोई महाकाव्यकार हुआ ही नहीं, वरन् उनको तो अन्य-भाषा-भाषियोंतकने विश्व-कवि माना है। परन्तु, यदि आप रामचरितमानसको तुलनात्मक दृष्टिसे देखें तो आपको ज्ञात हो जायगा कि गोस्वामीजीने अपने पूर्ववर्ती रामायण-कारोंके उत्तमोत्तम भावोंको मुक्तकंठ होकर अपनाया है,—ऐसा कुछ लिखा ही नहीं जो पूर्ववर्ती कवियोंकी दृष्टिमें न आया हो। इसपर भी संसार उन्हें महाकवि कहता है, और ठीक कहता है। रामायण तथा महाभारतके परवर्ती कवियोंमें सर्व-प्रथम अश्वघोष ही महाकाव्य-कार माने जाते हैं, उनके अनन्तर कालिदास। अश्वघोषकी छाप स्पष्टरूपसे कालिदासपर पड़ी

है। इन दोनों महाकवियोंकी कृतियोंमें साम्य प्रायः सर्वत्र ही विद्यमान है। फिर भी, कालिदास 'कविकुलगुरु' की उपाधिसे विभूषित किये गये हैं। यदि उनके पूर्ववर्ती अश्वघोषके अतिरिक्त अन्य कवियोंकी कृतियाँ उपलब्ध होतीं तो पता चल जाता कि कालिदासपर अन्य कितने कवियोंका प्रभाव पड़ा।

यह सब होते हुए भी महाकवियोंने अपनी वर्णनातीत गुप्त शक्तियोंके द्वारा न केवल भाषा, संगीत, नृत्य, वाद्य आदिका ही आविष्कार किया वरन् उन्होंने समाजकी व्यवस्था भी ठीक की, सत्य और न्यायको साकार किया, जीवन-संबंधी कलाओंका आविष्कार किया तथा धर्मके अनेक अस्पष्ट अंगोंको प्रकाशमें लाकर उनमें सत्य और सौन्दर्यका आभास दिखलाया। इसीलिए, सभी धर्मोंके सिद्धान्तोंकी भाषा आलंकारिक है। कवियोंने मानव-जीवनके नैतिक अंगोंको ही संयत नहीं किया है वरन् धर्मके सिद्धान्तोंको भी ढूँढ़ निकाला है। वह केवल वर्तमान ही नहीं देखते और न केवल वर्तमान प्रगतियोंकी निश्चित दिशा ही खोजते हैं वरन् भविष्यको भी वर्तमानके हृदयमें देखते हैं और उनके विचार आधुनिक समयके अनुकूल एवं उसीके फल-स्वरूप होते हैं। कवि अपने समयका प्रतिनिधि होता है। वह अपने सम-सामयिक समाजकी मनस्तुष्टि उन प्रश्नोंका उत्तर देकर करता है जो उत्तरके लिए प्रत्येक हृदयके कपाट खटखटाया करते हैं,—जैसे जीवन और मृत्यु, प्रेम और द्वेष, सम्पत्ति और निर्धनता; जीवन-साफल्य,—सफलताके साधन आदि क्या हैं, कैसे प्राप्त होते हैं, मनुष्य-जीवनमें इनका स्थान क्या है, आदि आदि।

कविता और समाजमें घनिष्ठ संबंध है। यद्यपि कविता किस प्रकार अपना प्रभाव प्रकट करती है, यह जानना कठिन है, क्योंकि, उसका प्रभाव लोकोत्तर एवं अलक्ष्य होता है; फिर भी, वह सदैव लोकोत्तर आनन्दकी देनेवाली है और समाजके मनुष्योंपर इसका बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है और श्रोतागण इसके आनन्द-युक्त ज्ञानसे लाभ उठाते हैं। जिस प्रकार मानसरोवरमें हंस अपनी ध्वनिसे पर्वत-शिखरोंको निनादित करता रहता है उसी प्रकार कवि भी स्वच्छन्द विचरण करके अपने काव्यसे मानव-हृदयोंको उच्च और विशाल बनाता रहता है। वाल्मीकि-आश्रममें लव-कुशद्वारा पठित रामायणका प्रभाव वनसे फूट निकला और सारे संसारमें फैल गया। आदि-काव्यमें प्राचीन भारतके आदर्शोंकी रक्षा की गई। हमें कुछ भी संदेह नहीं है कि जिन जिन महापुरुषोंने प्राचीन समयमें रामायणका पारायण किया होगा वह अवश्य ही राम, भरत आदिके चरित्रोंसे इतने अभिभूत हुए होंगे कि वे उन्हींके चरित्रोंके अनु-करणमें लग गये होंगे,—उन्होंने जाना होगा कि हनुमानकी मैत्रीमें क्या सत्य और सौन्दर्य था, भरतकी भक्तिका गाम्भीर्य्य कितना था। इससे श्रोताओंके मनोभाव विशाल और उदार हुए होंगे, और उनकी पूर्ण सहानुभूति विविध पात्रोंके प्रति आदर और सद्भाव उत्पन्न करती होगी,—यहाँ तक कि सहानुभूति अनुकरणमें परिवर्तित हो गई

होगी और अनुकरणद्वारा उन्होंने अपने आदर्शके प्रति तदाकार वृत्ति प्राप्त की होगी। कविता मानव-हृदयको उच्च और विशाल बनाती है क्योंकि कविताद्वारा हृदयको भाव, विचार और तुष्टि प्राप्त होती है। कविता श्रोताकी आँखोंपरसे परदा उठा देती है जिससे वह संसारके गूढ़ सौन्दर्य्यको देखने लगता है और अपरिचित वस्तुओंको इस प्रकार देखता है मानो वह परिचित ही रही हों। कविता हमारी कल्पनाके वृत्तको विस्तृत करती है, उसमें नवीन आनंदके विचार भरती है तथा हमारी भावनाओंको और भी अधिक उत्तेजित करती है। अतएव, कविका यह परम कर्तव्य है कि वह हमारे हृदयमें सार्वभौम भावनाएँ भरे।

अब प्रश्न उठता है कि कविको कैसे भाव काव्य-बद्ध करने चाहिए? अथवा, सभी देशों तथा सभी कालोंमें कविताके शाश्वत विषय क्या रहे हैं? जीवनकी घटनाएँ और मनुष्य-जीवनका घटना-चक्र, इनमें मानव-अभिरुचि स्वभावतः देखी गई है और कवियोंद्वारा इनका वर्णन अत्यन्त आकर्षक ढंगसे किया गया है। यह घटना-चक्र क्या है?

वे कार्य या घटनाएँ, जो मनुष्यकी मौलिक भावनाओंपर अपना पूर्ण प्रभाव डालती हैं, मनुष्य-जीवनमें सर्वत्र विद्यमान रहती हैं और समयका इनपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। चूँकि यह भावनाएँ शाश्वत और समान हैं, इसलिए, कविताके विषय भी शाश्वत और समान हैं। अतएव, किसी घटनाके प्राचीन या आधुनिक होनेसे कवितापर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता। जो कुछ उच्च और महान है वह हमारे हृदयको रुचिकर प्रतीत होता है और जो कुछ रुचिकर है वह काव्यका विषय है। सहस्रों वर्ष पुराने घटना-स्थल, यदि वह महत्त्वपूर्ण हैं तो, आधुनिक कालमें भी उन सहस्रों घटनाओंसे अधिक रुचिकर होंगे जो उतने महत्त्वकी नहीं हैं। यद्यपि, आधुनिक विषय आधुनिक भाव और भाषाद्वारा व्यक्त किये जाते हैं, और उनमें कथित विचार प्रायः आधुनिक होनेके कारण परिचित ही होते हैं, तथापि, उनका इतना प्रभाव इसलिए नहीं होता कि वे क्षणिक और एकदेशीय भावोंको प्रदर्शित करते हैं; परन्तु, कविता हमारी शाश्वत भावनाओंको उत्तेजित करती है और जो काव्य सार्वभौम भावोंसे ओत-प्रोत होगा वह इसीलिए श्रेष्ठ माना जायगा। लिखनेका तात्पर्य यह नहीं है कि प्रत्येक कविको अपनी कविताका विषय पौराणिक ग्रन्थोंसे ही लेना चाहिए। नहीं, कहनेका उद्देश्य यह है कि कविको ऐसे विषय चुनने चाहिए जो सार्वभौम हों, अर्थात् सबको रुचिकर हो सकें, महान् एवं प्रभावशाली हों,—अर्थात् श्रोता या पाठकके चरित्रपर उनका प्रभाव उन्नायक हो। एकदेशीय विषयोंपर भी उत्तमोत्तम कविता भले ही की जा सके परन्तु यदि प्रतिभाका इस प्रकार अपव्यय न किया जाय तो बहुत अच्छा।

प्रश्न उठ सकता है कि कविताका कौन-सा प्रकार सर्वश्रेष्ठ है? उत्तर है कि महाकाव्य। क्योंकि (१) इसमें सर्वांगीन जीवनकी झलक रहती है (२) इसमें शृंगार,

शान्त, वीर आदि रस प्रधान होते हैं (३) इसमें धर्म, अर्थ, काम और मोक्षका वर्णन होता है (४) यह सम्पूर्ण रूपसे लिखा जाता है (५) इसमें प्राकृतिक दृश्योंका वर्णन होता है (६) इसमें मानव-चरित्रका चित्रण किया जाता है (७) इसमें उपन्यास और नाटकके सभी तत्त्व विद्यमान रहते हैं।

क्या प्रत्येक महाकाव्य-कार महाकवि है ?—ऐसा नहीं है। महाकवि वही है जो मनुष्य-जीवनके नैतिक पक्षको अक्षुण्ण रखे, जो अपने साधन तथा उद्देश्यमें सतर्क रहे, तथा जो सांसारिक वर्णन इसलिए न करे कि स्वयं या दूसरे आश्चर्य-चकित हों वरन् इसलिए कि सब लोग कविताका आनंद उठा सकें, अपना चरित्र उन्नत कर सकें, हृदय विशाल कर सकें और मस्तिष्कको गंभीर बना सकें। सच्ची कविता अथवा सच्चे कवि जीवन-श्रमको दूर करते हैं, सांसारिक दुःखोंको सहनीय बनाते हैं, निर्जन निवासको भी नंदन-काननमें परिवर्तित करते हैं, तथा हम जो कुछ देखते-सुनते हैं उसमें आनन्द और सौन्दर्यका आभास उन्हींकी कृपासे प्राप्त होता है। उनका काव्य संगीतमय होता है, अर्थात् उनके काव्यमें जो विचार सन्निविष्ट होते हैं उनकी पहुँच उनके अन्तस्तल तक होती है,—वे उस गांभीर्यमें छिपा हुआ रहस्य निकाल लेते हैं। और वह रहस्य एक प्रकारसे संगीतमय होता है, क्योंकि मानव-जीवनकी प्रत्येक अन्तरंग भावना सहज ही संगीतमें व्यक्त होती है।

सारांश, प्रत्येक गंभीर विचार संगीतमय होता है क्योंकि निसर्गका हृदय ही संगीतसे ओत-प्रोत है। हाँ, सुननेकी योग्यता चाहिए। वह संगीतमय भाव एक प्रकारका अनाहत नाद है जो हमें अनन्त भावनाके निकट पहुँचा देता है और एक क्षणके लिए अनादि रसका आस्वाद उत्पन्न कर देता है।

महाकविके हृदयमें क्या क्या छिपा रहता है, उसकी संगीतमयता कहाँ तक ध्वनित होती है और कहाँ तक मूक वेदना-मात्र रहती है, यह हमें नहीं ज्ञात होता। उसके विचार वृक्षकी जड़ें हैं जो शेषनागके सिरपर तक चली गई हैं। पल्लव-वितान ऊँचा है परन्तु मूल उससे भी अधिक गहरा। महाकवि जो कुछ कहता है वह तो विशाल होता ही है, जो नहीं कहता है वह अनुमानके द्वारा भी कठिनाईसे ग्राह्य होता है; उसकी वाचालता उच्च होती है और निश्शब्दता उससे भी अधिक गंभीर और उच्चतर। उसका काव्य प्रतिध्वनित करता है कि प्रकृतिमें अनेक प्रकारका सौन्दर्य विद्यमान है और सहस्रों प्रकारके दिव्य भाव दिखाई देते हैं,—इन देवताओंकी भक्ति जो जितना जी चाहे करके अपने उद्देश्यकी पूर्ति कर ले। महाकवियोंकी महत्ताका विचार सहसा यह धारणा उत्पन्न करता है कि संसारको अकबरकी उतनी आवश्यकता नहीं जितनी कि तुलसीकी। हमें राजनीतिक मुक्ति नहीं चाहिए, स्वराज्य नहीं चाहिए, हमें तो एक तुलसी चाहिए जो हमें जीवन्मुक्त बना सके।

महाकविकी कृति कठिनसे कठिन और सरलसे सरल होती है। तुलसी बड़े ही गंभीर साहित्य-कार हैं, परन्तु हैं सभीकी पहुँचके भीतर। उनमें कल्पना और कौशल

चरम सीमाको पहुँच चुके हैं। परन्तु उनकी 'शक्ति'ने अपना प्रदर्शन कभी नहीं किया और न उन्होंने केवल एक ही राग अलापा। उन्होंने जीवनके विभिन्न अंगोंपर पूर्णतया दृष्टि-निक्षेप किया। एक महाकविकी कवितामें कोई विचित्रता नहीं होती, कोई अद्भुतता नहीं होती,—वहाँ तो जो होना चाहिए वही होता है। उच्चको वह उच्च और नीचको नीच ही कहता है। परन्तु, वह ऐसा शक्तिशाली अवश्य होता है जैसी कि प्रकृति,—जो कुछ ही देरमें मरुस्थलकी रेणुका पर्वत-शिखरपर पहुँचा देती है और समुद्रके जलको वायुके रथपर बिठा देती है। महाकवि संध्याके भ्रू-भंग और प्रभातके स्मितका चित्रण समान ढंगसे करता है।

भाषा, वर्ण, स्वरूप, धर्म तथा सामाजिक नियम आदि सभी कविताके उपकरण हैं। परन्तु, यदि हम कविताको एक सीमित वस्तु मानते हैं तो कहना पड़ेगा कि काव्य शब्दोंका, अथवा भावोंका, एक विशेष आरोहावरोह, संगति, संक्रम या तारतम्य है जो मानव-हृदयके किसी गूढ़ अन्तस्तलसे उत्पन्न होता है और जिसकी उत्पत्ति भाषाकी प्रकृतिसे संबंध रखती है और भाषाकी प्रकृति हमारे राग-द्वेष, सुख-दुःख आदिसे संबद्ध होनेके कारण नाना प्रकारके आवरण धारण करती है। भाषा कल्पनाकी कन्या है जो विचारके साथ विवाहित की गई है। भाषा भाव तथा उसके अभिव्यंजनकी एकमात्र माध्यम है। ध्वनि, विचार और भाव पारस्परिक संबंध रखते हैं,—एकका प्रभाव दूसरेपर पड़ता है। इसीलिए, कवियोंकी भाषामें एक प्रकारकी समता और स्वरैकता सर्वत्र पाई जाती हैं जिसके विना वह भाषा काव्य-भाषा नहीं रह जाती। वह भावकी अभिव्यंजनापर भी अपना अत्यधिक प्रभाव डालती है,—यहाँ तक कि कविताको एक भाषासे दूसरी भाषामें अनूदित करना असंभव हो जाता है। कविताको भाषान्तरित करना कमलके पुष्पको जलाकर उसका सुवर्ण निकालना है।

काव्यमें बारबार एक विशेष प्रकारकी ध्वनि . या शब्दका उत्पन्न होना, और कविताका संगीतसे घनिष्ठ संबंध होना,—इन दो कारणोंने छन्दकी उत्पत्ति की है यद्यपि यह आवश्यक नहीं है कि कविता छन्दोबद्ध ही हो। छन्दोबद्ध रचनाको ही यदि हम काव्य मानें तो कादम्बरी-कारको कोई कवि ही नहीं कहेगा और फिर 'वाणोच्छिष्टं जगत्सर्वं' झूठा पड़ जायगा, दशकुमार-चरितके 'पद-लालित्य'का कोई मूल्य ही नहीं रह जायगा और दंडीको आचार्य मानना ही एकदेशीय हो जायगा।

सारांशतः सार्वदेशीय भावोंसे युक्त मनुष्य-जीवनकी झलकका नाम कविता है। मानव-प्रकृतिमें गूढ़ तत्त्वों एवं नियमोंका याथातथ्य व्यक्तीकरण कविताका मुख्य उद्देश्य होना चाहिए। कविता सार्वभौम इसलिए होती है कि वह मनुष्य-प्रकृतिका चित्रण इस प्रकारसे करती है कि यदि मानव-प्रकृतिकी सभी विभिन्नताएँ एकत्रित की जायँ तो वे उसीमें समा जायँ। समय उन विभिन्नताओं तथा मानव-जीवनकी घटनाओंपर अपना कोई प्रभाव नहीं रखता वरन् काव्यकी तीव्रताको और भी अधिक उत्तेजित कर देता है और कविता-गत शाश्वत सत्यको नया रूप प्रदान कर

देता है । कविता एक ऐसा आदर्श है जो विकृतको भी सुन्दर और सुन्दरको सुन्दरतर बना देता है । अतएव, कहा जा सकता है कि कविता मनुष्य और प्रकृतिकी प्रतिकृति है और उसका उद्देश्य मनुष्यको मनुष्य मानकर, न कि इतिहासज्ञ, ज्योतिषी आदि जानकर, आनन्द पहुँचाना है । कविता संसारके ज्ञानका सूक्ष्मातिसूक्ष्म तत्त्व है अथवा, यों कहें, कविता प्रथम और अंतिम ज्ञान है । अतएव, कविता लोकोत्तर सौन्दर्यसे कल्पनाको विभूषित ही नहीं करती वरन् संसारके दुःखोंसे निवृत्ति देकर एक भावना बन जाती है जो मानव-जीवनकी नैतिकताको व्यक्त करती है और ऐसे सत्य एवं पवित्र जीवनकी ओर आकर्षित करती है जो व्यावहारिक जीवनका आदर्श है ।

कविताका कार्य द्विधा है । एक ओर तो वह ज्ञान, आनंद और शक्तिके नये साधन उत्पन्न करती है और दूसरी ओर उन साधनोंको एक तारतम्यमें व्यक्त करती है जिससे उसमें सौन्दर्य और अच्छाई आ जाती है । इस सौन्दर्यको भावकी गति और भी तीव्र कर देती है । सामाजिक जीवनमें जब ऐसा काल आ जाता है कि लोग स्वार्थ और अनुदारताके सिद्धान्तोंसे दबने लगते हैं तथा बाह्य जीवनके उपकरण आन्तरिक जीवनके सौन्दर्यको दबा देते हैं, अथवा कोई ऐसी विशृंखलता उत्पन्न हो जाती है जो मानव-हृदयको असंतुष्ट और अधीर बना देती है, तब कविताकी उपयोगिता भली भाँति प्रकट होती है क्योंकि उस समय शरीरके बोझसे आत्मा दब जाती है और सामाजिक जीवन छिन्न-भिन्न हो जाता है । कविता ऐसे ही रोगोंकी ओषधि है ।

कविता सत्यमेव दिव्य है । वह ज्ञानका केन्द्र भी है और वृत्त भी । यह वह विज्ञान है जिसके अन्तर्गत सारे विज्ञान हैं और सारे विज्ञान इस विज्ञानका मुँह ताकते हैं । कविता प्रत्येक प्रकारकी विचार-धाराओंका उद्गम और संगम-स्थान है । कवितासे सभी शास्त्रोंकी उत्पत्ति हुई है और सभी शास्त्र कविताका आदर करते हैं । यदि काव्य-वृक्ष शुष्क हो जाय तो सुख-शान्तिकी छाया और फल हमें न प्राप्त हो सकें और जीवनकी प्रत्येक शाखा नीरस ज्ञात होने लगे । कविता सभी सासारिक पदार्थोंके गुणोंको बढ़ा देती है । जिस प्रकार गुलाबमें सुगन्ध रहती है अथवा सोनेमें सुवर्ण रहता है उसी प्रकार कविता साहित्य और समाजकी सुगन्धि और सुवर्ण है । यदि कवितामें वह उड़ान न होती जिससे वह ज्ञान और प्रकाश उस अन्तरिक्षसे खींच लानेमें समर्थ होती है जहाँ भाव और विचार पर तक नहीं मार सकते, तो सत्य-प्रेम, देश-प्रेम, भक्ति, मित्रता आदि सद्गुणोंको कौन पूछता, नैसर्गिक दृश्योंसे कौन आकर्षित होता, जीवनमें क्या रह जाता अथवा लोग मृत्युके अनन्तर किस बातकी आशा करते ? उच्च कोटिकी कविता सीमा-रहित होती है । वह उस बीजके सदृश होती है जिसमें वृक्षका सारा स्वरूप निहित रहता है । एक आवरणके अनन्तर दूसरा आवरण हटाते चले जाइए, परन्तु अन्तःस्थित सौन्दर्य्य नग्न नहीं किया जा सकता । महाकाव्य अथवा कोई भी उत्तम काव्य एक धाराके सदृश है जिसमें ज्ञान और आनंदका नीर

बढ़ा ही करता है, जिसका उपयोग प्रत्येक मनुष्य और प्रत्येक युग करके दूसरे मनुष्यों और युगोंके लिए छोड़ जाता है। सारांश, कवियोंका प्रभाव समकालीन तथा परवर्ती समाजपर अत्यधिक पड़ता है।

हाँ, कुछ लोगोंने कवियोंके मुकुटको उतारकर विचारकों, कारीगरों तथा राजनीतिक नेताओंके सिरपर रखना चाहा है। उनका कथन है कि समाजमें कवियोंकी उपयोगिता नहीं है। देखें, उनका कथन कहाँ तक ठीक है।

आनन्द अथवा उपभोग वह पदार्थ है जिसे प्रत्येक प्राणी प्राप्त करनेकी इच्छा करता है और जब वह प्राप्त हो जाता है तो वह शान्त हो जाता है। आनन्द दो प्रकारका होता है,—एक क्षणिक और दूसरा शाश्वत। उपयोगिता या तो प्रथम प्रकारके आनन्दकी वृद्धि करती है या दूसरे प्रकारके। प्रथम प्रकारके अर्थके अनुसार जो साधन हमारे रागोंको प्रबल और पवित्र बनाते हैं, हमारी कल्पनाको विस्तृत करते हैं अथवा प्रोत्साहन प्रदान करते हैं, वे उपयोगी हैं। हाँ, एक प्रकारकी उपयोगिता और भी है,—वह जो हमारी शारीरिक आवश्यकताओंको पूरी करती है, वह जो समाजको सुरक्षित रखती है, वह जो उसमें सुधारका बीज बोती है और पारस्परिक स्वार्थके लिए जो मनुष्योंको सहिष्णुता और उदारता सिखलाती है। इस प्रकार समाजकी सेवा करनेवाले नेताओंका स्थान समाजमें अवश्य है। परन्तु, वे लोग भी कवियोंके बतलाये हुए मार्गपर चलते हैं। उनकी उपयोगिता समाजमें तभीतक है जबतक वे मनुष्यके निम्नश्रेणीके विचारोंको अपनी उच्चता और उदारतासे दबाये रखनेमें समर्थ होते हैं। वे लोग राजकीय नियम बनावें, समुद्रपर पुल बाँधें तथा समाजमें दंड-विधान रचें, परन्तु जब वे सच्ची कल्पनासे च्युत हो जाते हैं तब समाजकी वही दशा हो जाती है जो इस समय योरोपीय राष्ट्रोंकी है,—जहाँ संपत्ति और विपत्तिका नग्न नृत्य हो रहा है, जिनके पास अधिक संपत्ति है वे अधिकाधिक चाहते हैं और जिनके पास नहीं है वे उत्तरोत्तर रंक होते जा रहे हैं, जहाँ राष्ट्रकी नौका भवँर और वायु-वेगके मध्य डगमगा रही है। आसुरी संपत्तिके यही लक्षण हैं। आनन्द या सुखकी परिभाषा करना कठिन है,—कवितामें तो वह और भी दुष्कर है क्योंकि यहाँ तो करुण रस भी आनन्दको उत्पन्न करता है, दुःखमें भी सुखकी छाया रहती है, रागमें भी वेदनाकी झलक दिखाई पड़ती है,—यहाँतक कि सुखमें जो दुःख अनुभूत होता है वह दुख भी कभी कभी नहीं प्राप्त होता। साथ ही यह भी नहीं है कि आनन्द-प्रकाशकी छाया दुःख ही हो। प्रेम और मैत्रीका सुख, निसर्ग-सत्कारका आनन्द, कविताके समझनेका और उससे भी अधिक करनेका सौख्य, शुद्ध, पवित्र और अनिर्वचनीय होता है। इस प्रकारके आनन्दमें अत्यधिक उपयोगिता है और जो इस आनन्दको उत्पन्न करते हैं वे ही सच्चे कवि कहलाते हैं।

सर्वोच्च मस्तिष्कवाले मनुष्योंके सर्वोपरि विचारोंका नाम कविता है। हमें ज्ञात है कि

समय-समयपर हमारे हृदयमें जो विचार उठते हैं,—जो कभी कभी सांसारिक विषयोंके होते हैं और कभी कभी अपने ही, उनका उद्गम हम नहीं जान सकते,—यह नहीं ज्ञात होता, वे कब हमारे मस्तिष्कमें आते हैं और कब निकल जाते हैं, लेकिन, वे हमें अनिर्वचनीय आनन्द दे जाते हैं और वह इच्छा या पश्चात्ताप भी, जो वह पीछे छोड़ जाते हैं, हमारे आनन्दका कारण होता है। वे विचार हमारे हृदयपर इस प्रकार अपने चिह्न डाल जाते हैं जिस प्रकार वर्षाऋतुकी नदी शरत्कालमें अपने किनारोंपर जल-प्लावनके चिह्न छोड़ जाती है। यह अथवा ऐसी ही अन्य मानसिक अवस्थाएँ केवल उन्हीं मनुष्योंद्वारा अनुभूत होती हैं जो सहज ही कोमल हृदय रखते हैं,—जिनकी कल्पनाशक्ति बहुत तीव्र होती है। और इस प्रकारकी मनःस्थिति मनुष्यके हृदयमें देवासुर-संग्राम उत्पन्न कर देती है। सत्य-प्रेम, देश-प्रेम, मैत्री आदिके भाव ऐसी ही मनःस्थितियोंसे संबद्ध रहते हैं। कवि उन भावोंसे अभिभूत ही नहीं होता वरन् उनको वह रँग भी देता है,—सांसारिक आवरण चढ़ा देता है। उसका एक शब्द ही उन मनुष्योंके हृदयमें, जो इन भावोंको अनुभूत किये हुए होते हैं, एक उत्तेजना उत्पन्न कर देता है जो कि उनके मस्तिष्कके समक्ष सुप्त भूत-कालको ला उपस्थित करती है। इस प्रकार, संसारमें जो कुछ सर्वोत्तम और सुन्दर है उसको कविता अमर बना देती है। मनुष्य-हृदयमें कभी कभी दिव्य भावोंका संचार हुआ करता है और कविता उन भावोंको अक्षुण्ण बनाये रखती है।

कविता प्रत्येक वस्तुको सौन्दर्यमय जीवन प्रदान करती है, वह सुन्दरको सुन्दरतर बनाती है, असुन्दरको सुन्दर कर देती है। विस्मय और भय, सुख और दुःख, क्षणिकता और अनन्तता, कविताद्वारा संबद्ध होते हैं। कविता सांसारिक विभिन्नताओंमें एकता उत्पन्न करती है। कवि जो कुछ स्पर्श करता है उसे अपने ही स्वरूपमें परिवर्तित कर देता है और जिस भावका चित्रण करता है उसे अपनी सहानुभूतिके प्रसादसे वह रूप दे देता है जिससे वह साकार होकर नेत्रोंके सम्मुख उपस्थित हो जाता है। जीवनमें मृत्युके स्रोतसे जो विषाक्त पानी बहता है, कवि उसे अमृतमें परिवर्तित कर देता है, जीवन अमर भासने लगता है, समयकी सीमा टूट जाती है, परिचित संसारको अपरिचित-सा बना देता है और भावकी नग्न दिव्यता सम्मुख उपस्थित हो जाती है।

द्रष्टाकी दृष्टिमें सांसारिक पदार्थ वैसे ही आते हैं जैसे कि वे हैं; परन्तु, कविकी दृष्टिमें वे पदार्थ अपना अलग ही अर्थ रखते हैं। मनुष्यका मस्तिष्क एक अनोखी वस्तु है,—वह स्वर्गको नरक और नरकको स्वर्ग बना देता है। कवि चाहे अपना ही रंग चढ़ाके उन पदार्थोंको दिखलाता हो और चाहे उनपरसे अज्ञानका परदा हटा लेता हो, वह हमारे लिए तो एक आत्माके भीतर दूसरी आत्मा उत्पन्न कर देता है। वह हमें उस संसारका अधिवासी बना देता है जहाँ इस संसारकी वस्तुएँ अपरिचित ज्ञात होने लगती हैं। वह एक ऐसा संसार उत्पन्न करता है जिसमें हम दृश्य और द्रष्टा दोनों

बन जाते हैं तथा हमारी आन्तरिक दृष्टिपरसे परिचयका परदा हट जाता है जिससे हमें अपने ही अस्तित्वपर विस्मय होने लगता है। कविता हमें बाध्य करती है कि जो कुछ हम देखें उसका अनुभव करें तथा जो कुछ हम जानते हैं उसकी कल्पना करें। नित्यशः हमारे विचार इस संसारको परिचित बनाते चले जाते हैं, यहाँ तक कि हमारे हृदयमें संसारके प्रति कोई कल्पना ही नहीं उत्पन्न होती,—कवि इस संसारका विनाश करके हमारे हृदयमें एक नवीन लोक उत्पन्न कर देता है।

कवि जनताके लिए जिस प्रकार ज्ञान, आनन्द, सत्य, यश आदिके भाव उपस्थित करता है, उसी प्रकार उसे भी सबसे अधिक प्रसन्न-चित्त और विचार-शील होना चाहिए। यश तो उसका सर्वश्रेष्ठ होता ही है। आचार्य मम्मटने भी कहा है 'काव्यं यशसे'। कवि होनेके कारण वह सर्वश्रेष्ठ ज्ञानी और आनंदी भी होता है, यह किसीसे छिपा नहीं है। संसारके सर्वश्रेष्ठ कवियोंका चरित्र सुन्दर और निष्कलंक रहा है,—उनमें ज्ञानकी मात्रा सबसे अधिक रही है और यदि उनके जीवनके अन्तरंगको देख सकें तो वे बड़े ही भाग्यशाली महापुरुष हुए हैं। यदि हम मान भी लें कि वाल्मीकि व्याध थे, कालिदास व्यभिचारी थे, तुलसीदास स्त्रैण थे, बिहारी शृंगारी थे, भूषण भाट थे; तो भी, उनके काव्योंने उनके सब कलंक धो दिये और वे सुधा-धौत सौधके सदृश हमें आनन्द दे रहे हैं। कविगण ईश्वर-प्रदत्त मंत्रोंके द्रष्टा हैं,—भविष्यकी जो छाया वर्तमान-पर पड़ रही है उसको प्रतिबिम्बित करनेके आदर्श हैं; वे ऐसे शब्द हैं जो, जिसे व्यक्त करते हैं, उसे समझते तक नहीं, ऐसे प्रोत्साहन हैं जो जीवन-संग्रामके लिए निमंत्रण देते हैं, ऐसे प्रभाव हैं जो स्वयं अचल हैं, तथा संसारके माने हुए अग्रणी हैं।

और कविता?—संसारके सभी सौन्दर्य उससे निःसृत होते हैं, उसीके अनुसार मानव-जीवन संचालित होता है, वही समाजका कल्याणकारी अंग है।

'अनूप'

अनुक्रमणिका

१—शुभ स्वप्न

द्रुतविलम्बित

गिरि हिमालयके उपकूलमें
कपिलवस्तु-पुरी अति रम्य थी;
बहु प्रसिद्धिमयी धन-अन्नदा
सुभग-शासन-भूषित भूमि थी।

विनय-युक्त उदार गभीर थे,
अति सहिष्णु तथा अति धीर थे;
परम न्याय-परायण वीर थे,
सतत-संयत भूपति शाक्यके।

परम शाक्त अनूपम विक्रमी
अति पुनीत जितेन्द्रिय संयमी;
छविमयी उनकी यश-चन्द्रिका
विनत थी करती शरदिन्दुको।

द्विज-निवास विलास-विकास थे,
कमल-हस्त प्रशस्ति-प्रकाश थे,
समुपयात-तृषार्त-हितार्थ थे,
नृप जलाशय-से शक-जातिके ।

मति रही कमला-सम कोमला,
नवनवा कमला मति-सी रही,
तनु-समान विभा अति रम्य थी,
तनु विभा-सम था प्रतिभूपका ।

यश-दया-गुण-कान्त-शरीर वे,
सुरभि-पाल नृपाल उदग्र थे,
अति बली बलके वर बन्धु-से,
नृपति थे पुरुषोत्तम-से सभी ।

परम पंकिल जो अरि-अस्त्रसे
असि-प्रवाह-भरे उस मार्गसे
लख पड़ा न कदा, किस भाँतिसे
यश गया बह, सम्पति आ गई ।

मुख बसी कमलासन-कन्यका,
अधिकृता कमला करमें लसी,
तन हँसी कमलांगज-शालिमा,
मन धँसी कमलापति-मूर्ति थी ।

सजग हो प्रतिवार नृपाल वे
मुकुटका गुरु भार सम्हालते,
(नृपति जो इसको लघु मानते
परखते न बना किस धातुका) ।

अति उदार-चरित्र नृपालकी
प्रणय-पालित प्रेमवती प्रजा
सरस हो सुखसे परिप्लाविता
विचरती निशि-वासर मोदमें ।

कपिलवस्तु-धराधिप जन्मसे
कलित-कौशल थे नृप-नीतिमें,
जनमता जिस भाँति करेणु ले
द्विरद-गंड-विदारण-योग्यता ।

बन स-शस्त्र, सु-सज्जित शास्त्रसे,
वर रमा, रमणी कर शारदा,
विभव-भोग तथा मख-यागसे
सच किया मणि-काञ्चन योग था ।

मलय-मारुत-सी नृप-वक्तृता
सुमनको करती अति मुग्ध थी,
इसलिए सब सम्पति विश्वकी
लख पड़ी खिँचती उस केन्द्रमें ।

परम रम्य हिमालयकी तटी
बन गई अपरा अमरावती,
सकल सिद्धि रमीं सब ऋद्धियाँ
शक-नरेश सुरेश-समानसे ।

नृपतिका यश पूर्ण निशेश-सा
दुरित-राहु विहाय शनैः शनैः
लख बढ़ा अति विस्तृत रूपसे
बन गया महि-मंडल बिन्दु-सा ।

सकल भारतवर्ष प्रसन्न हो
कर रहा नृपका गुण-गान था;
सुन रहीं बन मुग्ध दिगंगना
सकल-याम प्रकाम प्रमोदसे ।

सकल सिद्धिमयी निधि ऋद्धिकी
इस प्रकार बढ़ी नृप-राज्यमें,
जिस प्रकार नवाम्बुद-वारिसे
बढ़ चले शलभादि असंख्य हों ।

लख समागम भूप-समृद्धिका
सब प्रजा सुख-गर्भवती हुई,
नगरकी किस भाँति कथा कहें,
सहित-मंगल जंगल हो उठा ।

रह गया भय था पर-धर्मसे,
छिप रहा क्षय केवल इन्दुमें,
जरठके सँग, और कुलालके
सदनमें, बस, दंड प्रसिद्ध था ।

जब वसन्त हुआ, पिक आ गया,
मधुप गुंजन भी करने लगे,
तब चला नृप-कीर्ति-सुगंध ले
मलय-मारुत-दूत दिगन्तको ।

नृप-प्रताप-समक्ष प्रचंडता
तज हुआ वृष-भानु अ-तेज यों,
बन समुन्नत-कंठ चकोर भी
दिवसकी मणिको लखने लगा ।

प्रकट पावस भी जब हो गया,
घन-घटा घनघोर घिरी यदा,
कपिलवस्तु-नृपाल-प्रतापसे
सकुच-संयुत वासव रो पड़ा।

अमित भूप-विलोचनकी प्रभा
शरदके अरविन्द न पा सके,
निरख न्याय मराल-समूह भी
सर-निमज्जन था करने लगा।

फिर चली ऋतुकी बढ़ शीतता,
परम पिंगल आतप हो गया,
नृपतिके सम-दृष्टि-प्रभावसे
न घटता-बढ़ता बहु शैत्य था।

शिशिरके ऋतु-सी नृपकी कथा
हृदयमें सुख-शीतल हो लगी,
प्रकृति-गूढ़ समाज-कुरीतियाँ
सकल पल्लव-सी गिरने लगीं।

शार्दूलविक्रीडित

पृथ्वी-भार उतारना प्रकट हो सारी रसा जीतना,
माहेयी प्रतिपालना, स्वजनको साहाय्य देना सदा,
भूमें स्थापित धर्म-भाव करना, संसारकी योजना
शौरीने यदि आठ जन्म रख की, वे एक ही जन्ममें।

द्रुतविलम्बित

इस प्रकार प्रजा-नृपके सुखी
निवसते गत वर्ष हुए कई,
यदि कहीं त्रुटि थी, वह थी यही
सदन-अंगन नन्दन-हीन था।

सचिव-वृद्ध-प्रजाजनके जगी
हृदय-मध्य निरंतर लालसा,
'इन दृगों हम भी लख लें, प्रभो!
कपिलवस्तु-नृपाल-कुमारको।'

अथ अचानक एक निशीथमें
अघटनीय महा घटना घटी,
बरसती वह सावनकी घटा
द्रुत फटी, तड़की, कड़की, हटी।

बहु प्रकाश प्रकाशित हो गया,
भुवन-मंडल भासित हो गया,
उदधि-ऊर्मि विचालित हो उठी,
कलित-कंप हुईं गिरि-श्रेणियाँ।

सुमन सुन्दर सूर्य-मुखी खिले,
दिवसके सब लक्षण व्यक्त थे,
तुमुल-घोषवती गिरि-कंदरा
कर उठीं सहसा यह घोषणा—

"भगण सम्मुख हों, अनुकूल हों,
अशनि त्याग करें स्व-कठोरता,

सकल शान्त रहें गिरि-सिन्धु भी,
प्रकट मार-मृगाधिप हो रहे।

"मनुज-वृन्द, सभी सम्हलें, उठें,
जग पड़ें, समझें, मनमें गुनें,
भुवन-पालक, चालक विश्वके,
प्रकट बुद्ध तथागत हो रहे।"

तदुपरान्त महान प्रशान्तिका
विशद राज्य हुआ नभ-भूमिपै,
ककुभ-गह्वरसे वह घोषणा
निकल लीन हुई नभ-शून्यमें।

घट गई घटना वह सब ही,
त्वरित ही नभ-दृश्य हुआ वही,
सघन घोर घटा द्रुत आ घिरी,
तम प्रगाढ़ हुआ अति शीघ्र ही।

जग पड़े जन-यूथ प्रभातमें,
नव-समृद्धिमयी धरणी हुई,
घटित सो घटना गत रात्रिकी
निपट स्वप्नमयी सब हो गई।

अकथनीय अलौकिकतामयी
गुरु-रहस्य-युता उदया दिशा,
सहित भाग्यवती युवती उषा
मुदित रागवती अब हो गई।

उदय-भूभृतके सित श्रृंगपै
मुकुट कंचनका अति रम्य था,
कनक-कुंडलसे परिवेषमें
निहित थी अति-मंजुल दिव्यता।

विहग-वृन्द-निकूजित-कारिका
सरस अर्थवती श्रुतिमें बनी,
यदि कहीं वह हो रसनावती
सहज है चखना, कहना नहीं।

सहित शीतल मन्द सुगन्धके
विशद वायु बहा रमणीय था,
प्रतिनिनादित कुन्तल-कूपमें
यह हुआ कि मुझे कुछ हो गया।

कपिलवस्तु-धराधिप-धाममें
चतुर चारण गायन गा उठे;
सुन स्वकीय महा विरुदावली
स-महिषी नृप जाग पड़े तभी।

नृपतिने शिवका शुभ नाम ले
कथित स्वप्न किया जब रात्रिका,
विपुल विस्मय-संयुत भावसे
पुलकसे महिषी कहने लगीं—

" सब लखा जितना प्रभुने लखा
कुछ विशेष लखा उसको सुनो,
समझके जिसको अब भी, प्रभो,
शिर स-संभ्रम है प्रतिरोमका।

" जब विलीन हुई क्षणदा-प्रभा
धरणिमें तम-तोम समा गया,
तब प्रतीत हुआ नभमें, प्रभो,
जल उठा मणि-दीपक एक था ।

" जलद-मंडित थी वह यामिनी,
उचित था जुगुनू यदि भासता,
पर दशा उसकी लखके बढ़ी
हृदयमें मम कौतुककी कला ।

" लख पड़ी निकटस्थित ऋक्ष-सी
विशद कान्ति विशेष प्रभामयी,
पर तुरन्त प्रकाश-समूह सो
बढ़ चला मुझको लख ध्यानसे ।

" वह स-पुच्छ, न पुच्छल ऋक्ष था,
सहित-ज्योति, न तारक-तुल्य था,
कलित-कान्ति, न थी मणि-सी छटा,
चढ़ चला मम ओर प्रसन्न हो ।

" समुपभूत प्रभूत प्रभा हुई,
बन चली षटकोणमयी छटा,
लख उपस्थिति ज्यों घनराजकी
कमल था गिरता सुर-लोकसे ।

" जलज, अभ्रमुकी पद-घातसे
निकल देव-नदी-जलसे यथा,
गिर रहा द्रुत था मम शीसपै,
ललित लाघवसे प्रतिभास हो ।

" जब बढ़ा कुछ और समीपमें
लख पड़ा वह श्वेत करेणु-सा,
अशनि-उज्ज्वल-आनन-शुभ्रता
विफल थी करती दृग-ज्योति भी।

"वृषभ-केतनके तन-सी लसी
धवलिमा उस श्वेत गजेन्द्रकी,
रद समुज्ज्वल चार बड़े बड़े
तडित-श्रृंग-समान सुगौर थे।

"पहुँच पास गजेन्द्र प्रवेगसे
घुस गया मम दक्षिण कुक्षिमें,
सहित-संभ्रम जाग पड़ी, प्रभो,
पर जगा न सकी भयभीत हो।

" जब अशान्ति मिटी उस स्वप्नकी,
परम जागृत शान्ति मिली मुझे,
स्व-मतिकी गति संभ्रम-सारिणी
बन गई जलदागम-उष्णता।

" यह निदेश मुझे किसने दिया,
'कह कभी निशि-मध्य न स्वप्न तू' ?
इसलिए चुपचाप पड़ी पड़ी
फिर प्रसुप्त हुई यह सेविका।"

सुन, कहा, बहुधा समझा-बुझा,
दयितने इस भाँति कलत्रसे,
" अनिल-से द्रुत, चंचल चित्त-से,
सुदृढ़-ध्यान-समुद्भव स्वप्न हैं।

" यदि विचार बिना हम सो सकें,
सुखद है कटु स्वप्न न देखना,
पर लखें यदि सुन्दर भावके
मुदित जीवन भी बनता, प्रिये,

" हृदयके भयके कुछ बिम्ब हैं,
मुदित मानसके अनुभाव हैं,
कटु बड़े, अति मिष्ट, परन्तु वे
तुहिन-धूम-समान अ-सार हैं।"

इस प्रकार प्रिया-दृग पोंछके
द्रुत महीप चले निज धामसे;
सकल नित्य-क्रिया कर शान्तिसे
त्वरित राजसभा-गृहमें गये।

गणक-वृन्द बुलाकर भूपने,
कह अशेष कथा गत रात्रिकी,
जरठ-ज्योतिष-पंडितराजसे
फल सुना शुभ आगम स्वप्नका।

" भृगु-पराशरके मतसे, प्रभो,
अमित उत्तम है फल स्वप्नका,
सरस सुन्दर सावन-मास है,
प्रकट अर्क हुआ अब कर्कका।

" सकल देव-नृदेव-प्रयत्नसे
शक-कुलोदधिका शुभ चंद्रमा
प्रकटता अब है, भरते हुए
गगन-भूतलमें अभिरामता।

" त्वरित ही महिषी उदया दिशा
अरुणको करती स-शरीर है,
प्रकटते जिसके महि-व्योमसे
अघ-घनान्ध तमी मिट जायगी।

मालिनी

" अघ-अहि-उरगारी, द्रोह-दम्भापहारी,
रति-पति-अरि भारी, सत्य-संकल्प-धारी,
शम-दम-पथ-चारी, विश्व-संबोध-कारी,
त्रिभुवन-भय-हारी, पुत्र होगा तुम्हारे।"

१—भाग्योदय

वसन्ततिलका

बीते अनेक निशि-वासर शीघ्रतासे,
गर्भस्थ अर्भक लगा अब वृद्धि पाने,
कुक्षिस्थ जान निगमागमका प्रणेता,
माया प्रसन्न-वदना अति मोदमें थी।

ऐसी लगीं सहचरी सहचारमें थीं,
ऐसी पगीं नृपति-नन्दन-प्रेममें थीं,
आये यथा भुवन-भास्करके बिना ही
छाई उषा मुदित हो उदया दिशापै।

आनन्दका उदधि, तुंग हिलोर लेता,
फैला नृपाल-सदनांगनमें लखाता,
दिव्याम्बरा, गुणवती, युवती नतांगी
गाने लगीं प्रमुदिता अरुण-प्रिया-सी।

ले ढोल मंजुल मँजीर अधीर होके
ज्यों ज्यों स्व-कंठ-ध्वनि-राग अलापतीं थीं,
हो मंत्र-मुग्ध कल-कंठ विहंग त्यों त्यों
आ दौड़ गोद उनके गिरते मुदा थे।

ले ऋद्धि संग अपने सब सिद्धियाँ भी
गाना नृपाल-भवनांगन-मध्य गातीं
छद्माम्बरा छविवती सुर-योषिताएँ
स्वर्गीय गीत सुख-संयुत गा रहीं थीं।

प्रासादमें रजनि-वासर गान होता,
सर्वत्र नारि-नर मोद मना रहे थे,
चारों दिशा कपिलवस्तु-वसुन्धरामें
आनन्द-अंबुधि तरंगित हो रहा था।

फैला सुवृत्त पुरसे सब राज्यमें यों
माया हुई प्रथम-गर्भवती प्रसन्ना,
आबाल-वृद्ध नर-नारि-समूह सारे
होते प्रसन्न-मन मग्न विनोदमें थे।

बन्दी सभी मुदित हो यह सोचते थे,
'होगा कुमार यदि तो हम मुक्त होंगे,'
क्या जानते यह कभी वह अल्प-धी थे,
संसार-बन्दि-गृह-मुक्तक आ रहे हैं।

हो-सी गई सकल गर्भवती धरित्री,
स्रोतस्विनी नवल-जीवन-वाहिनी-सी,

अज्ञात हेतु-वश सर्व दिगंगनाएँ
पिंगा शरीर-शिथिला इव भासतीं थीं ।

यों चार मास पलमें इस भाँति बीते
जैसे रही समयकी कुछ भी न सीमा,
दक्षा सखी कह चलीं सब नारियोंसे
'माया हुई कृशित-काय कठोर-गर्भा ।'

शार्दूलविक्रीडित

निद्राशील-सुनेत्र-मध्य सुखदा जो स्वप्नकी ज्योति थी,
लौ होके वह जा लगी हृदयकी संग्राहिका शक्तिसे,
सम्राज्ञी-उदरस्थ-भार जबसे संभार होने लगा,
पृथ्वी भी निज अक्षपै अचल हो चंक्रम्यमाणा हुई ।

वसन्ततिलका

ऐसे विनोदमय भाव उठे सभीके,
साश्चर्य नारि-नर कौतुकमें हुए यों,
था कौन-सा निहित भाव प्रकाश होता,
क्यों व्योम-भूतल अलौकिक भासते थे ?

भूके अभूत-भव दृश्य विलोक ऐसे
बोली लवंगलतिका प्रथमा सहेली,

" सम्राज्ञि, दोहद कहो, भवदीय इच्छा
मैं शीघ्र पूर्ण करके अति धन्य होऊँ " ।

" है कामना न जलकी, पयकी न इच्छा,
लिप्सा न सोम-रसकी, सब पी चुकी हूँ;
है एक-मात्र अब प्यास, उसे बुझा दे,
तू प्रेयसी हृदयकी चतुरा सखी है ।

" जा ला अभी, सुमुखि, तू जरठा कहींसे
जो आपदा-अधिकृता, अति दुःखिता हो,
मैं देख देख उसको करुणार्द्र हो लूँ,
रो लूँ, सखी, बिलप लूँ, धुन शीस भी लूँ ।

" इच्छा नहीं अशनकी, फलकी न वाञ्छा,
मैं तो सखी, अब सुरा लख काँपती हूँ,
रोटी मिले यदि कहीं घृत-हीन सूखी
तो दैन्यकी सरसता अनुभूत होवे ।

" यों ही रही स्व-जनसे सुनती-सुनाती
सम्भोगसे पद समुन्नत योगका है,
प्रत्यक्ष आज मुझको प्रतिभास होता
संसार-सार सिकता-गत-तैल-सा है ।

" ज्यों ज्यों शरीर अधिकाधिक वृद्धि पाता
दोनों स-भार पद निश्चल हो रहे हैं,
त्यों त्यों महान-करुणामय चित्त मेरा
संवर्धमान बनता कर छिन्न सीमा ।

" मैं भी कभी जननि-कुक्षि-समागता हो,
    उत्पन्न हो, बढ़ हुई अब आज माता,
सन्तानका विरह हो मुझको न वैसा,
    कल्याण शंकर करें, यह प्रार्थना है।

" उद्विग्न भाव बनता मम चित्त-चारी,
    होगी परिस्थिति वही जिसको भुलाके
होतीं सभी सुमुखियाँ स-प्रसून-गर्भा,
    संस्तुत्य, निन्द्य, मकरध्वज ! एक तू है।

" है दूसरी, सुनयने, यह लालसा भी
    जा रंक, दीन, धन-हीन, दुखी बुला ला,
मेरे समक्ष उनको पट-अन्न दे तू
    आशीष दे स-सुख वे निज धाम जावें।"

बोली लवंगलतिका अति दिव्य वाणी,
    "हे देवि, मातृ-पदवी महिसे बड़ी है,
मातृत्वसे रहित ईश्वरको सदा ही
    देते महापुरुष 'निर्गुण'-मात्र संज्ञा।

" निःस्वार्थ भाव जिसका अति सौख्यदायी,
    आलिंगनीय गल है रमणीय गोदी,
ऐसी अनूप जननी अभिनन्दनीया
    पा वन्दनीय बनते नर लोकमें हैं।

" श्रीशाक्य-वंश-विभवा भवती सती हैं,
    स्वामी महा भुवन-भास्कर-सा प्रतापी,
जो पुत्र हो अति बली, विजयी, सुधी, तो
    आश्चर्य क्या, कुल-प्रथा यह है सदाकी।

" सम्राज्ञि, शीघ्र सब दोहद पूर्ण होंगे,
है सेविका यह सदा अनुजीविनी ही,
श्रीशाक्य-वंश-अधिदेव प्रसन्न ही हैं,
आनन्द-मंगल करें सब स्वामिनीका। "

शार्दूलविक्रीडित

एकाकी जिस भाँति सूर्य हरता संसारका ध्वान्त है,
जैसे सिंह-किशोर भी गहनमें स्वातन्त्र्यसे घूमता,
वैसा ही गृह-वंश-दीप सुत भी होता अकेला सुधी,
देता ताप न पात्रको, न गुणको, खोता नहीं स्नेह भी।

वसन्ततिलका

होती रहीं सकल दोहद-प्रक्रियाएँ,
देतीं सखी-जन रहीं सब भाँति सेवा;
ज्यों-त्यों विकारमय अष्टम मास बीता,
आया वसन्त अति सुन्दर दृश्य-धारी।

थी पीतिमा सुभग आतपकी अनूठी,
निर्धूलि व्योम अति सुन्दर सोहता था,
ख-श्वासको मुदित मादकता मिली थी,
पृथ्वी विमंडित बनी रमणीयतासे।

रानी उठीं मुदित ब्रह्म-मुहूर्तमें ही,
इच्छा अचानक उठी उनके अनूठी,
उद्यानमें गमन हो सँग ले सहेली
बीते कई दिवस किन्तु गई नहीं थीं।

आरामका सुरभि-संयुत दृश्य देखा,
प्रातःसमीर बहता अति मोदमें था,
जाता कली-निकट आनन चूमता तो
होते प्रफुल्ल अति-आयत पुष्प नाना।

प्रत्यूष देख कलियाँ चिटकीं वहाँ जो,
वे हो गईं सुमन सौरभ-युक्त ऐसे,
जैसे घटा गगनमें घिरती घटीमें,
आता कि यौवन यथा सुकुमारियोंमें।

है ताल-तुल्य चटकाहट फूलमें जो,
तो तान-गान अलि-कोकिलके अनूठे,
जो हाव-भाव-मय मंजुल मंजरी हैं,
तो नाचती नयनमें सुषमा नटी-सी।

हैं कूकते पिक, अलीगण गान गाते,
डोला समीर, लतिका बहु फूल फूलीं,
हैं बोलते चटक, कीर अधीर गाते,
आते विलोक ऋतु-नायकको वनोंमें।

स्वामी सुगंधित समीर-प्रवाहका जो,
जो चंचरीक-गणको अति मोद-दायी,
जो कान्त है सुरभि-संगठिता कलीका,
कंदर्पका सुहृद चारु वसन्त आया।

सारंगने, सुमनने, नभने, पिकीने,
पुष्पौघमें, पवनमें, महिमें, हियेमें,
गुंजारसे, सुरभिसे, छविसे, स्वरोंसे,
उद्भ्रान्ति, क्रान्ति, शुचिता, मृदुता प्रचारी।

सौन्दर्य्यका विभव, वृद्धि हरीतिमाकी,
तन्द्रा-विहीन सुषमा, ध्वनि कोकिलाकी,
आनन्द-उत्स कल-कूजन पक्षियोंका,
आरोग्यका विभव, सम्पति सद्यताकी,

उत्सर्गकी प्रकृति, ज्ञान नवीनताका,
आश्चर्य-युक्त अवलोकन मुग्धताका,
झोंका, तरंग, बहु-रंग विहंग नाना,
सारे वसन्त-छवि-संयुत हो पधारे।

देखी उषा उदित जो उदया दिशामें,
रानी प्रसन्न-वदना इस भाँति बोली,
"कोई यहाँ चतुर हो तुममें सहेली
तो दे बता त्वरित कारण लालिमाका।"

बोली तदा प्रथम एक सरोरुहाक्षी,
"होता प्रतीत मुझको विधु-आनने, यों,
आये दिवापति नहीं अब भी इसीसे
रक्तानना बन रही उदया दिशा है।"

बोली स-दर्प अपरा "प्रतिभास होता
संग्राम-क्षेत्र यह रक्त सुरासुरोंका,
जो चन्द्र-हेतु अति क्रोधित हो लड़े हैं,
की मारकाट अब भाग गये कहींको।"

बोली तृतीय वनिता अति धीरतासे,
“ प्राची हुई दुखित है जननी निशाकी,
जाती विलोक पति-धाम स्व-कन्यकाको
सो अस्रके सदृश अश्रु बहा रही है।”

चौथी सखी तब लगी कहने, “ मुझे तो
होता प्रतीत नभकी उस देहलीपै
होके नृसिंह हरिने अपने करोंसे
चीड़ा हिरण्य-वपु-वक्ष स-रोष मानों।”

भारी विचार कर भामिनि पाँचवीं भी
बोली, “ शशाङ्कवदने, लखिए उषाको,
कैसी अनूप बहु-रंग-विरंग-वाली
होती अहो! प्रकट है बहुरूपिणी-सी।”

बोली छठी छविवती युवती छबीली,
“ प्राची रही हँस, महा यह पुंश्चली है,
पीछे कहीं प्रथम प्रेमिकको छिपाया,
स्नेही द्वितीय कर खींच बुला रही है।”

तो सातवीं यह लगी कहने कि “ भूपै
प्राची खड़ी वमन है करती लहूका
हा! कोकका, कमलका, विधुरा सतीका
पी अस्र जो विकल घोर अजीर्णसे थी।”

यों ही किया कथन कामिनि आठवींने,
“ प्राची पिशाचिनि महा-भय-दायिनी है,
हो दीर्घ-व्याहृत-मुखी सुरसा-समाना
संसारको निगलने यह आ रही है।”

बोली लवंगलतिका बहु चातुरीसे,
        "सम्राज्ञि, जो कि सखियाँ यह भाषती हैं,
सो सर्व सत्य, पर जो कुछ ध्यान आती,
        क्या मैं निवेदित करूँ वह धारणा भी ?

" आता मदीय मनमें सुन वाक्य ऐसे
        चन्द्राननें, कुछ कहा मुझसे न जाता,
कुक्षिस्थ बाल-प्रति जो भवदीय इच्छा
        सो मूर्तिमान अनुराग बनी खड़ी है।

" सम्राज्ञि, आज भवदीय समान शुभ्रा
        प्राची दिशा विलसती अति मोदमें है,
है एक ही गुण नहीं, उभयत्र देखा,
        दोनों अनेक गुणमें सम भासते हैं।

" सौन्दर्य-युक्त जिस भाँति विशाल प्राची,
        वैसा मनोज्ञ भवदीय ललाट भी है,
जो लालिमा लख पड़ी नभमें अनूठी,
        तो आपके सकल अंग प्रभा-भरे हैं।

" जो पिंगता विलसती वह व्योममें है,
        सो आपके वदनका प्रतिबिम्ब ही है,
पुत्रोदरा बन हुईं यदि आप ऐसी,
        तो है उषा-उदरमें रवि ध्वान्त-हारी।

" होते यथा उदित पूषणके महीका
        सर्वत्र दूर रहता तम है तमीका,
वैसे त्वदीय सुतके अब जन्मते ही
        भूका अमंगल सभी शश-शृंग होगा।

"जो काल है प्रसवका अब पास आया,
तो मास भी मधुर है मधुका अनोखा,
प्रारम्भ जो नवल अब्द हुआ महीमें
तो पुत्र भी त्वरित उत्तम आ रहा है।

"मानों स्वकीय छविसे छवि हो अतृप्ता,
पाना द्वितीय छवि उत्तम चाहती है,
हो जाय भूमि दिव सो छवि जो कहीं हो,
सारे सुरासुर चराचर तुष्टि पावें।

शार्दूलविक्रीडित

"ऐसा अंबक एक है, रजनिमें जो सुप्त होता नहीं,
ऐसा कर्ण, अनूप वार-निशिमें जो बन्द होता नहीं,
है ऐसा वर हस्त, जो जगतमें निश्शक्त होता नहीं,
ऐसा है वह प्रेम, जो निरत हो आसक्त होता नहीं।

"सो ही अंबक हो गया अचल है श्रीशाक्य-साम्राज्यपै,
सो ही कर्ण प्रपूर्ण वंश-यशके संगीतसे हो चुका,
सो ही हस्त समस्त शाक्य नृपका कल्याण धारे हुए,
सो ही प्रेम समृद्धि-धाम भवतीके कुक्षिमें बद्ध है।"

वसन्ततिलका

यों ही परिक्रमण वे कर वाटिकाका
सैरंध्रि-संग जब शाक्य-नरेन्द्र-जाया

बैठीं मुदा सुरति-सौख्य प्रसाधनेको
जा नील मंडल-तले घन फालसाके ।

शाखी अचानक हिला कुछ मन्दतासे,
डोली महा मुदित मंजुल मंजरी भी,
आमोदसे कुसुम जो झुक झूमते थे,
तो चूमते उड़ अली मुख थे कलीका ।

आरामका सुखद दिव्य सुदृश्य देखा,
देखी निसर्ग छवि युक्त मनोज्ञतासे,
था कीर-कंठ स्वरभार-विनीत जैसा,
वैसा गुरुत्व-मय था स्वर कोकिलाका ।

आमोद-भार-धर मन्द समीर बोला,
'संसार-भार-लघुकारिणि मूर्ति आई ।'
तीखे हुये धवल दीधिति अर्यमाके,
था झाँकने अब लगा नभ-देहलीसे ।

आनन्द-युक्त विकसीं कलियाँ बनोंमें,
आये अकाल फल सुन्दर पादपोंमें,
शाखा झुकीं सकल सत्वर फालसाकी,
छोटी गुफा बन गई अति रम्य भूपै ।

नीचे सवेग सुख-शीतल तोय फूटा,
धारा प्रवाहित हुई अति स्वच्छ-नीरा,
स्नानार्थ शुद्ध जल शीघ्र सरस्वती ले
आई विधातृ-पद-पंकज-युग्म धोने ।

डोला समीर सुख-दायक मेदिनीपै
सारी रसा सरस मंडित मोदसे थी,
फूले प्रसून-गण वृक्ष-वरूथके भी,
माणिक्य थीं उगलती खानि पर्वतोंकी।

फैला कभी न जगमें इस शीघ्रतासे,
ऐन्द्रीय अस्त्र-रव, तेज दिनेशका भी,
जैसी प्रचंड गतिसे यह वृत्त फैला,
'निर्वाण-मंत्र-प्रद बुद्ध, अहो! पधारे।'

ज्यों ही गया भवनमें यह वृत्त सारा,
ले पालकी चल पड़ीं सखियाँ सयानी,
जाना किसी सुमुखिने न कि छद्मवेषा
लेके चलीं त्वरित यान दिगंगनाएँ।

मंजीर ढोल, ढफ, चंग, मृदंग नाना,
बाजे बजे गहगहे, उमहा त्रिलोकी,
ऊँची उठी अचल-श्रृंग-परंपरा-सी
संसार-सिन्धु-सुख-तुंग-तरंग-माला।

गीर्वाण गान करते नभ-यानसे थे,
निर्घोष यों ककुभ-गह्वरमें समाया,
'संसारके सुखद, भूतलके विजेता,
निर्वाण-शान्ति-प्रद गौतमदेव आये'

ज्यों भूपने स्व-सुत-संभव-वृत्त जाना
ऐसे हुये मुदित विग्रह-भान भूले,
जैसे तपोनिरत आत्म-निधान योगी
होता प्रसन्न-मन अंतिम सिद्धि पाके।

भूपालने, गणक शीघ्र बुला, कहा यों,
“ दैवज्ञ, देव, तुम भूत-भविष्य-ज्ञाता,
जन्माङ्क खींच सुतका, फल तो बताओ,
लो अन्न-वस्त्र-धन-भूषण दक्षिणामें ” ।

वेदी बनी परमपूत महा मनोज्ञा,
थापा गया कलश दीप-समेत आगे,
गौरी, गणेश, धरणी, ग्रह पूज बोले
दैवज्ञ जन्म-फल दैव-विधातृका यों—

“ हे भूप, पुत्र भवदीय सुभाग्यशाली
होगा महा प्रबल भूपति-चक्रवर्ती,
ऐसे नरेश जगमें बहुधा न आते,
आते कभी तदपि वर्ष सहस्र बीते ।

“ हैं सप्त-रत्न सुख-प्राप्य इन्हें महीमें,
सर्वत्र पूज्य-पद-पंकज-युग्म होंगे,
आकृष्टसार कर चुम्बकको हराके
संसारका सकल पारस खींच लेंगे ।

“ आजानुबाहु अति सुन्दर शौर्यशाली
होंगे अशेष बल-वैभव-कान्ति-वाले,
होगा विशाल मन संश्रय भावुकोंका,
अर्थार्थि-आर्त-जिज्ञासु-सुधी जनोंका ।

“ है चक्र-रत्न, उसका फल यों कहा है,
जो अश्व, रत्न वह भी अति सौख्यकारी,
उच्चैःश्रवा-सम कुलीन तुरंग पाके
होगा सुपुत्र तव इन्द्र-समान भूपै ।

" मातंग-रत्न, अति अद्भुत ओजवाला,
एकाधिकार शक-राजकुमारका है,
नीतिज्ञ, विज्ञजन, सज्जन, सेवकोंसे
होंगे घिरे सकल-संसृति-सौख्यकारी

" श्रीरत्न है शुभ प्रिया-सुखका प्रकाशी,
भार्या महागुणवती सुमुखी मिलेगी,
सौन्दर्यमें, चरितमें, यशमें त्रिरूपा,
वागीश्वरी, जलधिजा, गिरिनन्दिनी-सी।"

राजा हुये मुदित और प्रसन्न ऐसे
दो दंड एकटक ही लखते रहे वे,
बोले तदा सचिवसे "सब राज्यमें हों
आनन्द, मंगल, कुतूहल, खेल नाना।"

ऐसे असंख्य प्रति-धाम सजे पताके
श्यामायमान गृह-द्वार हुये पुरीके,
दैवी समीर चल नन्दनसे पधारा,
आकाश-पुष्प, सच हो, बरसे धरापै।

धाईं शशांकवदनी गजगामिनी भी,
धाईं कुरंग-झख-पंकज-खंजनाक्षी,
आईं निछावर लिये सुत देखनेको,
आईं सभी सुभग मंगल गीत गातीं।

थे द्वारपै मुदित मागध-सूत गाते,
वर्चस्व शाक्य-नृप-वंशजका सुनाते,
पाते अपार हय-हस्ति-हिरण्य-हीरे,
हो हर्ष-युक्त 'जय-जीव' मना रहे थे।

सारे सुमार्ग, पथ, पादप तीरवर्ती,
सींचे गये विपुल चन्दन-नीरसे थे,
उत्तुंग केतु प्रति-मंदिरपै विराजे
जैसे अनूरु-रथके फहरे पताके ।

थे रात्रिमें नगर-वृक्ष स-दीप होते
दीपावली प्रकृति ज्यों रचती मुदा हो,
या बुद्ध-जन्म सुन अंबरसे सितारे
आके सभी विटप-मध्य विराजते हों ।

सारी पुरी लख पड़ी इस भाँति भूपै
आई अनेक अलका-अमरावती हों,
नाना समूह कवि और कलाधरोंके
आनन्द-युक्त समुपस्थित धाममें थे ।

यों ही प्रमोदमय बारह मास बीते,
जाना रहस्यमय काल नहीं किसीने;
थे लोग विस्मित लगे यह सोचनेमें,
क्यों हो गया दिवस द्वादश ही घड़ीका ?

गंधर्व, नाग, ऋभु, किन्नर, यक्ष, सारे
गीर्वाण-वृन्द फिरते पुरमें सुखी थे,
था भाग्य धन्य उनका दृगसे जिन्होंने
देखा मुनीन्द्र-मन-मानस-हंस प्यारा ।

जाना किसी मनुजने न रहस्य ऐसा,
(सर्वज्ञसे अधिक कौन वरेण्य ज्ञाता ?)
सारी रसा सरस, अम्बर भी सुखी था,
थी रोदसी परम-मोदमयी लखाती ।

शार्दूलविक्रीडित

जो सर्वत्र विराजमान नभमें, जो भूमि-पातालमें,
जो विश्वेश समस्त विश्व रचता, जो पालता-नाशता,
जो वाणी-मनसे परे, जगतके निर्वाणका रूप जो,
लीला है ललिता अनूप उसकी माया मनोमोहिनी।

वसन्ततिलका

ज्यों ही व्यतीत वह वर्ष हुआ घड़ीमें,
शाक्येन्द्रने गणक-वृन्द सभी बुलाये,
नक्षत्र-ज्ञान-निधि, ज्योतिषके प्रणेता,
आचार्य-वृद्ध, मति-शुद्ध, गुणी पधारे।

पूछा कि "हे गणकवृन्द, विचारिये तो
हो ख्यात पुत्र जगमें किस नाम द्वारा?"
दैवज्ञ-यूथ-गुरु पंडित-श्रेष्ठ बोले
जो नामधेय बहु राजकुमारके थे।

"आनन्द-सिन्धु, सुर-वन्द्य, अशेष-ज्ञाता,
संसार-सार, करुणामय, शान्ति-दाता,
क्या नाम ले नृपति, मैं उनको पुकारूँ,
सर्वार्थ-सिद्धि जिनकी अनुगामिनी हो।

"जो पूर्ण सृष्टि रचते क्षण-मात्रमें ही,
ब्रह्माण्ड-नाश करते पल-एक-हीमें,
है सिद्धि-शक्ति जिनके करमें अनूठी
सिद्धार्थ-नाम-धर नंदन आपके हैं।"

बोले महीप सुन सौख्यद विप्र-वाणी,
"हे हे तपोधन, महामति, भाग्य-ज्ञाता,
अन्तर्दृगब्ज भवदीय विलोकते हैं
भूकी चराचरमयी रचना सुरम्या।

"हे विप्रवर्य्य, यह बालक आपहीका
फूले, फले, सुख लहे, विहँसे, बड़ा हो,
आशीष, हे सुमति, दो," कह भूपने यों,
डाला प्रवीण-पदपै सुतको सुखी हो।

ले गोदमें, चरण छूकर विप्र बोला
"श्रीमान आप करते यह क्या, कहें तो,
हूँ धन्य पाकर हुआ जिनके पदोंको,
दुष्प्राप्य वे गिरिश-विष्णु-विरंचिको भी।

"बत्तीस चिह्न जिनके सब मोक्ष-दाता,
हैं अंग-अंगपर कोटि निशेश वारे,
ऐसे महान षडभिज्ञ विशुद्ध ज्ञानी
उत्पन्न होकर हुये सुत आपके हैं।

"जो भीतिसे विषयके घन देख भागें
वे हैं मराल मुनि-मानसके विहारी,
होंगे स-भेद इनसे सरमें, महीमें,
पीयूष-पाथ-सम धर्म-अधर्म दोनों।

"उत्पन्न है कमल मानव-मानसोंका
जो काम-कंटक-विहीन सदा रहेगा,
नाना-प्रदेश-पुर-आगत भृंग-प्रेमी
गन्धोपदेश सुख-धाम प्रकाम लेंगे।

" संदीप्त है सदनमें मणि-दीप-आभा,
जो शीत-ज्योति-कृत-कोमल-कान्तिशाली,
जो हीन हो मलिनता-अघकारितासे
होगी स्व-धर्म-प्रति भाव-प्रकाशवाली ।

ऐसा हुआ उदित सुन्दर चन्द्रमा है,
जो नाश-राहु-भय-मुक्त सुधा-प्रकाशी,
ऐसा हुआ उदित पूपण ध्वान्त-हारी
'**भूतो भविष्यति न वा इति मे विचारम् ।**'

यों बार बार द्विजने करके प्रशंसा,
ले पाद-पद्म निज मस्तकपै चढ़ाया,
दे गोदमें जननिकी, उसको सुनाया,
" सम्राज्ञि, धन्य भवती प्रथमा सती हैं ।

" ऐसे सुपुत्र-सम पुत्र न पा सकें जो
तो युक्त है करुण क्रन्दन नारियोंका,
जैसे कहीं कनक-राशि विलोकते ही
होते अकिंचन दुखी धन-हीनतासे ।

" संतापहीन यश-दीधिति अर्यमाकी,
सम्राज्ञि, तू बन गई उदया दिशा है,
सर्वार्थ-मंगल-करी यह ज्योति प्यारी
संसारको प्रथित पुण्य-प्रकाश देगी । "

ऐसा चरित्र कह विप्र स-मोद लौटे,
सारे सदस्य अपने गृहको सिधारे,
आने लगे नृपतिके गृहमें बधाए,
सम्मान ले करद भूपति भी पधारे ।

कौशेय, अंशुक तथा घनसार मोती
कश्मीर-चीन-कृत शाल विशाल-शोभी,
थे राज्यमें वणिक जो अति मुग्ध लाये
आये सभी अगर-चंदन-वस्तु-वाही।

यों ही सभी स्थपति-कारु स्व-वस्तु लेके
आते वहाँ, नृपतिसे बहु द्रव्य पाते,
गाते कुमार-गुण, भूपतिको सुनाते,
जाते स्वकीय गृह, मोद महा मनाते।

भूपालसे सकल सेवक-सेविकाएँ
पाते सभी वसन-भूषण मुग्ध होते,
प्रासाद-कार्य करते जिस लग्नतासे
सो देख भाग्य सुर-वृन्द सराहते थे।

ऐसा प्रमोद नर-नारि-समूहमें था
ज्यों पुत्र-जन्म सबके घरमें हुआ हो,
आनन्द-तोयनिधि जो उमड़ा महीपै
तो मेरु-मंदर-समेत त्रिलोक डूबा।

इंद्रवज्रा

धन्या महीमें शक-राजधानी,
माया स-शुद्धोधन धन्य-धन्या,
धन्या कथा श्रीघन-जन्मकी जो
धन्या बनाती कवि-कीर्तिको भी।

३—उन्मेष

द्रुतविलंबित

तज समस्त अनादि-अनन्तता,
अमित उच्च उपाधि-विहीन हो,
भुवन-मोहन बाल-स्वरूपसे
प्रभु लसे जननी-कृत-क्रोडमें ।

मकरकेतनके तनकी छटा
लख पड़ी हिम-गौर शरीरपै,
जिस प्रकार घनान्त-पयोदके
पटलपै स्थित दामिनिकी प्रभा ।

पद-सरोरुहकी वह लालिमा,
द्युतिमती नखकी वह श्वेतता,
जननि-अंबक-बिम्बित नीलिमा,
लख त्रिवेणि-प्रभा तिगुनी हुई ।

नख न थे, प्रभु-आनन-होड़में
बन गया शशि विंशति खंडका,
ग्रहण-ग्रस्त, कलंकित-चित्त हो,
पड़ गया अथवा पद-पद्मपै ।

कुलिश-अंकुश-अंकित पादके
तल लसे शशि-सूर्य-समान थे,
परम क्रोधित जो अघ-राहुपै
कुलिश-अंकुश-सज्जित हो चले ।

सतत-चालित पाद-प्रहारसे
रणन जो करती अति मंजु थीं,
झनक पैंजनियाँ पद-पद्मकी
वितरतीं श्रुतिमें अभिरामता ।

उदरकी त्रिवली वर वीचि-सी,
सुघर नाभि लसी जल-भृंग-सी,
शशि-दिवाकर-श्वास-प्रभावसे
उतरता-चढ़ता उर-सिन्धु था ।

कर लसे वलयादिक-युक्त थे,
धवल कल्प-लता-सम सोहते,
वह स-मुष्टिक मुष्टिक-शत्रु-से
फड़कते जग-रक्षण-हेतु थे ।

कलित कंबु-समान सु-कंठ था,
पदक थे जिसमें शुभ सोहते,
चिबुक, कर्ण, अमोल कपोल भी
सुभग, सुन्दर थे, अति मंजु थे ।

मृग-सरोज-विनिन्दक नेत्र भी
चपल खंजन-मीन-समान थे,
निरखके मुखचन्द्र कुमारका
अघ-कशा-सम थी लट हो रही ।

झिंगुलिया शुभ पिंगल रंगकी
रजत-राशि-समान तनु-प्रभा,
लख पड़ी अति अद्भुत-रूपिणी,
रजनि-रंजन आतप-युक्त ज्यों ।

उछलना, गिरना फिर गोदमें,
विहँसना, भरना किलकारियाँ,
सहज-चंचल अंग कुमारके
सुखद थे जननी-दृग-कंजको ।

पलँगसे पलनापर घालके
जननि आनन-इन्दु विलोकती,
तनुजको कर दोलित एकदा
गुन-गुनाकर गायन गा उठी—

भुजंग-प्रयात

मुझे देख राजा, मुझे देख राजा,
प्रफुल्लाब्ज-से नेत्रसे देख, राजा,
मुदा मीन-सी आँखसे देख राजा,
मुझे देख, राजा, मुझे देख, राजा !

इसी कान्तिको नित्य देखा करूँ मैं,
इसी रूपको लोचनोंमें भरूँ मैं,
इसी ध्यानको चित्तमें ला धरूँ मैं,
मुझे देख, राजा, मुझे देख, राजा !

बना स्वर्णका उत्तरासंग तेरा,
लसी हेमके कुंडलोंकी प्रभा है,
तुझे प्राप्त सोना, न तू किन्तु सोना,
मुझे देख, राजा, मुझे देख, राजा !

नहीं हाथमें तू खिलौना लिये है,
छिपे स्नेहका दण्ड ऊँचा किये है,
यही प्रेम-सीमा, महाराज्य-सत्ता,
मुझे देख, राजा, मुझे देख राजा !

तुझे स्नेह दूँगी, तुझे प्यार दूँगी,
तुझे मोद दूँगी, तुझे मान दूँगी,
पढ़ाके-लिखाके तुझे ब्याह दूँगी,
मुझे देख, राजा, मुझे देख राजा !

किसी भूपकी कन्यका तू बरेगा,
किसी पाणिको पाणिमें तू धरेगा,
इसी गोदको दोगुनी आ भरेगा,
कहा मान, राजा, मुझे देख, राजा !

कभी आँखसे आँख तेरी लड़ेगी,
कभी कंठमें ब्याह-माला पड़ेगी,
कभी चित्तकी ग्रन्थिको खोल कोई,
तुझे स्थान देगी, मुझे मान, राजा !

प्रिया-भक्ति तेरे दृगोंमें लुकी है,
महाशक्ति नन्हें करोंमें छिपी है,
बनेगा कभी विश्वका भूप, बेटा,
यही लेख, राजा, मुझे देख राजा !

बड़ा हो कभी तू किरीटी बनेगा,
कभी देह तू भूषणोंसे सजेगा,
महाराज हो राज्य ऐसा करेगा,
त्रिलोकी कहेगा, 'मुझे देख, राजा !'

द्रुतविलंबित

विहँसते पलनेपर लालको
लख, न जान सकी यह अम्बिका,
गत-विकार निरामय जीवका
सहज आनँद-युक्त स्वभाव है।

निपट ही वट-अक्षय-पत्रके
सदृश तल्प लसा रमणीय था,
पद-अँगुष्ठ किये मुखमें यदा
मुदित बालमुकुन्द दिखा पड़े।

अधखुले कलि-निन्दक वक्त्रमें
दशन-युग्म प्रकाशित यों हुआ,
जिस प्रकार कला नवचन्द्रकी
निकलती कल कैरव-कोषसे।

कमलके सम आननमें, अहो !
दशन दो विलसे इस भाँतिसे,
सुख-तरंगित मानसमें यथा
उछलके युग बुन्द थिरा गये ।

सरस सस्मित आननमें लसी
मधुरिमा सुखदा मुसकानकी,
जननिके मुख-मंडल-व्योममें
उदित दो द्विजराज अनूप थे ।

हृदयसे अनुभूति-प्रकाशकी
किरण दो रद हो मुखसे कढ़ीं,
उभय-ज्योति हुई मिल एक-सी,
जननि होकर अद्वयवादकी ।

रदप-अंबर-डंबर-मध्य दो
दशन-तारक तारक-मंत्र थे,
निरख ली जिसने उनकी प्रभा
समझ सार गया वह 'शून्य'का ।

विहँसते उनके मुख-कंजमें
नव-प्ररोहित दाडिम बीज थे,
निरख कौतुक-संयुत अंबिका
स्व-तन भी न सम्हाल सकी, अहो !

कमलकी छवि, कान्ति गुलाबकी,
कलित कुन्द-कली-अभिरामता,
धनुष-बंकिमता, अलि-स्निग्धता,
सब समूढ़ हुई वदनाब्जमें ।

जगतकी सुषमा, अभिरामता,
अनघता, शुचिता, सुखकारिता—
सकल-विश्व-रहस्य-मयी बनी
सुरभि नन्दनके वदनाब्जकी ।

ललकना जननी-मुख देखके,
झिझकना लख सेवक-सेविका,—
सफल गौतमका बनता रहा
सकल-बाल-चरित्र-प्रयत्न भी ।

समय बीत गया कुछ और भी
सुखद बाल-क्रिया करते हुये,
जब अचानक अंगनमें उन्हें
जननिने घुटनों चलते लखा ।

सुख-तरंग उठी उर-सिन्धुमें,
जननिके दृग निश्चल-से हुए,
ललक दौड़ उठा, उरमें लगा,
द्रुत लगी सुतका मुख चूमने ।

फिर बिठा कुछ दूर कुमारको,
ढिग बुला चटकाकर तालियाँ,
कुछ दिखाकर रंग-बिरंगका
कर बढ़ा करको गहने लगी ।

नृपति-नंदनका हँसना तदा,
खिसकना भरके किलकारियाँ,
जननिके ढिग जाकर मोदमें
उदरपै चढ़ना गह कंठको,

परम कौतुकसे पट खोलना,
त्वरित एक उरोज उघाड़ना,
भर कई चुबकी पय खींचना,—
अति अलौकिकतामय दृश्य था !

अजिरमें घुटनों चलते हुए
सुमुखमें कुछ वे जब डालते,
चकित-खंजन-लोचन अंबिका
त्वरित अंगुलि डाल निकालती ।

जननि अंशुक-अंबर-कोणसे
चरणकी रज थी जब पोंछती,
तब न थी वह किंचित जानती
अजिन-अंबर-अंजन है यही ।

इस प्रकार सुधी जब एकदा
अजिरमें रत क्रीडनमें रहे,
लख प्रसन्न हुई उदया दिशा
हँस पड़ी विधु-पूर्णप्रकाशसे ।

धवल, गोल, पयोमय पात्र-सा,
शकल-हीन कलाधर देखके,
गुन उसे निज क्रीडन-वस्तु वे
मचल सत्वर रोदनमें लगे ।

पद तथा कर उच्च उछालना,
व्यथित-से बन भूपर लोटना,
विलपना रजनीकरके लिए,
अजिरमें सहसा मचने लगा ।

प्रथम, बालकका हठ ही बड़ा,
फिर कहीं यदि राजकुमार हो,
समझ लें फिर क्या गृहमें हुआ,
भय स्वग्रन्थ-कलेवर-वृद्धिका ।

रुदन देख बढ़ीं सखियाँ सभी,
जननि वेगवती गतिसे चली,
ललक नन्दन ले निज गोदमें
सकल शान्ति-क्रिया करने लगीं ।

चिबुक चूम उन्हें चुमकारना,
सिसकियाँ भरते लख वारना,
स्व-पटसे तनकी रज पोंछना—
जननि सर्व-प्रयत्न-वती बनी ।

मन न कर्षित पै उनका हुआ,
धुन लगी बस एक निशेशकी,
विफल यत्न हुये सबके सभी,
रुदन शान्त हुआ न कुमारका ।

कर विचार चली ललिता सखी,
परिनिवर्तित दर्पण ले हुई,
विमल बिम्ब दिखाकर इन्दुका
जननिकी करुणानिधि लूट ली ।

नृपति-आलय-अंगनमें सदा
अभय जो चिड़ियाँ चुगती रहीं,
मुदित हो वह भी कुछ आ गईं
निकट क्रीडन-हेतु कुमारके ।

पकड़ते करके बल दौड़के,
गगनमें उनको फिर फेंकते,
फड़फड़ाकर पंख विहंग भी
उड़उड़ाकर भूपर बैठते।

यह मनोरम दृश्य विलोकके
मन निछावर माँ करती रही,
जब लगे पड़ने पद भूमिपै
वह तथागतकी गति देखती।

मधुर थी बजती कटि-किंकिणी,
चरण नूपुरके रवमें रमें,
ठुमकते चलना नृप-नन्दका
निरख कौन हुआ सुकृती नहीं ?

पकड़के जननी-कर-तर्जनी
उछलते हिलते-डुलते हुए
जब लगे चलने कुछ दूर वे
लख निमग्न हुए सुखमें सभी।

क्वणित हो कटिकी कलकिंकिणी,
परम मुग्ध हुई निज भाग्यपै,
रणन नूपुर यों करने लगे,
'हम बड़े पद-वंदनसे हुए'।

नृपति-आलय-दीप-प्रदीप्तिकी
नवनवा बढ़ती यह मंजुता
लख निशाकर भी सितपक्षका
असितपक्ष-निशाचर हो गया।

धवल वारिदसे तनुकी प्रभा,
बसन पिंगल आतपसे लसे,
शरदकी सुषमा अति मंजुला
बन गई उपमान कुमारका।

जिस-किसी नर-नारि-समूहने
सुत लखा नयनों निज भाग्यसे,
प्रकट देख लिया उसने, अहो!
सुफल स्वीय पुराकृत पुण्यका।

शार्दूलविक्रीडित

पिंडीभूत हुआ स-प्रेम महिषीका पुण्य प्रत्यक्ष ही,
होके मूर्त अनूप शाक्य-नृपका सौभाग्य ही आ गया,
आई भूतल-मध्य शास्त्र-श्रुतिकी साकार आराधना,
गौरीभूत हुई विलोक जिसको श्यामायमाना मही।

द्रुतविलम्बित

इस प्रकार कुमार शनैः शनैः
सदनसे जब बाहर आ गये,
निरखने उनको नृप-द्वारपै
सब प्रजा उमँगी अति मोदमें।

नगरके शिशु दौड़ पड़े सभी
नृपति-नन्दनके सँग खेलने,
विहँसते हँसते लसते सुखी,
चल पड़े निज भाग्य सराहते ।

नगरकी सब बालक-मंडली,
बन गई नृप-नन्दन-संगिनी,
उछलते, सबके सँग कूदते,
शिशु-चरित्र-प्रवीण कुमार थे ।

सुमुखियाँ झुक झाँक गवाक्षसे,
निरखतीं उनको जब मार्गमें,
जलज-आनन देख कुमारका
कमल-कानन थीं बरसा रहीं ।

सकल-बालक-मध्य कुमारकी
सुछवि थी इस भाँति प्रकाशती,
मुदित तारक-मंडलमें यथा
उदित पूर्ण कलाधरकी कला ।

विशद बाल-चरित्र शकेशका
अमित अद्भुत आदरणीय है,
चरितमें रति सद्गति-दायिनी,
अकथनीय कथा कमनीय है ।

कर पदार्पण सप्तम वर्षमें
बढ़ हुये जब वे वसु अब्दके,
नृपतिने बुलवा द्विज-ज्योतिषी,
विशद यज्ञ रचा उपवीतका

नगरमें जितने बुध विप्र थे,—
अपर पंडित भी शक-राज्यके,—
नृपति-आलयमें समवेत थे
उस महामहिमामय योगमें ।

सुभग सुन्दर तोरण द्वारपै,
अजिर-मध्य वितान रचा गया,
हवन-कुंड बनाकर की गई
समिध-आज्य-श्रुवादिक-योजना ।

अमृत-पत्र तथा कुश-मुद्रिका
अजिन, सारघ ले, दधि-दर्भ भी,
गुरु-पुरोहित-पंडित-मंडली
लग गई उपवीत-प्रबन्धमें ।

अति पवित्र बनी शुभ वेदिका,
घट स-नीर, स-धान्य, स-दीप था,
कर नवग्रह-पूजन रीतिसे
द्विज लगे उपवीत-विधानमें ।

शार्दूलविक्रीडित

बैठे अध्वर-पीठपै जब मुदा सिद्धार्थ सिद्धाग्रणी ।
विप्रोंने पढ़ वेद-मंत्र रचना प्रारम्भकी यज्ञकी ।
भूयिष्ठा लख हव्य-द्रव्य-जनिता शुद्धाग्नि-उत्तेजना
थी अध्यात्म-प्रकाश-लोक-विभवा श्री वामनीभूत-सी ।

संपूर्णा जब हो गई हवनकी वेदोक्त सारी क्रिया,
देही हो द्विज-व्याज मंत्र श्रुतिके आये उसी कालमें,
बैठे लेकर ब्रह्म-सूत्र करमें वामाङ्गसे मेलने,
ऐसे दिव्य रहस्य-युक्त मखके ब्रह्मा पुरोधा बने।

जो कासार-समान स्वच्छ मह था, तो विप्र थे हंस-से,
राका-रंजन-विम्ब-सा लस रहा था मौलि सिद्धार्थका,
देखा सूत्र मृणाल-तुल्य करमें तो भास होने लगा,
होता हो द्विजराज पूजित, अहो! सारे द्विजोंसे यथा।

मौञ्जी स्कन्ध-निधायिनी सुभग थी सारंगकी मेखला,
ऐसी थी कटिमें सुशोभित हुई, जैसे हिमाहार्यको
घेरे हों कर सूर्यके, चरणमें थी राजतीं पादुका
जो अज्ञान-प्रसूत पंक उरका थी छेदती सर्वथा।

दोना ले करमें कुमार घरमें आये महा सौख्यसे
माताने बटु-पुत्रको स्व-करसे भिक्षा स-औदार्य दी;
बेचारी जननी कदापि मनमें क्या जानती थी तदा,
भावी भिक्षु-पयोद-विम्ब पहलेसे ही पड़ा भूमिपै।

द्रुतविलम्बित

इस प्रकार हुआ उपवीतका
सुभग यज्ञ महा सुख-धाम था,
विपुल तुष्ट हुये द्विज-ज्योतिषी
नृपति-पुष्कल-संपति-दानसे।

फिर कुमार गये गुरु-गेहको,
विविध-ज्ञान-उपार्जनके लिए,
बन गये गुरु भी इस योगसे
सकल-पंडित-मंडल-अग्रणी ।

उदरमें जिसके सब सृष्टिका
निहित ज्ञान-निधान महान है,
समयके अवकाशकके लिए
समयका अवकाश न चाहिये ।

लिपि लिखी गुरुने शुभ मागधी,
लिख कहा, "सुत, ठीक लिखो इसे,"
लिख चले लिपियाँ वह विश्वकी
निरख श्रीगुरु विस्मित हो गये ।

खश, पिशाच, हिमालय, अंगकी,
मग, खरोष्ट्र, तुरुष्क, कलिंगकी,
मलय, मालव, उत्कल, वंगकी
कुँवरने लिपियाँ लिख दीं सभी ।

विरच अंबरको जिसने तभी
गगनकी गिन लीं सब तारिका,
गुण असंख्य सदा जिसमें भरे,
लघु सभी गणना उसके लिए ।

गुरु महामति गौतम-विज्ञता
चकित-विस्मित थे अवलोकके,
जब प्रयोग चला न द्वितीय तो
चरणमें लघु बालक-से गिरे ।

सकल सृष्टि बनी तबसे घटी
प्रथम ही घटना इस योगकी,
गगन व्याज हुआ महि-मूलका,
गुरु रहा गुड़, शिष्य सिता बना ।

सहज-श्वास सभी श्रुति हैं जिसे
पठन क्या उस उद्भुत व्यक्तिका ?
इस अनिर्वचनीय प्रसंगको
समझ कौतुक कौतुकको हुआ ।

तदपि शास्त्र हुये रसनाग्र थे
नृपति-नंदनको लघु कालमें,
फलितसिद्धि हुई द्रुत ही उन्हें
परम पूत असंख्यक जन्मकी ।

शार्दूल-विक्रीडित

पाती वृद्धि विशेष नित्य व्ययसे, अक्षय्य-कोशोद्भवा,
होती संचयसे विनष्ट द्रुत ही, विद्या विचित्रा महा;
ऐसी उद्भुत वस्तु प्राप्त करके वे चाहते शक्ति थे,
होती जो वह विश्वमें न महती तो ब्रह्म भी क्लीव था ।

द्रुतविलम्बित

पठन पूर्ण हुआ जब शास्त्रका
तब लगे नृप-नंदन सीखने

अति-प्रहार, प्रचालन अश्वका,
धनुष-कर्षण, वर्षण बाणका।

नयन-मीलनमें वह हो गये
कुशल वेधनमें चल लक्ष्यके;
सकल शस्त्र-क्रिया उनको, अहो!
अवगता चलते चलते हुई।

फलक-कुन्त-त्रिशूल-गदा-क्रिया
नृपति-नंदनको जब आ गई,
तब परीक्षण-हेतु कुमारको
नृप-समीप मुदा गुरु ले गये।

नृपतिने सुतको अति प्यारसे
ढिग बिठा दिखला तरु सामने,
यह कहा, "उसकी लघु डालपै
विहग है वह जो दिखला रहा

"वध करो उसका शर एकसे
कुशलता, तब, स्वीकृत हो मुझे।"
सुन कुमार लगे कहने, "प्रभो,
जनक आप मदीय सु-पूज्य हैं,

"विनय है इतनी, यदि ध्यान दें,
सदय भूरि कृपा खगपै करें;
अभय-दान, सुना, नृप-धर्म है,
विहग आश्रित है भवदीय ही,

" उचित है अतएव न मारना
प्रभु विचार करें, करुणा करें ।
कुशलता अपनी अतएव मैं
अपर भाँति दिखा सबको रहा । "

कह, लिया शर दक्षिण हस्तमें,
लख विहंगमके पद-मध्यको
विशिख एक अचूक चला दिया
उड़ विहंग चला शर-यानपै ।

फिर किया युग बाण शरासपै,
सहित-दर्प चले शर कौतुकी,
गगनमें उड़ते कलविंगके
बिन-बिधे चिपके प्रतिपक्षमें ।

गति रही न विहंग-पतत्रमें
उड़ चला वह केवल बाणपै;
शर चतुर्थ चला जब अन्तमें
विहग जीवित आ महिपै गिरा ।

परम हर्षित दर्शक-मंडली
करतल-ध्वनि भी करने लगी
खग स-विस्मय हो नभमें उड़ा,
रह गये सब दर्शक देखते ।

कुशलता लख राजकुमारकी
अति प्रसन्न हुए नर-नाथ भी,
सचिवसे मति की जिससे रमे
मन मृगव्य-प्रसक्त कुमारका ।

जब कभी हय-चालनमें हुई
रभस होड़ सवार-समूहसे
लख पड़ा क्षणमें द्रुत दौड़ता
कुँवरका हय अग्रग यूथका।

लख कुरंग तुरंगम डालते,
सु-रुचि थी अनुधावन-मात्रकी,
लख थके मृगको हय रोकते,
सदनको फिरते वह नित्य यों।

गहनमें अति-धावनसे यदा
निरखते श्रम-खिन्न तुरंगको,
त्वरित ही उसको ठहरा तदा
थपक देकर थे चुमकारते।

रभस धावित देख कुरंगको,
अध-खिंचा धनु लेकर हाथमें,
तुरग रोक कभी कुछ सोचते,
हनन थे करते न वराकका।

जिस प्रकार प्ररोहित बीजसे
प्रथम अंकुर है लघु फूटता,
फिर वही बढ़ता युग-पत्र हो
अयुत-पत्र-वती छवि धारता।

उस प्रकार कुमार बड़े हुए
परम आनँद-दायक भूपको,
उलहती वयके अनुसार ही
हृदयमें करुणा लहरा उठी।

शार्दूलविक्रीडित

यों ही राजकुमारको सरसता, आनन्द-संमोहिता,
श्री, सौभाग्य, प्रसन्नता, सुभगता संप्राप्त थी विश्वमें;
सोचा किन्तु न भूल एक क्षण भी संसार क्या भेद है,
बाधा, शोक, विशाद, कष्ट, उनको थे पुष्प आकाशके।

राजाके सँग चाटुकार यदि हों तो कान ही फूँक दें,
ज्वाला हो यदि नेत्रमें महिमकी, तो आँख जाती रहे,
सीमा-हीन स-काम हो हृदय, तो क्या देर है नाशमें,
है साम्राज्य विनाश-हेतु उसका जो हीन-कर्तव्य हो।

ले संस्कार समुच्च भूप जगमें है जन्म लेता यदा
होता है अकलंक उच्च कुलका कल्याणकारी शशी,
शिक्षा हो यदि प्राप्त बालपनसे साम्राज्य-संधानकी
तो होता वह विक्रमी, अति बली, योद्धा, प्रतापी, तपी।

होता भूप मनुष्य ही, इसलिए आबद्ध है भाग्यसे,
होती मुद्रित मौलिपै नृपतिके संसार-शीतोष्णता,
पाता भूभृत शान्ति त्याग-पथसे, आक्रान्त हो क्रान्तिसे
जाता काननको सुधी जरठ हो या हीन हो राज्यसे।

४—अनुकम्पा

शिखरिणी

उषा लोका रम्या दिवस-मुखमें राग भरके
हँसी ज्यों ही भूपै प्रकट नभमें भास्कर हुआ,
विहंगोंकी बोली श्रवण-सुखदायी सुन पड़ी,
चले सारे-साथी-सहित तब सिद्धार्थ बनको ।

वंशस्थ

निदाघका पूर्व-पदी प्रभात था,
अनुष्णता थी सुखदा समीरमें,
हुई समालोकमयी वसुन्धरा,
महा पिशंगा प्रथमा दिशा लसी ।

सुगंध-शेषा गति वायुकी हुई,
सितांग-शेषा लख चन्द्रिका पड़ी,

प्रशान्ति-शेषा सब रोदसी बनी,
प्रभात-शेषा जब यामिनी लसी।

अनन्त सेना बहुतारकावली
शशांक-सेनापति-पार्श्ववर्तिनी,
प्रहारती पंकज-कोष-मंडली
विहाय युद्ध-स्थलको कहाँ गई?

चला तमो-पान्थ नभो-निवाससे
कुटी मिली शान्त सरोज-संपुटी,
निशा बिताई मधु-पानमें वहीं
मिलिन्द होके उड़ प्रातमें गया।

निहारते ही तम-हीन व्योमको
पुकारते कातर चक्रवाकके
न चक्रवाकी धर धीरता सकी
उड़ी, हुई शीघ्र रथाङ्ग-संगिनी।

न छू सके पुष्पवती लता कहीं,
मिले न मातंगवती तरंगिणी,
अधीर धूलि-ध्वज हो इसीलिए
प्लवंग-सा पादप-शृंगपै चढ़ा।

स्वकीय अस्तादि-विलंबिनी प्रभा
समेट राकेश अदृष्ट हो गया,
सुवर्णवर्णी उदयाद्रि-सानुपै
चढ़ा जभी बाल अनूरु-सारथी।

मुहूर्तमें ही अरुणाग्रणी चला
स-गुच्छ-बन्धूक-प्रभा विदारता,
उठा महा रक्तिम कीर-तुंड-सा,
सु-दिग्वधू-कंकण-सा तमिस्रहा ।

स-मोद सिद्धार्थकुमार अश्वपै
सवार हो, ले सँग देवदत्तको
मृगव्यके व्याज चले अरण्यको
दिवाचरोंकी पशु-वृत्ति देखने ।

बनी हुई थी पुर-राजमार्गमें
अनूप शोभामयि पण्य-वीथिका,
प्रयाण प्यारे नृपके कुमारका
विलोकती थी जनता समुत्सुका ।

अनूप सिद्धार्थ-स्वरूप देखके
प्रजा हुई हर्षित रोम-रोम यों,
घिरी घटा ज्यों घनकी विलोकके
कदम्बके पादप-पुंज फूलते ।

नरेश बैठे अपने निवेशपै
विलोकते थे चलना स्व-पुत्रका,
अदृष्ट अन्त:पुरके गवाक्षसे
निहारती थी महिषी कुमारको ।

कभी घुमाते वह सिन्धुवार थे,
कभी चलाते कुछ धैर्यसे उसे,
कभी दिखा चाबुक थे उछालते,
कभी नचाते बहु एड़ दे उसे ।

अरण्यको प्रात-प्रयाण देखके
महा प्रसन्ना सकला प्रजा हुई,
नरेश साम्राज्ञि-समेत गेहसे
लगे मुदा लोचन-लाभ लूटने।

परन्तु दो ही क्षणमें कुमार यों
अदृश्य हो काननको चले गये,
सुनी सभीने हय-टाप दूरसे
लखी वहीं उत्थित धूलिकी ध्वजा।

व्यतीत थी एक घड़ी हुई अभी
दिनेशका स्यन्दन व्योममें चढ़ा,
वसुन्धरामें अब प्राप्त हो चली
प्रचंडताको वृष-भानु-चंडता।

लगे हुए थे पथके समीप ही
सुदीर्घ ऊँचे खलियान धान्यके,
विहंग-गो-माहिष-श्वानसे घिरे
किसान सारे कृषि-कार्य-मग्न थे।

रसालके पादप आम्र-भारसे
लचे हुए थे नव-नारि-लंक-से,
'कुहू-कुहू' कोकिल बोल बोलके,
कुमारके स्वागतमें प्रसक्त थे।

अदूरवर्ती सरके समीपमें
नितान्त ही कौतुक-दत्त-चित्त हो
विहाय गो-चारण-प्रक्रिया वहाँ
महासुखी धावित ग्वाल-बाल थे।

प्लवंगका वल्गित डाल-डालपै,
विहंगका कूजन पात-पातपै,
मिलिन्दका गुंजन फूल-फूलपै,
विलोक आनन्द कुमारको हुआ ।

अरण्यके दुर्गम मार्गसे यदा
बढ़ी हयारूढ़ कुमार-मंडली,
इतस्ततः खेचर भागने लगे,
लवा तथा तीतर झाड़में छिपे ।

मयूर बोले, अहि भूमिमें धँसे,
उड़े रसालस्थित चाष वेगसे,
कलिंग भागे, कुररी छिपी कहीं,
विहाय कासार उड़े वलाक भी ।

लखी यदा पादप-हीन आयता
वसुन्धरा कानन-मध्य-वर्तिनी,
तरंगिणी थी बहती प्रवेगसे
सुवर्तुलाकार-प्रकारसे जहाँ ।

समूह एकत्रित हो गया वहीं,
सभी भटोंने क्षण-एक शान्ति ली,
तदा समायोजन-दत्त-चित्त वे
मृगव्यकी घात विचारने लगे ।

तुरन्त ही एक मराल-पंक्तिकी
ललाम लेखा लख व्योममें पड़ी,
विलोक वर्षागम जो सभीत हो
प्रवेगसे मानस-ओरको चली ।

मनोरमा सुन्दर अर्ध-वृत्त-सी,
समुज्ज्वला मौक्तिक-दाम-सी लसी,
निसर्गकी स-स्मित दन्त-पंक्ति-सी
चली महा मंजु मराल-मंडली।

उदग्र-ग्रीवा रजनीश-रश्मि-सी,
स-धैर्य-उत्तोलित पुच्छ-पक्ष थी,
सटे हुए थे पद-युग्म पेटसे,
स-हंस-हंसी उड़ती स-हास थी।

मराल-माला लख देवदत्तकी
प्रवृत्ति हिंसामय शीघ्र हो गई,
दुरन्त नाराच कढ़ा निषंगसे
चढ़ा स-टंकार शरास शीघ्र ही।

स-शब्द नाराच चला भुजङ्ग-सा,
अमोघ छूटा वह रामबाण-सा,
लगा महाकाल-त्रिशूल-सा जभी
गिरा स-कूंकार मराल भूमिपै।

कुमार दौड़े सुन हंसकी व्यथा,
उगा दया-भाव दया-निधानके,
निकाल नाराच तुरन्त पक्षसे,
लगा गलेसे चुमकारने लगे।

पुरा यथा धूलि विहाय रामने
स-हर्ष दी सद्गति वृद्ध गृद्धको,
तथैव सिद्धार्थकुमार हंसपै
हुए दयाशील महान प्रीतिसे।

त्रिलोक-स्रष्टा जगदेक-हेतुकी
महाभुजा, कल्प-लता-प्रसूतिनी,
प्रगाढ़ छाया करती अधीनपै
समाप्त होता भव-ताप आप ही ।

कुमारके अंक मराल देखके
लगा उसे सेवक एक माँगने,
कहा, " हुआ खेचर देवदत्तका
अतः कृपानाथ, मुझे प्रदान हो ।

" स्व-पक्ष-गामी जब था, स्वतन्त्र था,
न था किसीका अधिकार हंसपै,
विहंग हो आहत देवदत्तसे
हुआ उन्हींका, कृपया प्रदान हो । "

परन्तु सिद्धार्थ मराल-पृष्ठपै
फिरा फिरा हाथ सुधार पक्ष भी,
सुवाक्य बोले, " कह, स्वीय स्वामिसे
शकुन्त दूँगा न कदापि मैं उसे ।

" न स्वत्व है भक्षकका मृगव्यपै,
मरालका रक्षक मैं स्वतन्त्र हूँ,
अतः न दूँगा खग देवदत्तको
कहो कि आखेट करे वनान्तमें । "

तुरन्त लौटा जन, देवदत्तसे
कहा " अनुज्ञा यह है कुमारकी
कि आप जायें कृपया वनान्तको
करें प्रतीक्षा न कदापि देवकी । "

सभी भटोंके सँग देवदत्त भी
चले गये काननमें तुरन्त ही,
रहे वहाँ संस्थित एक-मात्र जो
अमोघ त्राता जग-जीव-जन्तुके ।

पुनः पुनः प्यार दिखा दिखा उसे,
फिरा फिरा हाथ मराल-बालपै,
बँधा बँधा धैर्य स्वकीय दृष्टिसे,
सुना सुना श्रीघन बोलने लगे—

"महान हिंसामय विश्वमें, अहो !
मनुष्य-संतापित मूक जीव हैं,
प्रकाशनेमें उनकी व्यथा-कथा
समर्थ मेरे अतिरिक्त कौन है ?

"त्रिलोक-साहाय्य, दया-निधान मैं,
वराकका आश्रय एक-मात्र हूँ,
सदा इसी भाँति समस्त विश्वको
दिया करूँगा सहसा सहायता ।

"व्यथा-तरंगाकुल विश्व-सिंधुमें
प्रचंड हिंसा-सम वाडवाग्नि है,
अतः करूँगा चढ़ धर्म-पोतपै
तुरन्त निर्वाण-प्रदान मैं उसे ।"

मरालसे यों कहके उसे तजा,
उड़ा, मिला सो शकुनी स्व-पंक्तिमें,
तदा समीपस्थ विशाल शालके
तले विराजे प्रभु शान्त भावसे ।

मराल-पीड़ा-अतिरिक्त दुःख वे
न जानते भूतलमें कदापि थे,
परन्तु ध्यानस्थ विराज मूलपै
विचारने विश्व-व्यथा-कथा लगे।

अभी अभी दृश्य विलोक ग्रामका
यहाँ पधारे तब चित्त मुग्ध था,
लखा जभी जीव-व्यथा-प्रकार तो
वृथा लगा कंटक-पूर्ण पुष्प भी।

कुमारके सम्मुख घोर घाममें
किसान प्रस्वेद-प्रपूर्ण-देह था,
चला चला बैल महान धैर्यसे
श्रमी उठाता सुख-हेतु दुःख था।

समस्त प्रस्वेद-प्रपूर्ण गात्रपै
जमी हुई पुष्कलरेणु-राशि थी,
परन्तु तो भी वह बैल पीटता
चला रहा था निज नाव रेतमें।

निहारते ही अति तीव्र दृष्टिसे
त्रितापसे तापित विश्वको लखा,
निमग्न देखे जन राग-द्वेषमें,
विपन्न देखे भव-जन्य दुःखसे।

पतंग तो दादुर-चर्व्यमाण है,
भुजंगसे भेक निगीर्यमाण है,
द्विजिह्व भी खाद्य हुआ मयूरका,
शिखी बना लुब्धक-भोज्य-वस्तु ही।

विहंग, जो सम्मुख कीट खा रहा,
कभी बनेगा वह भक्ष्य श्येनका,
रहस्य कैसा विधिका विचित्र है,
द्वितीयका जीवन, मृत्यु एककी।

छिपा हुआ यन्त्र कराल कालका
प्रवृत्त है जीवन-अंतरंगमें,
समस्त प्राणी मरणाभिभूत हो
विचारते जीवन-लाभ-युक्ति हैं।

महाबुभुक्षा-हत उक्ष जोतके
युगाहत-स्कन्ध बना बना, अहो!
प्रचंड हो दंड-प्रहार दे उन्हें
किसान रक्षा करता स्वकीय है।

नरेश रक्षा करते स्व-राष्ट्रकी
सँहारते सर्व-मनुष्य-जाति हैं,
किये हुए संसृति-शान्ति-कल्पना
विनाशकारी रणमें प्रवृत्त हैं।

महान संग्राम मनुष्य ठानते
समेटते जीवन-हेतु मृत्यु हैं,
न जानते भेद कदापि मूढ़ वे
कि है सदा जीवन हेतु मृत्युका।

बली तथा निर्बलका विरोध यों
प्रचंडतासे चलता अजस्र ही,
अतः धरूँ ध्यान, करूँ विचार मैं,
रहस्य क्या है इस विश्व-तापका?

शार्दूलविक्रीडित

यों ही थे करते विचार मनमें सिद्धार्थ बैठे हुए,
सृष्टा संसृतिके हुए निरत यों कल्याणके ध्यानमें,
कैसी मर्मर-मूर्ति देह उनकी पद्मासनस्था लसी,
हो साक्षात विराजमान महिपै मानो तुरीया दशा।

जीवोंपै उमड़ी अपार करुणा, चिन्ता उठी चित्तमें,
यों ध्यानस्थ हुए कि भान उनको भूला कई यामलौं,
ऊँचा भाव उठा विभिन्न करके सीमा अहंकारकी,
देखा चार प्रकारका प्रथम जो सोपान है धर्मका।

द्रुतविलम्बित

गगनमें रवि निश्चल हो गया,
पवन रुद्ध हुआ कुछ कालको.
फिर स-वेग निवर्तित हो गई
प्रथम-मानस-वृत्ति कुमारकी।

उधरसे निकले कुछ देवता,
सज विमान विनोद-विहारको,
उड़ सवेग रहे वह थे, अहो!
विटपपै सहसा रुक ही गये।

चकित होकर वे सब खेदमें
तनुरुहाञ्चित, तर्क-दृढ़ी बने,
लख पड़े उनको तरुके तले
प्रभु अमानव मानव-रूपमें।

गगनसे उतरे तज यानको,
    द्रुत प्रणाम किया अधिदेवको,
फिर चले निज निश्चित देशको,
    प्रभु-कथा कहते-सुनते हुए।

"सुभग सुन्दर भारत धन्य है,
    न धरणी इसके सम अन्य है,
जगत-ताप विनाशनके लिए
    प्रभु यहीं अवतीर्ण हुए सदा।

"तृषित संसृति थी भव-तापसे,
    अमृतका मृदु मानस पा गई,
तिमिरसे अवरोधित धाममें
    जगमगाकर दीपक आ गया।

"यह वही जग-दीपक है जिसे
    अयुत भानु-कृशानु न पा सके,
छविमयी अपनी शुभ ज्योतिसे
    जगतको चमकाकर जायगा।

"तिमिरमें प्रतिभासित सर्वदा
    यह वही जगका मणि-दीप है,
मल-विहीन, सु-शीतल ज्योतिसे
    हृदयको चमकाकर जायगा।

"यह वही शुभ तारक है कि जो
    गगनमें उगता कुछ देरसे
पर स्वभाव-प्रसिद्ध अचूक है
    पथ-प्रदर्शक नाविक-वृन्दको।

यह अखंडित पूर्ण निशेश है,
यह प्रताप-प्रकाश दिनेश है।
मृदु निशेश, प्रचंड दिनेश है,
यह निशेश-दिनेश-अशेष है।

शार्दूलविक्रीडित

दोनों लोचन-मध्य दृष्टि अचला, पद्मासनस्था दशा,
नासाके स्वर-साम्यसे सहज ही आधार दे प्राणको,
अन्तर्भूत प्रभूत ज्योति विभुकी साकार हो आ गई,
शून्याम्भोधि-निमग्न बुद्ध जगको सद्धर्म-संबोध दें।

५—अवरोध

मन्दाक्रान्ता

जैसे जैसे सुत बढ़ चला, भूपने मोद माना,
आज्ञा की यों " नव गृह बनें तीन आनन्ददायी,
मेरा प्यारा तनय अब तो प्राप्त कैशोर्यको है,
इच्छा प्यारे तनुजवरको सौख्यके दानकी है ।"

राजाज्ञासे स्थपति-गणने हर्म्य ऐसे बनाये,
वर्षामें जो सुखद अति थे शीतमें, ग्रीष्ममें भी,
नीले, पीले, सित सुमनके वृक्ष चारों दिशामें
शोभावाले प्रचुर विटपी भी लगाये गये थे ।

प्रासादोंमें दिवस कटते शान्त सिद्धार्थके थे,
खाते, पीते, शयन करते, मोद पाते महा थे;
आ ही जाती हृदय-तलपै किन्तु चिन्ता कभी थी,
छा जाती ज्यों धवल जलपै श्यामला मेघ-माला ।

वसन्ततिलका

राजा हुए चकित जान कुमार-चिन्ता,
आमात्यसे वह लगे कहने दुखी हो,
"क्या ज्ञात है, सचिव, भाषण आपको भी,
जो थे कभी कर गये गणकाग्रणी वे ?

"या तो समस्त-अरि-मंडल-भग्न-कारी
होगा सुपुत्र यह शासक-चक्रवर्ती,
या तो पुनः, कठिन भिक्षुक-वृत्ति-धारी
होगा,—न जान पड़ता यह क्या करेगा ?

"ऐसी प्रवृत्ति इसकी कुछ ही दिनोंसे
हूँ जानता कि बढ़ती अधिकाधिका है,
कोई उपाय इसका मुझको बताओ,
चिन्ता-विहीन मन राजकुमारका हो।"

आमात्य बद्ध-कर हो इस भाँति बोला,
"संभोग ही सफल ओषधि योगकी है,
सिद्धार्थके सरल मानसपै बिछा दो,
सम्पुष्ट जाल-सम विभ्रम नारियोंका।

"मानी गई मदनकी प्रभुता अजेया
कान्ता-कटाक्ष-विशिखाहत चित्त-द्वारा,
है कौन जीव जगमें बलसे बचे जो
आकृष्ट-चाप रति-नायकके शरोंसे।

"संसारमें बहुत हैं कृत-कृत्य धन्वी
जो एक वस्तु क्षणमें करते द्विधा हैं,
धानुष्क शक्तिधर है स्मर ही अकेला,
जो एकता विरचता युग वस्तुओंमें।

" गो-बाल, भूप, बन उद्यत भागता जो,
हैं बाँधते जन उसे दृढ़ रज्जुसे तो,
कान्तार-मध्य तब लौं मृग कूदता है,
आपुंख-मग्न शर सो जब लौं न खाता।

" प्रस्ताव है कि यदि उत्सव एक होवे,
एकत्र काम-वनमें सुकुमारियाँ हों,
सिद्धार्थके कमल-कोमल हस्त-द्वारा
होवें पुरस्कृत, तदा निज गेह जावें।

" सिद्धार्थ रूप, गुण, विभ्रम नारियोंके
देखें यदा सुरति-भाव-प्रदत्त-चेता,
विश्वस्त एक चतुरा रमणी विलोके,
हैं लक्ष्य आर्य बनते किसके शरोंके।

" कोई अवश्य उनका मन खींच लेगी,
होगी वहाँ परम रूपवती कुमारी,
सिद्धार्थको प्रणय-गर्भ-गिरा सुनाके
जो स्वर्ग्य-सौख्य-मय लोचनसे लखेगी।

" सीमा वही प्रबल रूपवती बनेगी,
सिद्धार्थका तरल मानस बाँधनेकी,
संपुष्पिता भुज-लता तरुणीजनोंकी
है पाशमें तरुण-षट्पद बाँध लेती। "

बातें सुनी सचिवकी नृपने कहा यों,
" हे धुर्य, शीघ्र पुरमें यह वृत्त फैले,
हो ज्ञात ज्ञाति-जनको, सब क्षत्रियोंको,
सिद्धार्थ-हेतु यह उत्सव हो रहा है।

" जो सर्वश्रेष्ठ बहु-सुन्दर सुन्दरी हो
होगी कलत्र मम राजकुमारकी सो,
चारों दिशा प्रकट हो यह घोषणा भी—
होगा वसन्तपर उत्सव सौख्यदायी।"

मन्दाक्रान्ता

आज्ञा फैली शक-नृपतिकी देशमें शीघ्रतासे
होनेवाला परिणय महा मंजु सिद्धार्थका है,
आया ज्यों ही दिवस मधुकी पुण्यदा पंचमीका,
बाला आई सुभग गुणमें, रूपमें, शीलमें भी।

द्रुतविलम्बित

चल पड़ीं सुमुखी सुकुमारियाँ
सुभग अम्बर भूषण साजके,
उड़ चली उनके अँग-रागकी
मदन-मादन मंजु सुगन्ध भी।

सुमन-गुच्छमयी कबरी लसी,
सरस चिक्कण कुन्तल-न्यास था,
रचित-रोचन भाल-विशालका
अति अलौकिकतामय रंग था।

नयन-मोहन अंजन-हीन भी
कमल-पत्र-विनिन्दक नेत्र थे,
कलित कुंडल मंजुल कर्णमें
चपल चालित थे सुख दे रहे।

उदित यौवनका रवि हो चला,
शशि-कला-सम शैशव अस्त था,
जब स-युग्म-रथांग-उरोजिनी
तरलिता तरुणी-तटिनी चलीं ।

शिशिर-सा तज शैशव जो अभी
नवल यौवनके मधुमें पलीं,
सुमन-गुच्छ-विमंडित-कोशिनी
सुमुखियाँ वह सज्जित हो चलीं ।

अमृत-पूरित कंचन-कुंभ ले
मृग-विहीन-मृगांक-मुखी चलीं,
स्मर-शरावलि-सी अलकावली
बन गई मन-वारण-शृंखला ।

सुमुखियाँ वह किन्नर-संभवा,
छविमयी अथवा सुर-कन्यका,
निज नवागत यौवन-भारसे
कुँवरको करती नत-दृष्टि थीं ।

कलश-से उठते कुच-युग्मपै
लसित हीरक-हार अनूप थे,
कटि समागत-यौवन-कालमें
बन रही अधिकाधिक क्षीण थी ।

बज चली कटि-निम्न-प्रदेशपै
मुखरिता अति मंजुल मेखला,
चरणमें अति रक्तिम रंगकी
सुभग शोभित जावक-रेख थी ।

उधर थीं अति मंजुल सुन्दरी
सकल सद्य-समागत-यौवना,
मृगदृशी, सरसीरुह-लोचना,
नवनवा वदन-द्युति-संयुता।

इधर थे अति शान्त स्वभावके
कपिलवस्तु-धराधिप-लाड़ले,
लसित था जिनके वदनाब्जपै
अति अलौकिक भाव विरागका।

समद-वारण-विभ्रम-गामिनी
सब समुत्सुक थीं उपहारको
निकट आकर शाक्य-कुमारके
दृग झुका कुछ लेकर लौटतीं।

सुगम थी गति मन्द मराल-सी,
नयनकी नति थी सुखदायिनी,
मुसकराकर हाथ पसारतीं,
सरस हो गहतीं उपहार थीं।

छविवती गुण-धाम कुमारियाँ
परम मुग्ध पुरस्कृत हो चुकीं,
रह गई बस एक यशोधरा,
बँट चुका सबको उपहार था।

पहुँचके वह पास कुमारके
विपुल-विभ्रम-युक्त खड़ी हुई,
दृग मिलाकर, चंचल भौंहसे
'कुछ मिले मुझको' कहती हुई।

कुटिल भ्रू, युग लोचन बंक थे,
पलक थे उसके नत शीलसे,
नयन-कोण विलास-विकास थे
कमल-युक्त विभाकर-भाससे।

कुटिल भौंह शरासन-सी लसी,
बन गये युग लोचन व्याध-से,
मन कुरंग-समान कुमारका
क्षत हुआ शर-तुल्य कटाक्षसे।

अति अलौकिक सुन्दरतामयी
निरख उज्ज्वल आननकी प्रभा,
तरल मानस शाक्य-कुमारका
द्रुत अतीव तरंगित हो उठा।

नवल अंकुर भी अनुरागके
द्रुत उठे तनपै मिस रोमके,
जब अपांग-निपातन-पंडिता
वह हुई समुपस्थित सामने।

शरद-चन्द्र-विनिन्दक वक्त्रको
निरख कंज हुए छवि-हीन थे,
लख पड़ी उस काल यशोधरा
सहित-मंजु विलास हरिप्रिया।

दृग विलोक कुरंग सलज्ज थे,
चकित खंजन स-भ्रम मीन थे,
तनु-प्रभा तप-भूति-समुज्ज्वला
रख बनी सुखदा मयना-सुता।

गमनसे नवला करिणी-समा,
नयनसे रुचिरा हरिणी-समा,
शशि-कला-वदना रजनी-समा,
वह चली प्रमदा तरुणी-समा

छविमयी अति धन्य यशोधरा,
विशिखसे जिसने स्व-कटाक्षके
श्रवणलौं भ्रुवका धनु तानके
क्षत किया मृग-राज-कुमारको।

वदन-सोम, सुवाक्य सुधा-भरे,
अगदधाम विशाल कटाक्ष थे,
जगतमें अति धन्य यशोधरा,
अमृत है जिसकी सुखदा कथा।

विधि-विधान कहाँ जड़ता-भरा,
वह महा चतुरा युवती कहाँ!
विदित भेद हुआ; शिव-भीतिसे
मदनने रति-रूप बना लिया।

सब गला विधिने शशिकी कला
अमृतका उसमें फिर योग दे,
अगद क्या विरची बहु यत्नसे
विरति-खेद-प्रसक्त कुमारकी?

रणित भूषणसे जिसने किये
बहु हताहत यूथ मरालके,
वश किया उसने शक-नाथको
शिथिल-मुग्ध-मृगेक्षणसे, अहो!

कमल थे, मृग थे कि सु-नेत्र थे,
विहग थे, शिव थे कि उरोज थे,
मुकुर था, विधु था कि मुखाब्ज था,
तडित थी, रति थी कि यशोधरा ।

कुसुम जो अलिसे न छुआ हुआ,
सुभग मौक्तिक जो न बिंधा हुआ,
हृदय जो अबलौं न दिया हुआ,
वह विलोक विमुग्ध कुमार थे ।

क्वणन कंकणका कमनीय था,
सुखद था अतिवर्षण कान्तिका,
छविवती वह साज-समाज थी
कुसुम-शायकके अभिषेककी ।

अधरपै स्थित ईषत हास था,
दृग जुड़े दृगसे शकनाथके,
त्वरित ले निज हार कुमारने
उस सुधा-निधिको पहना दिया ।

बँट चुका उपहार समस्त था,
रह गया कुछ शेष न पास भी,
पुलक-संयुत राजकुमारने
हृदय दान किया सँग हारके ।

नयन दो बन चार गये जभी
प्रणय एक हुआ युग-चित्तका,
तब पुरातन जन्म-कथा उन्हें
अवगता क्षणमें वह हो गई—

जब कुमार रहे सुत गोपके
सुमुखि थी यह सुन्दर गोपिका,
विचरते यमुना-उपकूलमें
रहित-पाप अमाप प्रमोदसे।

सँग लिये सुखदायक कन्यका
विरचते बहु खेल स-मोद थे,
सकल अन्य कुमार-कुमारिका
विहरते उनके सँगमें सुखी।

दिवस एक, रचा जब खेल था
परम कौतुक-कारक चित्तको,
नयन-मीलनकी कर योजना
सब समूढ़ हुईं सुकुमारियाँ।

सरस विभ्रमसे जब एकके
वन-जुही रच केश-कलापमें,
अपरके शिरपै सुखसे रचा
मुकुट मंजुल मंजु मयूरका।

सुभग मेचक-कंठ विहंगके
असित पक्ष मनोहर रंगके
जब किसी वनिता छविधामके
श्रवणमें रखके विहँसा दिया।

कदलिके अति आयत पत्र-से
नयन मीलित थे सबके किये,
जब चले वन-वृक्ष टटोलते,
मिल गई यह गोप-सुता उन्हें।

कदलि-पत्र-निमीलित-लोचना
कर-प्रसार लगी जब खोजने,
अति स-संभ्रम थी वह गोपिका,
मिल गये बनमें यह भी उसे।

जिस प्रकार नवाम्बुद-नीरसे
निकलते महिमें तृण-गुल्म हैं,
हृदयमें स्थित अंकुर कर्मके
समयपै उगते इस भाँति हैं।

जब अलौकिक प्रेम-प्रभाव-से
सब कथा उनको स्मृत हो गई,
उभयके युग मानसमें जगी,
प्रथित प्रीति-प्रतीति पुरातनी।

सफल आज हुई नृप-योजना
सचिव मुग्ध हुआ निज बुद्धिपै,
स-भय भूतलसे उखड़े हुए
हरिणको मृदु बीन सुना पड़ी।

शार्दूलविक्रीडित

गोपा है सुमुखी सरोज-नयना दिव्या मनोहारिणी,
शोभा-धाम असीम वीर्य-बलके भाण्डार सिद्धार्थ हैं,
कैसे दो प्रणयी परस्पर मिले, होते कभी एक हैं,
देखो, गूढ़ रहस्य प्रेम-निधिकी लीलामयी प्रीतिका।

भूमें हैं तरुणी असंख्य प्रमदा दिव्या कुरंगाम्बका,
भोगी भी बहु हैं निकेत बलके, आगार शृंगारके,
पाता किन्तु वही महान प्रणयी संभोगका योग है,
जो विस्तार करे प्रमोद-वश हो तादात्म्यके भावका।

कन्या सुन्दर काम-रंग रचती अंगांगमें है यदा,
आती है रति-रेख भी युवकके उत्फुल्ल नेत्राब्जमें,
व्रीडा कामिनिकी, युवा हृदयका संकोच, दोनों तदा
होते स्वर्ग्य प्रकाशसे सुरभिसे सारंगसे दिव्य हैं।

देखो, अम्बुधि एक अश्रु-कणमें, ब्रह्मांड एकाणुमें,
ढाई अक्षरमें महान बुधता, आकाश कासारमें,
सारा विस्तृत काल एक पलमें देखो यहाँ बद्ध है,
केन्द्रीभूत समस्त दुःख-सुख हो व्यापे इसी प्रेममें।

प्रेमीका बस एक प्रेम-पथ है, जो दीर्घ दुर्लंघ्य है,
धारा है असिकी कराल अथवा तीव्रा अणी कुंतकी,
झंझा-वात-समान चित्त-वनकी शाखा-प्रशाखा हिला
जो प्रेमी-शिरपै किरीट रखता, शूली चढ़ाता वही।

प्रेमीकी बस प्राप्ति प्रेम-निधि है लोकोत्तरामोदिनी,
है सम्पात्ति न प्रेमकी, अपरकी सम्पत्ति नेही सदा,
ऐसा ही अनुरागका जगत है न्यारा सभी लोकसे,
प्रेमी-मानस प्रेयसी-हृदयका पर्य्याय है एक ही।

प्रेमी है चलता रहस्य-पथपै निर्देशसे प्रेमके,
कोई भी उसको डिगा न सकता निर्दिष्ट सन्मार्गसे,
प्रेमासक्ति न प्रेमके इतर है, हो अन्य तो है यही,
प्रेमी-मानस उत्स-सा तरल हो आनंदवाही बने।

प्रेमीकी अनुभूति व्यक्त करती निस्तब्धता रात्रिकी,
होती है शिरसे पदों तक उसे संवेदना प्रेमकी,
ऐसी है वह विज्ञता प्रणयकी व्यामोहकारी महा,
तो भी प्रेमिक हर्ष-युक्त सहता है विघ्न-बाधा सभी।

पाला है कर काट-छाँट उसको पोषा उसी प्रेमने
शाखा छिन्न हुई हिली जड़ यदा, काटा, इकट्ठा किया,
आटा-सा करके रखा अनिलपै ऐसा पकाया उसे
भोक्ता तुष्ट हुआ, बुझी न तब भी दीप्ता क्षुधा प्रेमकी।

इच्छा, अर्चन, काम, क्लेश, करुणा, गंभीरता, धीरता,
शुद्धानन्द, विचार और प्रभुता, कर्तव्यता, नम्रता,
स्नेहाचार, पवित्रता, सुखदता, संतुष्टता, योग्यता—
प्रेमीके सब प्रश्न-पत्र, इनमें होती परीक्षा सदा।

६—संयोग

मन्दाक्रान्ता

संध्याको ही अवगत हुआ भूपको वृत्त सारा,
गोपाने ज्यों नयन-शरसे पुत्रका चित्त भेदा,
बोले, "मेरा तनय अब तो दाममें बद्ध ही है,
जैसे-तैसे त्वरित उसके ब्याहकी योजना हो।

"गोपाके भी जनक-गृहको शीघ्र ही दूत जावें,
इच्छा मेरी त्वरित उनके पास जाके सुनावें,
शोभावाली सुभग विदुषी सुप्रबुद्धात्मजा जो
मेरे प्यारे तनय वरकी शोभनीया वधू हो।"

जाके गोपा-जनक-गृहको दूतने शीघ्रतासे
सारी वार्ता कथित करके शीघ्र संदेश माँगा,
बोले वे, "जा, महिपवरसे यों कहो वाक्य मेरे,
टाली जाती किस नृपतिसे शाक्य-भूपाल-आज्ञा ?

" कन्याका मैं परिणय करूँ किन्तु है एक चिन्ता,
गोपाके हैं अपर प्रणयी जो उसे चाहते हैं,
योद्धा भारी समर-विजयी नागदत्ताख्य धन्वी,
वर्चस्वी है अमर सुत भी मत्त-मात्तंग-गामी ।

" सेनानी है सबल अति ही साहसी नन्दराजा,
बाँका धन्वी बलि-तनय भी चाहता ब्याहना है,
कान्ताकारा कुमुद-कलिका-कोमला कन्यकाका
पावेगा सो कर-कमल जो हंस होगा द्विजोंमें ।

" सोचा मैंने शुभ मख रचूँ एक सप्ताह बीते,
राजा भेजें स-मुद अपने पुत्र सिद्धार्थको भी,
आवें सारे नृपति-सुत जो ब्याहना चाहते हों,
बाणोंमें हों सफल, असिमें योग्यता-प्राप्त जो हों ।"

सारी बातें शक-नृपतिसे दूतने जा सुनाईं,
राजाने भी वरण-मखमें पुत्र भेजा सुखी हो,
शोभाशाली विरचित हुई रंग-भू सौख्यदायी,
आया ज्यों ही समय जनता देखनेको पधारी ।

नाना योद्धा, समर-विजयी, विक्रमी, हेति-धारी,
आये राजा, प्रबल बलमें, ख्यातिमें जो बड़े थे,
ऐसोंपै पा विजय बलसे कौन-से साहसीने,
आओ, देखें, परिणय किया सुप्रबुद्धात्मजाका ।

शोभाशाली विरचित हुई रंग-भू भी सुभव्या,
लंबी-चौड़ी परम सुखदा मेदिनी सज्जिता थी,
आभावाली वह बन गई तुंग मंचादिकोंसे
जो थे ऐसे विशद कि उन्हें देखते देवता थे ।

देखो, आई सुभग शिविका सुप्रबुद्धात्मजाकी,
बालाएँ हैं सुखद सँगमें मंगलाचार गातीं,
शोभा ऐसी प्रचुर उनके रूपकी, रंगकी है,
मानों आती ललित लहरें सिन्धुजा-संगमें हों।

आए पाणि-ग्रहण करने नागदत्तादि योद्धा,
हस्ती-वाजी-कवच-असि ले, कुन्त ले, चाप भी ले,
देखो आया परम विजयी नन्द वीराग्रणी सो
लाया था जो विजय-कमला सिन्धुके पार जाके।

आगे आगे युवक विजयी आ डटे रंग-भूमें,
पीछे पीछे सुभट-गणके वीर सिद्धार्थ आए,
नाना हेषा-सहित हय भी कूदते-फाँदते थे,
मेला-सा था सकल जनका, भीड़ थी दर्शकोंकी।

श्रीशास्ताने व्यथित जनता संकुलीभूत देखी,
कन्थाशेषा कृशित अति जो रोगसे क्लेशसे थी,
आँसू छाये कमल-कलिका-साम्यवाले दृगोंपे,
प्रायः साधू सुजन तपते लोकके तापसे हैं।

देखा ज्यों ही कमलवदनी सुप्रबुद्धात्मजाको,
वाजी रोका, उतर महिपै शीघ्र सिद्धार्थ आए,
सारे योद्धा-सुभट-गणको वीरतासे प्रचारा
धन्वी खड्गी समर-विजयी जो वहाँ थे पधारे।

भारी भारी धनुष-गणकी शिञ्जिनी खींचनेमें,
नाराचोंके सहित गुणको कानलौं ताननेमें,
होवें बैरी बधिर जिनसे, चाप टंकारनेमें,
दूरीवाले चलित गतिके लक्ष्यको भेदनेमें,

आराकी-सी निशित जिनकी घोर थी तीक्ष्ण धारा,
ऐसे ऐसे विषम सरुके खड्गको झेलनेमें,
आरोहीको निरख जवसे कूदता-फाँदता जो
ऐसे भारी चपल गतिके अश्वको हाँकनेमें,

बारी बारी अपर भटने जो कलाएँ दिखाई,
वे थीं ऐसी निरख जिनको लोग थे मोद पाते,
ज्यों ही आगे सुभटगणके वीर सिद्धार्थ आए,
वीरोंने भी प्रवचन किया योग्यता देखते ही—

" योद्धाओंमें, अमर-सुत या नागदत्तादिकोंमें,
चापोंमें, या निशित असिमें, या हयारूढ़तामें,
एकाकी हैं सुभट-गणमें श्रेष्ठ सिद्धार्थ योद्धा,
ब्याहा जाना उचित इनका सुप्रबुद्धात्मजासे । "

बोले गोपा-जनक सुखके अश्रु ला लोचनोंमें,
" मेरे प्यारे, उचित वर हैं आप ही कन्यकाके,
सारे योद्धा विजित करके आपने रंग-भूमें
फैलाई है सुयश-गरिमा शाक्य-वंशानुरूपा ।

" बाजे बाजें, सुमुखिगण भी मंगलाचार गावें,
आवे गोपा सुभग जयकी मालिका भेंटनेको,
होवें सारी उपयम-प्रथा, ब्याहकी योजनाएँ,
मैंने पाया अतुल सुख जो पा सकेगा न कोई । "

वंशस्थ

नृपालके शासनसे नितंबिनी,
सुवर्णिनी उत्तम मत्तकाशिनी,
तुरन्त बाला प्रमदा, कुलांगना,
चलीं तरंगाकुल ज्यों तरंगिणी ।

समोद आगे करके यशोधरा,
चलीं सभी चन्द्रमुखी वरांगना,
प्रतीत होतीं वह छद्म-वेषिणी,
सती-शची-शारद-सिन्धुजा-समा ।

धरे हुए तप्त सुवर्णकी प्रभा,
सजे हुए अंबर भूषणादि भी,
चली सभीके पुरतः यशोधरा
प्रमत्त-मातंग-विलास-गामिनी ।

चली जभी सुन्दर सुप्रबुद्धजा
धँसी सभा-सागर-मध्य अप्सरा,
मुहुर्मुहुः मन्थर पाद-घातसे
उठा चली चारु तरंग-भंगिमा ।

चली सखी-संहति-पृष्ठ-वर्तिनी,
चली सखी-संहति-मध्य-वर्तिनी
चली सखी-संहति-अग्र-वर्तिनी,
स-हार-हस्ता मुदिता यशोधरा ।

चली करोंमें स्रग तौलती हुई,
विलेप-आमोद प्रसारती हुई,
विवर्ण हो देख रतीश-दूतको
स्व-कर्णसे भृंग निवारती हुई ।

चली सु-रत्नाकुल-वस्त्र-वासिनी,
विकासती ज्योति निशेश-हासिनी,
विलाससे बंकिम भ्रू विलोकके
चढ़ा लिया स्वीय शरास मारने ।

विनोदिता यौवन-भार-गुर्विता,
अनूप-अंगांग-अनंग-अंचिता,
चली उगाती सित-कंज मार्गमें,
वसन्त-लक्ष्मी सदृशा यशोधरा।

चली यदा सस्मित हो मनोरमा,
रदावली अग्रिम-वर्तिनी खुली,
हुई सभा धौत प्रभात-अंशुसे,
खिली सभीके मुखमें सरोजिनी।

निशेशको, तारकको, पयोदको,
स्व-वक्त्रकी, लोचनकी, कचौघकी,
चली हराती रुचिसे यशोधरा
सलज्ज-नम्रा सुषमावगाहिनी।

विनीत कंठ-स्वरसे सरस्वती,
स-लज्ज गौरी कल हाससे हुई,
विलोचनोंसे विजिता समुद्रजा,
पराजिता थी कटिसे पुलोमजा।

मनोरमा मूर्तिमती उषा-समा,
सुधांशु-आभा-सम कान्ति देहकी,
ढली हुई श्रीकरसे विरंचिके,
सुमध्यमा कांचन-अंग-यष्टि थी।

लगा दिये सारँग अंग-अंगमें
सिखा दिये शब्द 'कुहू'-निनादके,
सुवासिता श्वास-समीरसे किया,
उसे रचा था मधु-शिल्पकारने।

चढ़े हुए अंग मनोज-शाणपै,
सुडौल थे, सुन्दर थे, सुवृत्त थे,
प्रभामयी लोचनकी मनोज्ञता,
असेत थी, उज्ज्वल थी, अलक्त थी।

निशेशकी, मंगलकी समष्टि-सी
समुज्ज्वला रक्तिम थी तनु-प्रभा,
पयोद-श्यामा लट वक्र-गामिनी
प्रलम्ब थी चुम्बनको कपोलके।

चली खिलाती कल कंज कामिनी,
विशुद्ध वासन्तिकता-शरीरिणी,
विनम्र होके जय-माल-भारसे
पुनः पुनः थीं लचती कलाइयाँ।

समक्ष ही राजकुमारको लखा,
मदालसा चंचल-लोचना हुई,
उन्हें दृगोंके पथसे स्व-चित्तमें
बिठा लिया लोचन मूँद प्रेमसे।

स-मोद डाली जय-माल कंठमें,
बजे बधाये बहु रंग-भूमिमें,
विमुग्ध सिद्धार्थ 'बना' बने, अहो!
'बनी' बनी कान्तिमती यशोधरा।

पुनीत था पूषण मेष लग्नका
प्रवृत्त वेला शुभ धेनु-धूलिकी
विलोक बोले नृप सुप्रबुद्ध यों,
तुरन्त हो मंजु विवाह-योजना।

ध्वजा-पताका-घट-तोरणदिसे
सजा हुआ मंडप था विवाहका,
भरे हुए थे नर-नारि धाममें
खड़े हुए थे गज-वाजि द्वारपै ।

तुरन्त बाजे बजने लगे वहाँ,
कृशानु-क्रीड़ा द्रुत छूटने लगी,
चढ़ीं अटारी यव डालती हुई
अलापती कोकिल-कंठ कामिनी ।

कुमारियोंकी ध्वनि थी पिकी-समा
शिरस्थ थे मौर मनोज्ञ रूपके,
अजस्र होता सुमन-प्रदान था,
लखो सुवासान्तिकता विवाहकी ।

विराजमाना गृह-मध्य-भागमें,
वरासनस्था युग मूर्तियाँ लसीं,
विवाह मानों रति-शम्बरारिका
रचा गया हो फिरसे विरंचिसे ।

मनोज्ञ था आनन शाक्यवीरका,
प्रफुल्ल सर्वांश-प्रफुल्ल-कंज-सा,
ललाटमें रोचन-बिन्दुकी प्रभा
पराग-शोभा करती मलीन थी ।

विराजता था कमनीय सीसपै
बना हुआ मंजु किरीट स्वर्णका,
मनोज्ञता-मंडित-मौर-मध्यमें
जड़े हुए हीरक-पद्मराग थे ।

मृगांकके मंजुल मौलिपै यथा
विभाग हो आतप-युक्त व्योमका,
विमुग्ध हो कौतुकसे जहाँ लसे
प्रकाशते तारक सर्व रोदसी।

विलोल थे कुंडल कर्णमें लसे
स-हास दोनों दृग-पुंडरीक थे,
अलक्त-माला-मिष राग चित्तका
छपा हुआ था उरके कपाटपै।

समीप स्वाहा-सम कान्ति-काशिनी,
लसी समासीन प्रमोद-संयुता,
प्रशंसनीया नृप सुप्रबुद्धकी
अखंड-सौभाग्यवती यशोधरा।

प्रफुल्ल कंजाननमें मनोरमा
समृद्ध शोभा सब विश्वकी हुई,
निशेशके एक चतुर्थ भाग-सी
ललाट-आभा जग-मोहिनी लसी।

लसा शिरोभूषण भव्य भालपै,
विशाल रत्नाभरणा प्रभा लिए,
विलेखनीया छवि मौरकी लसी
पतिव्रता-मंडल-शासिका-समा।

ललाटमें मंजु विलोकनीय थी,
असेत बिन्दी मदकी कुरंगके,
यथैव सम्प्राप्त स्व-बाल-रूपको
विराजता था शनि चन्द्र-अंकमें।

कटाक्ष थे यद्यपि लक्ष्य पा चुके,
तथापि भ्रू-चाप चढ़ा हुआ लसा,
सुलोचनाके नयनारविन्दकी
विचित्र थी भाव-प्रकाशिनी दशा।

विवाहकी उत्तरदायिता बढ़ी
चढ़ी कपोलोंपर और लालिमा,
प्रफुल्ल-प्राया कलिका-समान थी,
प्रसन्न मुद्रा वदनारविन्दकी।

मृणाल-सा कोमल बाहु देखके
विनिन्द्य जानी अपनी कठोरता,
सुवर्णका कंकण भी इसीलिए,
अजस्र होता बहु कम्पमान था।

विलोकती थी प्रियको यशोधरा,
निहारते थे दयिता कुमार भी,
हुई व्यतीता कितनी शताब्दियाँ,
कभी न भूला वह देखना मुझे।

प्रसून-वर्षा कर नव्य युग्मपै
अजस्र थीं गान-रता सुवासिनी,
विवाह-आचार-विचारमें लगी
स-वेद-मंत्र-ध्वनि विप्र-मंडली।

पुराण-वेदोक्त प्रकारसे तदा,
हुआ समायोजन जो विवाहका,
अभूत था संसृतिमें अभावि है,
त्रिलोकमें भी उस-सा वही हुआ।

यशोधरा-पाणि कुमार-हस्तमें
विलोक आता मनमें विचार था,
यथा कहीं कैरव-पुंडरीक ले
निशेश-वारेश दिनान्तमें मिलें।

समाप्त सातों जब भाँवरें हुईं
तदा विराजे मणि-पादपीठपै,
हुआ सुखी मानस सुप्रबुद्धका
विलोक सिद्धार्थ तथा यशोधरा।

अलक्त-सिन्दूर-ललाटिका-मयी
कुमारने यों कर दी यशोधरा—
मिलिन्दने उज्ज्वल अब्जपै यथा
स्वकीय हृत्पिंड रखा निकालके।

ललाटमें, कुन्तल-मध्य-माँगमें,
विलोक सिन्दूरमयी मनोज्ञता
हुईं अलक्तानन सर्व योषिता,
शरीर-रोमावलि पुष्पिताग्र भी।

द्विफालवाली चिकुरालि-मध्यगा
यशोधराकी अति मंजु माँग थी,
प्रदीप्त हो कज्जल-कूटपै यथा
प्रदीपकी सुप्त शिखा मनोरमा।

कला निशामें अथवा निशेशकी;
स-धैर्य कादम्बिनि-मध्य चंचला,
कि हेम-रेखा कषपै कसी हुई,
कि ओषधी हो जलती वनान्तमें।

समाप्त होते सब ब्याहकी क्रिया,
हुए महा हर्षित सुप्रबुद्ध भी,
स-प्रेम सिद्धार्थ-समेत कन्यका
तदा बिदा की, कह यों कुमारसे—

शार्दूलविक्रीडित

"मेरा तो बस एक-मात्र धन है, कन्या शुभा सुन्दरी,
माताकी यह मूर्तिमान करुणा, है स्नेह-संचारिणी,
देता हूँ अब मैं वही उभयकी आशा अकेली तुम्हें,
छाया ही इसपै सदैव रखना श्रीहस्तकी, हे सुधी!"

द्रुतविलंबित

रजनि एक घड़ी गत हो चुकी,
उदित इन्दु हुआ मधु-मासका,
कपिलवस्तु धराधिप-धाममें
स-वनिता पहुँचे शक-नाथ भी।

वर-वधू गुरु-वंदनके लिए
जब पधार गये नृप-गेहमें,
परम मोद-मयी महिषी हुई,
मुदित भूपतिका मन हो गया।

ससुरका पद-वंदन सासका
कर बनी अति मुग्ध यशोधरा,
फिर बिदा निज-मंदिरको हुए
वह महाछवि साथ कुमार ले।

विविध व्यंजन कंचन-थालमें
सज चलीं सुखदा परिचारिका,
वर-वधू स्थित भोजनको हुए
प्रणयसे, रतिसे, अनुरागसे।

स-मुद दम्पति भोजन-कालमें
कह उठे मनके मृदु भाव यों,
उदधि दो अति ही अनुरागसे
मिल चलें जिस भाँति उमंगमें।

अधखुले बड़रे दृग कोरसे
सुगतके मनकी गति थाहती,
कह चली इस भाँति यशोधरा,
परम प्रीतिमयी वचनावली—

"बहुत क्लेश किया, प्रभु आपने,
असि-गदा-हय-चालन-आदिमें,
सुख मुझे, पर, कारण जो हुई
इस महा महिमामय मानका।

"प्रभु, क्षमा करिए इस दोषको,
जनकका प्रण भी अनिवार्य था,
पर-वशा अति थी, न तु आपको
दुख न दे सकती यह सेविका।"

सुमुखिके मुखपै लख चूनरी
अध-खिँची कुछ रक्तिम रंगकी,
स्मृत हुई द्रुत राजकुमारको
सुखद बात पुरातन प्रीतिकी—

" जिस प्रकार सविक्रम आज ही
भट हराकर मैं रँगभूमिमें,
चल दिया तुमको संग ले प्रिये,
रह गई लखती जन-मंडली,

" उस प्रकार पुरा, गत-जन्ममें,
हम मृगेन्द्र रहे, तुम सिंहिनी;
अपर सिंह हराकर शक्तिसे
कर लिया तुमको अपनी वधू ।

" वह कथा तुम भूल गईं, प्रिये,
पर मुझे सब सुस्मृत है अभी,
जब हिमालय-मध्य स्वतन्त्र मैं
समद काननमें फिरता रहा ।

" सब हिला बन एक दहाड़में,
भर छलाँग रहा तरु कूदता ।
लख समुत्थित सावनकी नदी,
विशिख-सा ऋजु था द्रुत तैरता ।

" रजनिकी अति घोर प्रशान्तिमें,
ठिठक झापसमें घन-दर्भके,
निकट-गुप्त भयंकर मृत्यु-सा
लख वनेचर-वृन्द छलाँगता ।

" निरखता सित-पक्ष-विभावरी,
गहनमें फिरता अति मोदसे,
गवयपै, मृगपै कर घात मैं
अति प्रचंड दहाड़ दहाड़ता ।

" दिवस एक घटी घटना, प्रिये,
सरितके सुखदायक तीरपै,
निकल भूधर-गह्वरसे यदा
हरि सभी स-कलत्र समूढ़ थे।

" लख तुम्हें अति रक्तिम कृत्तिकी
सकल-सिंह-वधू-शिरमौर-सी,
लड़ पड़े सितपिंगल क्रोधमें,
रमणकी करके बहु लालसा।

" दशनसे, नखसे, कर युद्ध मैं
विजय-प्राप्त बना रिपु जीतके,
चल पड़ीं मम संग तुरंत ही
तुम पराक्रम-प्रेम-प्रदर्शिनी।

" उस प्रकार पराक्रमको दिखा
कर परास्त महाभट-यूथ भी,
वरण आज किया तुमको, प्रिये,
मिल गई मुझको मम संगिनी।

" यह लसी उस रक्तिम कृत्ति-सी
अरुण-मंडित मंगल-चूनरी,
विगत वस्तु उपस्थित हो गई,
वह कथा मुझको स्मृत हो गई।

" सकल संसृतिके इस चक्रका
क्रम चला करता इस भाँति है,
विगत वस्तु पुनः मिलती यहाँ
जगतमें बस कर्म प्रधान है।

" हृदय-वाञ्छित प्राप्त हुआ मुझे
मिल गई मुझको हृदयेश्वरी,
तुम मुझे सुखदा इस भाँति हो
जिस प्रकार शशांक चकोरको ।

" सुन रही तुम हो मम वाक्य, या
लख रही नभ-ऋक्ष-प्रसार हो,
हृदय यों कहता, नभ हो लखूँ
अयुत लोचनसे तुमको, प्रिये !

" तुम प्रिये, मम अध्रुव चित्तके
चलित तारकको ध्रुव-सी हुई,
मम समस्त-विचार-तरंगिणी
धँस गई तव रूप-समुद्रमें । "

इस प्रकार परस्पर प्रीतिका
कथन दंपति थे करते जभी,
लख प्रफुल्लित इन्दु वसन्तका,
मदनने निज बाण चला दिया ।

शार्दूलविक्रीडित

आता यौवन मेघ-सा घिर जभी सीमंतिनी-अंगमें,
होके पूरुष भी युवा जब विना कालुष्यके सोहता,
देता स्वर्ग-प्रकाश-अंशु मधुके सत्पुष्पको फुल्लता,
व्रीडा और अधैर्यके समरमें क्या जीतना-हारना ।

७—राग

द्रुतविलंबित

शक-महीपति-राजकुमारके
सदृश और न आज कुमार है,
सुखद सद्य-विवाहित मौलिपै
विलसती लसती सुकुमारता ।

मुख प्रफुल्ल-सरोज-समान है,
नयन हैं कलिका शत-पत्रकी,
अति सुमुन्नत भाल विशालपै,
कनक-रत्न-किरीट विराजता ।

शरदसे सित आननपै प्रभा
शरद-चन्द्र-समान मनोरमा,
स-रद-ज्योति-समुज्ज्वल वक्त्रपै,
शरद-कंज-विनिन्दिक कान्ति है ।

युगल लोचन आयत कर्णलौं
शरदके सरसीरुह-से खिले,
सरस बंकिम दृष्टि कुमारकी
हृदयमें चुभती नटसाल-सी।

कनक-कुंडल-मंडित कर्ण हैं,
कल कपोल कलानिधि-खंड-से,
अधरका छवि-भार असह्य है
चिबुक है इस हेतु सटी हुई।

शशि-विनिन्दक हास-विलास है,
शुक-समान मनोहर नासिका,
तिलककी द्युति भाल-विशालपै
कर रही छवि सीमित विश्वकी।

चमकती जिनमें अचिर-प्रभा
छलकती छवि कुंडल-रत्नकी,
सघन सावनकी करते घटा
सरस कुंचित मेचक केश हैं।

विमल, पूर्ण, प्रसन्न, महासुखी,
सरस आनन शाक्य-कुमारका,
निरखना यदि अब्ज अनूप हो
नयन-युग्म चकोर बनाइए।

अमर-भावमयी वचनावली
श्रवणको मन उन्नत कीजिए,
सरसता लखने रसराजकी
भवनमें उनके अब आइए।

वसंततिलका

ले अद्वितीय छवि सुन्दर सोहता जो
विश्राम-धाम यह राजकुमारका है,
मानो अजस्र रति-संगमके लिए ही,
शृंगार-गेह मकरध्वजका बना है।

आगे लसी सुछवि कृत्रिम कूटकी है,
है निम्नगा बह रही जिसकी तटीमें,
मानो हिमाद्रिपरसे गिर जह्नुजा ही
अम्भोधिके निकट सम्प्रति जा रही है।

पीछे तुषार-रुचि-अंचित काननोंमें
धारा-प्रवाह झरते झरने सदा हैं,
पीयूष-सा श्रवण-अंतर घोलते जो
जाते महा सुखद मंगल-गीत गाते।

मंगल्य भूर्ज, वट, शाल विशाल नाना
प्रासादके निकट दक्षिणमें लगे हैं,
फैली हुई शिखरपै धवके अनूठी
है वल्लरी मृदुल मंजुल मालतीकी।

प्राकार-तुल्य गृह-उत्तरमें खड़ी जो
सो अद्रिकी अवलि श्वेत पयोद-सी है,
शोभायमान अति उच्च अधित्यकापै
उत्तुंग सानु नभके पद छू रहे हैं।

चिंघाड़ मत्त गजकी दिनमें सुनाती,
होती दहाड़ हरिकी भयदा निशामें,
ऐसे वनान्तपर दे परिखा अगाधा
विश्राम-मंदिर गया प्रभुका सजाया।

शोभामयी खचित चित्रित भीतियोंपै
हैं अंकिता सुरतिकी विविधा कथाएँ,
राधा व्रजेन्द्र-सँग झूल रहीं, कहींपै
सीता सँदेश सुनतीं हनुमानसे हैं ।

दुष्यन्तसे मिलन मंजु शकुन्तलाका
था कृष्णसे हरण अंकित रुक्मिणीका;
देखो अनेक जग-वन्दित प्रेमियोंकी
हैं भीतिपै लिखित प्रेममयी कथाएँ ।

है सिंह-द्वारपर अंकित शोभनीया
सिन्दूर-आलिखित मूर्ति गणेशजीकी,
आराम है सुभग आँगनमें अनोखा
है बीचमें शयन मर्मरकी शिलाके ।

आभामयी उपल-निर्मित चन्द्रशाला
उत्कीर्ण-प्रस्तर-गवाक्ष-मयी बनी है,
मध्यस्थ शीतल निकुंज हरा-भरा है,
सारे कपाट हरिचन्दनके बने हैं ।

है कुण्डकी परम चित्र-विचित्र शोभा
श्वेतोपलस्थ जल-निर्झर सोहते हैं,
उत्फुल्ल पंक-रुह सुन्दर मोहते हैं,
पाठीन स्वच्छ जलमें बहु रंगके हैं ।

जैसे कुरंग रत स्वैर-विहारमें हैं
वैसे विहंग कल कूजनमें लगे हैं,
देवेन्द्र-चाप-सम रंग-विरंगवाले
उड्डीयमान खग सुन्दर सोहते हैं ।

बैठे कपोत-गण काम-कला-प्रकाशी,
छज्जों, छतोंपर अवस्थित हैं कलापी,
जो नैश व्योम-छवि-से अति मंजुशोभी
हैं नृत्यमें अयुत-लोचन-से लखाते ।

राजीव-रेणु-कण-कीर्ण पिशंग आभा
भृंगांगनाजन-मनोहर-गीतवाली
ऐसी सुरम्य सरसी, सरसीरुहोंमें
हंसी-समेत चरते कल हंस भी हैं ।

आजन्म-कोकनद-कानन-कामचारी
मातंग-गंड-मद-चारण-चक्रवर्ती
मन्दार-मेदुर-मरंद-रसाल-लोभी
हैं पश्यतोहर सुखी सर-मध्य-वर्ती ।

गाती रसाल-वनमें कल कोकिला हैं,
बैठे शिरीषपर हैं शुक मंजुपाठी,
हैं चक्रवाक रमते सरकी तटीमें,
हैं मूलमें विहरते अहि केतकीकी ।

हैं धाम-मध्य अति सुन्दर सेविकाएँ,
शुभ्रांबरा, शुचिवती, सुभगा, सुगौरी,
सेवा-रता सकल शीलवती, प्रवीणा,
संलग्न हैं सतत स्वामि-उपासनामें ।

जो स्वामिनी-हृदयकी अनुकारिणी हैं,
जो स्वामि-सौख्य निज सौख्य विचारती हैं,
ऐसी कुमार-गृहमें परिचारिकाएँ
विश्राम-धाम, सब काम सम्हालती हैं ।

जैसे स-हास नभके विधु-तारकोंमें
नक्षत्र पुच्छल सुखी बन जा रहा हो,
जैसे प्रसून-गण-हास-विलास-कूला
आक्रान्त-यौवनवती सरि जा रही हो।

विश्राम-गेह-गत राजकुमारके भी
वैसे अजस्र निशि-वासर जा रहे हैं,
संध्या-प्रभात अपराह्न-पराह्न-वेला
होती व्यतीत सब पूर्ण प्रमोदमें है।

अन्तस्थ गुप्त-गृह है अति सौख्यशाली,
जो शिल्पकी अमित अद्भुत शेष-सीमा,
संयुक्त पुष्प-छविसे सुखदा जहाँपै
संकीर्तनीय सुमनोहर दीर्घिका है।

छाईं, लखो, सदन-आँगनमें लताएँ
जो भानुको बदलतीं सित-भानुमें हैं,
निर्गम्यमाण जलके नल हैं अनूठे
जो तुल्य-सौख्य-प्रद शैत्य-निदाघमें हैं।

सोपान मंजु मणि-मर्मरका बना है,
है पार्श्वमें खचित चित्र-विचित्रतासे;
मानों सजीव समुपस्थित मार्गमें हों,
प्रेमाग्नि-प्रज्वलनकी विविधा दशाएँ।

हैं शुभ्र शीत तल उज्ज्वल प्रस्तरोंके
जो हैं तुषार-चय-से ऋतु ग्रीष्ममें भी,
है रंग-धाम-सुषमा कमनीय ऐसी
जैसी कि देव-पतिके गृहमें न होगी

जो भासमान-कर गेह-गवाक्षमेंसे
आते सुवर्ण-सम पीत प्रकाशवाले,
जाते तुरन्त रँग वे अनुरागमें यों,
संध्या-समान गृह-आँगन सोहता है।

आगार स्वर्ग्य सुखका गृह अभ्र-भेदी,
है रंग-धाम अति रंजित स्वच्छतासे,
माणिक्य-हीर-मणि-मंडित दीपकोंका
होता प्रकाश मृदु शीतल यामिनीमें।

जो क्षीर-फेन-सम शुभ्र वितानवाले,
जो हैं वरोरु-उरु-से उपधानवाले
पर्य्यंक स्वर्णमय हैं गृह-मध्य ऐसे,
गद्दे पड़े सुखद कोमल कौशके हैं।

जो गेहमें पटल अंशुकके पड़े हैं
होते तरंगित सभी पवमानसे हैं,
संध्या-प्रभात-सम लोहित-श्वेत-शोभी
है अद्वितीय यह गेह समस्त भूमें।

स्वादिष्ठ भोजन लगे रहते सदा हैं,
हैं कन्द-मूल-फल सज्जित थालियोंमें,
सुस्वादु, स्वच्छ, सुखदायक, शुष्क मेवे
प्रासादमें विहित पावन पात्रमें हैं।

पूर्णेन्दु-आनन-वती युवती मनोज्ञा,
उद्दीप्त यौवन-प्रभा जिनके दृगोंमें,
ऐसी प्रसन्न-वदना परिचारिकाएँ
घेरे कुमार-गजको करिणीगणों-सी

वे जानतीं सकल भाव कुमारके हैं,
वे चित्त-वृत्ति-अनुवीक्षण-पंडिता हैं,
राजीवके व्यजन-चालनसे सुलातीं
श्री-खंडके पवन-दोलनसे जगातीं ।

सिद्धार्थ जाग पड़ते यदि यामिनीमें
तो राग-रंग रचके वह यों रिझातीं,
उन्मत्त स्वीय रवपै बन कोकिला-सी
वीणा-मृदंगपर मंजुल गान गातीं ।

झंकार रंग-गृहमें कर घूँघुरूकी
जंघा-नितंब-कुच-बाहु हिला-हिलाके,
वे हाव-भाव-युत नेत्र नचा-नचाके
हैं नाचती सुभग साज मिला-मिलाके ।

स्नानार्थ शाक्य-मणि जाकर दीर्घिकामें
वामा-समेत करते जब नीर-क्रीड़ा,
तो अम्बुपै हृदय-अंबुज डोलता है
कम्पायमान रमणी-कुच-कुंभ-द्वारा ।

कीलाल-धौत मुख-मंडल नारियोंका
स्वाभाविकी सुछवि-संयुत सोहता है,
हैं कंज-गंज दृग अंजनके बिना ही
अम्भोज यद्यपि खिले जल देखनेसे ।

प्रासादमें कमल-गंध-विकर्षिणी है
जो पान-भूमि-रचना अति ही सुरम्या,
आकृष्ट-चित्त प्रभुका करती तथा है
ज्यों पुष्पिता कमलिनी गज खींच लेती ।

उत्संगको सुखद, अंक-प्रमोद-शाली,
आलिंगनीय उनको युग वस्तुएँ हैं,
है एक तो मधुर-भाषिणि स्वीय वामा,
है दूसरी मधुर-वादिनि मंजु वीणा।

होती अनूप गति चालित लोचनोंकी,
होते स-कंप शिर, कुंडल, अक्ष-माला,
संस्तुत्य मंद्र कल वादन वल्लकीका
लज्जा-नताम्बक बनी लख भारती भी।

वामा-ललाट-गत सात्त्विक स्वेदसे जो
कस्तूरिका-घटित-बिन्दु विरूप देखा,
तो यों स्वकीय पटसे उसको सुखाया,
जा, गंधने अमर-काननको बसाया।

वीणा विलोक बजती प्रिय-तर्जनीसे
भ्रू-भंग देख प्रिय-बंकिम लोचनोंका,
क्या स्वेदका वदनसे वह पोंछना था!
हो ही गया तरल चित्त यशोधराका।

आ ही गया अधरपै मन श्वास होके
हो ही गये सरस लोचन कामिनीके,
उत्तुंग देख मकरध्वज-वैजयन्ती
छाई उदात्त रतिकी विजयाभिलाषा।

यों ही कुमार सुख-काल बिता रहे हैं,
है नित्य ही समवराधन सुन्दरीका,
संगीतका श्रवण, दर्शन नृत्यका भी
होता यहाँ रजनि-वासर मोददायी।

है नाम वर्ज्य दुख, क्लेश, जरा-ज्वराका,
वार्ता यहाँ न अघ-पीडित विश्वकी है
जो रोग-दोष-भय-पीडनसे भरा है,
जो है अतीव भयभाजन प्राणियोंको।

धम्मिल्लमें खचित पुष्प मलीन होते,
वेणी-निबन्ध बनता श्लथ दासियोंका,
आती न रंग-गृहमें वह भूलसे भी
है क्षम्य त्रस्त-अपराध न स्वप्नमें भी।

शार्दूलविक्रीडित

भारी बन्धन भोगके पड़ गये दुर्लंघ्य जो सर्वथा,
बैठा सम्प्रति जागरूक बनके संभोगका पाहरू,
नारीकी भुज-वल्लरी बन गई ज्यों वज्रकी शृंखला,
कारागार-समान रंग-गृहके सिद्धार्थ बन्दी बने।

द्रुतविलम्बित

न सुखमें-दुखमें कुछ भेद है
ध्रुव रहे उनकी यदि शृंखला;
न सुख-सा दुखदायक ज्ञानका
यदि न मानव सौख्य-मदान्ध हो।

८—अभिज्ञान

वंशस्थ

सुहावना सावन मास मंजु था,
प्रशस्त था शीतल गंधवाह भी,
पयोद-माला नभमें घिरी हुई,
प्रसार व्यापा निविडान्धकारका ।

हुई तृणोंसे हरिता वसुन्धरा,
यथार्थ-नाम्नी सरसा रसा लसी,
इतस्ततः थीं फिरतीं वनान्तमें
मनोरमा रक्तिम इन्द्रगोपिका ।

कलापियोंके सँगमें कलापिनी
अलापती थीं अति कान्त भावसे,
तृणाकुला भूपर मन्द-चारिणी
विनोदिता बर्हिणि नृत्य-मग्न थीं ।

सकम्प-शीर्षा, हरिता, मनोहरा,
महा मनोज्ञा, अतिरम्यपल्लवा,
सुगन्ध-युक्ता, बृहती सुखावहा,
कदम्बकी थी अटवी सु-पुष्पिता ।

अजस्र धाराधर-अंक-वर्तिनी,
महा प्रतप्ता, करकावगाहिनी,
विलासिनी सम्यक अट्टहासिनी
प्रकाशती थीं अति-मंजु दामिनी ।

अखंड धारा बरसी पयोदसे
निदाघ-तप्ता महि तृप्त हो गई,
परन्तु बैठा तरुपै अतृप्त ही
पुकारता चातक था कि 'पी कहाँ ?'

खिली हुई थी वन-मध्य कामिनी,
सु-पुष्पिता थी अति मंजु केतकी,
कली खुली थी रजनी-प्रकाशकी,
प्रफुल्ल था कैरवका वितान भी ।

निशीथमें, वासरमें अजस्र ही
प्रमत्त झिल्ली झनकार-लीन थे,
तड़ागके या सरिके समीपमें
सु-तार था निःस्वन भेक-यूथका ।

कुमार अत्यन्त विमुग्ध-चित्त हो
विराजते थे अति उच्च गेहपै,
यशोधरा-संग महान मोदमें
विलोकते थे ऋतुकी मनोज्ञता ।

" विशाल-शोभामयि व्योमवर्तिनी,
लसी बलाकावलि-मंडिता घटा,
सुमध्यमे, हे दयिते, विलोकिए
प्रभूत वर्षा-ऋतुकी मनोज्ञता।

" पयोद-विशृंखलिता दशा लखो,
कहीं खुला व्योम, कहीं ढका हुआ,
यथा शिला-श्रृंग सुनील अद्रिके
प्रशान्त अम्भोनिधिमें पड़े हुए।

" वनान्त-शोभा अलि-मंडिता कहीं,
कहीं सितापांग-प्रमाद-गुंजिता,
निनाद होता गजका कहीं कहीं
स-घोष है काननकी अगावली।

" लखो, नदी सागर ओर जा रही,
वकावली तोयदमें समा रही,
चली नवोढ़ा प्रियके समीपमें
क्षण-प्रभा मार्ग उसे दिखा रही।

" निनादिता भृंगमयी विपंचिका
उदीरिता ताल-प्लवंग-लापिता
हुई मृदंग-ध्वनि मेघ-प्रेरिता
स-नृत्य सौदामिनि सर्ववल्लभा।

" गभीर आवर्तमयी समुद्धता
रथांग-वक्षोज-प्रभा-प्रकाशिनी,
प्रसून-आच्छादित हो तरंगिणी
चली स-कामा प्रिय-संगमार्थ ज्यों।

" प्रमत्त होते वनमें गजेन्द्र हैं,
अशान्त होते गृहमें गवेन्द्र हैं,
अभीत हैं, निश्चल हैं, प्रसन्न हैं,
मृगेन्द्र, राजेन्द्र, सुरेन्द्र, हे प्रिये !

" प्रमत्त-बर्हीगण-नृत्य देखके
कदम्ब-शाखी स-कदम्ब हो गये,
बनी स-कामा कलविंग-मंडली
वरेण्य-सम्पन्न वसुन्धरा हुई।

" प्रशान्त है रेणु, समीर शीत है,
निदाघके दोष नितान्त शान्त हैं,
हुई परिश्रान्त नृपाल-वाहिनी
चले प्रवासी अपने निकेतको।

" न मानिनी जो अब मान त्यागती
मनोजकी है अपराधिनी वही,
पयोद-माला, मिष विज्जुके, यही
प्रसारती काम-नृपाल-घोषणा।

" निसर्ग-शोभा लख यौवनोपमा
दिशा-वधू प्रौढ़-पयोधरा हुई,
हुई स-पुष्पा मृदु-गंध केतकी
विलोक अस्पृश्यतमा तरंगिणी।

" गिरा करे मूसलधार नीर भी
हुआ करे गर्जन वारिवाहका,
सभी भयोंकी प्रतिघातिनी प्रिया
महौषधी-सी यदि हो समीपमें।

" कदम्बमें फूल उठे प्रसून हैं,
प्रसूनमें मंजु लसा मरंद है,
मरन्दमें लीन हुआ मिलिन्द है,
मिलिन्दमें भी मदनानुभूति है।

" अनेक रागान्वित किन्तु निर्गुणी,
सदैव जो अस्थिर-वृत्त कौतुकी,
विलोकिए, सुन्दर इन्द्रचाप सो
नवांगनाके नव-रंग चित्त-सा।

शार्दूलविक्रीडित

" है जीमूत-निनाद या कि नभमें डंका बजा कामका,
धाराके मिष डालती स्व-मद है या वारणोंकी घटा;
क्या ही उज्ज्वल चंद्रहास-सम है पूर्ण-प्रभा चंचला,
कैसे मानवती स्व-मान-धनकी रक्षा करेंगीं, प्रिये ? "

द्रुतविलम्बित

इस प्रकार कुमार-यशोधरा
निरखते छवि थे नभ-मासकी,
हृदय थे उनके सुखसे भरे
सुख भरा नव-दंपति-रागसे।

सुमुखिके मुखको लखते हुए
प्रकट वे करते जब भाव थे,
अलस वृत्ति हुई कुछ चित्तकी,
सुमन-से पलमें कुम्हला गए।

दिवस बीत चुका युग याम था,
अभिजितन्वित था दिवसेश भी,
सुखद नींद लगी शाक-चन्द्रको
पलक बन्द हुई, वह सो गए।

जघनपै रख सीस यशोधरा
व्यजन मन्द तदा करने लगी,
पर न आँख लगी क्षण एक भी,
कि पलमें प्रभु चौंक पड़े तभी ।

जिस प्रकार प्रसुप्त मनुष्य, जो
निरखता निजको मरु-भूमिमें,
भटकता फिरता अति व्यग्र है
फिर नहीं सकता निज गेहको ।

उस महा मरुके अति तापसे
परम व्याकुल हो वह व्यग्र हो,
जब उपाय चले न, तुरन्त ही
जग पड़े अकुलाकर स्वप्नमें ।

उस प्रकार जगे भगवान भी
उझकते झकते बकते हुए,
" दुरित-भीत मनुष्य अभीत हों,
प्रकट मैं भयका भय हो गया । "

सुगत-आनन भी अति तेजसे
परम दिव्य प्रकाशित हो गया,
नयनमें उमड़ी घुमड़ी घटा
बरस वारि पड़ा उर-भूमिपै ।

यह विलोक स-शंक यशोधरा
परम-व्याकुल-चित्त हुई तदा,
द्रुत लगी प्रियसे वह पूछने,
" अहह ! नाथ, हुआ दुख कौन-सा ? "

सुमुखिका मुख चिन्तित देखके,
वदनकी अवलोक मलीनता,
मुसकराकर वे हँसने लगे
विकलता अपनोदनके लिए।

निकट ही उस गेह-गवाक्षमें
लख पड़ी उतरी लघु वल्लकी
सुरतिसे मृदिता युवती-समा
विगत-रागवती श्लथ-बंधना।

पवनसे उसके सब तार भी
त्वरित ही अभिचालित हो उठे,
झटिति झंकृति-संयुत वल्लकी
बज उठी अति मन्द शनैः शनैः।

विहँसती युवतीजनने तदा
स्वर-सँगीत सुना निज कानसे,
पर वही रव स्वस्थ कुमारको
सुर-सँगीत लगा इस भाँतिका—

शिखरिणी

'सुनो, मैं हूँ वाणी उस पवनकी जो जगतमें
फिरे, घूमे, धावे, अविचल न हो एक पल भी,
दशा है मेरी-सी सकल जनकी भूमि-तलपै
उठा झंझा-सा है प्रबलतर उच्छ्वास उनका।

'प्रतीचीको जाता तपन तज प्राची ककुभको,
न आने-जानेका विहित पथ है किन्तु उसका,
यहाँ आते-जाते रवि-सदृश प्राणी सकल हैं,
कहाँसे आते हैं, कृति-विवश जाते फिर कहाँ

‘ कि प्राणी आते हैं निकल करके शून्य-भवसे,
धुएँके धामोंको विरच चढ़ते हैं गगनमें,
युवा हो, भोगी हो, जरठ, जड़, रोगी, मृतक हो
सदा यों ही रोते जबतक न निर्वाण-गत हों ।

‘ इसी वीणाके ज्यों पटलपर हैं तार चढ़ते,
पुनः जैसे-तैसे मृदुल बजते, मूक बनते,
दशा त्रस्ता ऐसी सकल जनकी देख पड़ती,
महाक्लेशापन्ना, क्षणिक-सुखदा, वीत-विभवा ।

‘ सदा प्राणोंके भी सकल जनके प्राण बनके,
फिरी, घूमी, धाई निखिल जगमें रात-दिन मैं,
विलोका है प्राणी हृदय-तलमें पैठकर भी
भरा संतापोंका उदधि उरमें हाय ! उनके ।

‘ तरंगें आशाकी सतत उठती हैं बलवतीं,
शिलाएँ चिन्ताकी निज सिर उठाये अचल हैं,
भरा है रागोंके सलिल-चरसे सिन्धु मनका,
जहाँ संतापोंके निधन-प्रद आवर्त फिरते ।

‘ इन्हीं तापोंसे हो व्यथित बहु उच्छ्वास भरके,
क्षपाकी तन्द्रामें क्षणभर परिश्रान्त बनके,
विलोका तारे जो परम करुणा-भाव-मय हो
सुनाते थे रोके अयुत मुखसे ताप जगका ।

‘ वहाँ तारे कैसे पहुँच सकते हैं निकट भी,
जहाँ दोषाचारी रजनिकर भी राहु बनता,
जहाँ जाते जाते तपन बनता केतु तमका,
जहाँ ‘ सो ही सो ’ है, अविगत जहाँ ज्योति सबकी ।

" वहाँसे आये हो विपति हरनेको जगतकी,
प्रतीक्षा होती थी बहुत दिनसे विश्व-भरमें,
न 'ह कोई त्राता, सकल जनता पाप-मय है,
तजो माया माया-तनुज, मम मायापति, सुनो !

" सुनो, मैं हूँ वाणी उस पवनकी जो जगतमें
उड़ाती मेघोंको, तरल करती सिन्धु-तल भी,
दिखाती लोगोंको अचल रहता है न सुख यों,
अतः स्वामी, जागो निकट अब आया समय है।

" नरोंके प्राणोंको अबल हिचकी एक बस है,
प्रसूनोंकी शोभा दिवस-सँग ही अस्त बनती,
प्रजा आती-जाती सब सचल छाया-सम यहाँ
किसीको भी देखा न चिर-सुखकी प्राप्ति करते।"

वंशस्थ

सँगीत ऐसा सुन गंधवाहका,
सँदेश पाया त्रिदिवेश-वृन्दका,
कुमार यों भाव-विलीन हो गये,
दशा तुरीया समुपास्थिता हुई।

घटा बलाकावलि-मंडिता न थी,
न था कहीं गर्जन वारिवाहका,
समीर-संगीत-समेत व्योममें
स-विज्जु कादम्बिनि भी निलीन थी।

सम्हाल संज्ञा, फिर वे प्रबुद्ध हो,
निकेतको देख गँभीर हो गये,
पुनः निहारी सुमुखी यशोधरा,—
पुनः विलोकी महि और व्योम भी।

चतुर्दिशा पूषणकी मरीचियाँ,
स-नीर थीं शैत्य-युता प्रकाशतीं,
महीरुहोंके सलिलाक्त पत्रपै
दिनेश-आभा चमकी प्रफुल्ल हो।

शनैः शनैः मन्द पड़ीं मरीचियाँ,
पिशंगता भी उनमें समा चली,
कभी रहीं मंदिर-मूल-वर्तिनी
अभी हुईं वृक्ष-शिखा-प्रकाशिनी।

समीर डोला, खग नीडको चले,
उलूक जागे, विहँसी कुमुद्वती,
हुई तमी, तारक दीप्त हो उठे,
प्रदीप आया, गृह शुभ्र हो गया।

दिनेशकी मन्द मरीचियाँ सभी
हुईं परिश्रान्त नभावलम्बिनी,
गतावलम्बा बन अद्रिपै लसी
विलंबिता पंकज-कोष-रागिणी।

अहो! करेगा कल केलि देर लौं
यहाँ कलानाथ प्रकाम भावसे,
महातुरा कृष्ण-तमिस्र भेंटके
हुई स-रागा रजनी रमा-समा।

निलीन होते खग स्वीय नीडमें,
निमीलिताक्षी बनती सरोजिनी,
विकासको प्राप्त हुई कुमुद्वती,
प्रतीत होती रजनी समागता।

हुआ समाक्रान्त तमिस्त्र ज्योतिपै,
गिरा नभोमंडलसे दिनेश यों,
विचूर्ण हो सम्प्रति धाम-धाममें
प्रदीपके व्याज प्रकाशमान है।

मराल हैं मूक, सुखी उलूक हैं,
स-हर्ष खद्योत, दिनेश अस्त हैं,
सरोजिनी दुःख-अधीर खा गई
मिलिन्दके व्याज अफीमकी वटी।

न सूर्य हैं संयुत सान्ध्य रागसे
ललाट है शोणित-रंगसे रँगा,
दिगन्तमें काल-कृपाण-छिन्न-सा
पड़ा हुआ वासरका कपाल है।

निबद्ध होते अरविन्द-कोशमें
अभी अभी तो अवशिष्ट छिद्र हैं,
मिलिन्दके नैश निवासके लिए
खुले हुए अन्तरके कपाट हैं।

न तापकारी सुख पा सका कभी,
न मद्यपी जीव चिरायु जीवता,
अहो! इसी कारण अर्कके पड़ी
करों, पदोंमें जल-दान-श्रृंखला।

विलोक संध्या अति मुग्ध गेहमें
यशोधरा-श्रीघन थे विराजते,
सदैव सानन्द निशामुखी सखी
उन्हें सुनाती विविधा कथावली।

बिता रहे थे वह सान्ध्य एकदा,
सुना रही थी रजनीमुखी कथा,
प्रमोदकी, या उड़ते तुरंगकी
प्रभूत गाथा जिसमें विदेशकी।

कहा, कहानी सुन यों, कुमारने
" सुनी प्रवीणे, यह प्रेमकी कथा,
पुनश्च मेरे मनमें समा गया
समीर-संगीत उसी प्रकारका।

" अनन्त-सीमा यह क्या वसुन्धरा,
न पा सका अन्त स-पक्ष वाजि भी ?
अवश्य होंगे वह देश भी जहाँ
प्रकाश होता उदयास्त-भानुका।

" यशोधरा-से, मुझसे महा सुखी
असंख्य होंगे बसते शुची जहाँ,
परन्तु होंगे कुछ जीव भी वहाँ
हताश जो, क्लेशित जो, विपन्न जो।

" उषानुचारी लख वासरेशको
विचारता देख सुवर्ण व्योम मैं,
' विलोकते जो पहली मरीचियाँ
मनुष्य कैसे उदयाचलस्थ हैं ? '

" दिनेश होता, सखि, अस्त है जहाँ
विलोकता हूँ वह पश्चिमा दिशा,
तुरन्त आता यह भाव चित्तमें,
' मनुष्य कैसे चरमाचलस्थ हैं ? '

" व्यथा, न जानें किस भाँतिकी, अहो !
समा गई आज मदीय चित्तमें,
न शान्त है, निष्फल रंग-गेह है,
यशोधरा-दर्शन भी वृथैव है ।

" कही कहानी, अयि, साधु सेविके,
बता कहाँ कंचन-पक्ष वाजि है,
तुरंग ऐसा यदि प्राप्त हो मुझे,
तुरन्त दूँ रंग-निकेत मूल्यमें ।

" तुरंग ऐसा मिल जाय जो मुझे,
सवार हो मैं उड़ व्योममें चढ़ूँ,
विमुग्ध देखूँ उदयास्त-कूटसे
अनूप आ-सागर-विस्तृता धरा ।

" विहंग भी तो मुझसे कहीं, प्रिये,
स्वतन्त्र हैं, व्योम-विहार-लीन हैं,
जहाँ जहाँ वे उड़ते वहाँ वहाँ
सपक्ष होऊँ, यदि, तो उड़ूँ अभी ।

" तुरन्त ही मैं उड़ रंग-धामसे
चढ़ूँ चढ़ूँ शीघ्र हिमाद्रि-शृंगपै,
जहाँ लसी शाश्वत भानु-भास्विता
महा मनोमुग्धकरी प्रभामयी ।

" विलोक लूँ मैं रवि-चन्द्र-तारका
निहार लूँ कानन-ग्राम-निम्नगा,
परन्तु मैंने अब लौं लखा नहीं
स्वकीय साम्राज्य-प्रसार भी, अहो !

" अतः करे भूपतिसे प्रभातमें
विनति हो दूत मदीय प्रार्थना,
हुई मुझे संप्रति तीव्र लालसा,
लखूँ जहाँ लौं शक-राज्य-भूमि है ।

शिखरिणी

" कहाँ लौं फैला है धरणितल मेरे जनकका,
कहाँ खेती होती, गहन उगता विस्तृत कहाँ,
कहाँ लौं हैं नाले, सर, सरित, प्रत्यंत गिरि भी,
लखूँ मैं भी सारा जगत यह आगार तजके । "

द्रुतविलम्बित

इस प्रकार स्वतन्त्र विचारमें
सुगत अन्यमनस्क हुए तदा,
पर प्रशान्तिमयी लख यामिनी
वह प्रशान्त हुए क्षण एकमें ।

अब नितान्त प्रशान्त निशीथ है,
रजनि-निःस्वन-गर्भ कठोर है,
प्रकृति-हृद्गति है अब बन्द-सी,
अचल-सी जग-जीवन-नाडिका ।

न अवनी-रव, नीरव व्योम है,
विटप-वृन्द स-तन्द्र झुके हुए,
अब, स-तारक अंबरको लखो,
गुण विहाय हुआ असहाय-सा ।

विहग-स्वप्न निकूजित मन्द है,
सुमन स्वेदित हैं दृढ़ नींदमें,
प्रणय-जीवनको कण ओसके
निधनको नभका गुण भेंटता ।

रजनि शान्त, प्रशान्त कुमार हैं,
सुन सँदेश चुके सुर-वृन्दका,
मुखर-युक्त अनाहत नादसे
धमनियाँ उनकी गतिशील हैं।

न गति मारुतमें लघु श्वासकी,
विटप-पल्लव मर्मर-हीन हैं,
न रसना जिनके वह हो रहे
अयुत लोचन कोटिक कर्णके।

निरख मूक प्रशान्तिमयी निशा
हृदयमें उठते बहु भाव हैं,
सुगत-मानसकी तरला दशा
प्रसरती द्रव पारद-राशि-सी।

तुहिनके, घनके उस पार भी
तिमिर, विद्युतके इस पार भी,
उभय विस्मय-कौतुकके परे
निलय है उस अद्भुत शान्तिका।

अब उसी गृह-द्वार-अलिन्दमें
भ्रमित है मन राजकुमारका,
अधर मुद्रित हैं उस शान्तिमें,
तरल तीव्र विचार-प्रवाह है।

धँस गये अब आत्म-विचारमें,
नयन मीलित, कीलित कर्ण हैं,
कुशल है इतनी इस काल जो
अति प्रगाढ़ प्रसुप्त यशोधरा।

शार्दूलविक्रीडित

हे निद्रे, जन-शान्ति-ग्रन्थि, दयिते, तू ही मनोमोहिनी,
प्रज्ञाकी उपहार-भूमि सखि तू, संताप-शान्ति-प्रदा,
दीनोंका धन, तू स्वतन्त्र सुख है बन्दीजनोंके लिए,
प्याला विस्मृतिका पिला सुगतको, संसार सोता रहे ।

९—चिन्तना

द्रुतविलंबित

अरुणके उगते, खग बोलते,
तरणिके उठते, निशि बीतते,
नृपति-सम्मुख होकर दूतने
कर प्रणाम कहा कर जोड़के—

“ महिप, सम्प्रति राजकुमारके
हृदयमें प्रकटी अभिलाष है,
जगत-दृश्य लखें, मन तुष्ट हो,
वह निकेतनमें अब ऊबते । ”

नृपतिने निज स्वीकृति दे कहा,
“ सफल हो सुतकी यह लालसा,
सकल स्वीय धरा अवलोकना,
उचित है उस भावि नृपालको ।

" नगर-पण्य तथा पुर-वीथिका
जगमगें सब सुन्दर साजसे,
नगरमें सुखदायक दृश्य हों,
शकुन मंगल ही सब ओर हों।

" जरठ पंगु कृशांग मनुष्यके
कुरुचि-पूर्ण कुदृश्य रहें नहीं, "
नृपतिका यह शासन ग्राममें
त्वरित फैल गया इस भाँतिसे—

' कृश, जराधृत, अंध, अ-कर्ण भी
न निकलें गृहको तज मार्गमें,
सकल वासर आज न बात हो
निधन, रोदन या शव-दाहकी।'

नृप-निदेश फिरा जब ग्राममें
लग गये नर-नारि विधानमें,
सदन स्वच्छ सजाकर, द्वारपै
सलिल-सिंचन भी करने लगे।

पथ-तटस्थित-वृक्ष-शिखाग्रपै
कलित केतन भी फहरा उठे,
सुमुखियाँ मुदिता सजने लगीं
परम चित्र-विचित्रित भीतियाँ।

कुल-वधू दधि-रोचन-पुष्प ले
सदन-द्वार सभी सजने लगीं,
सकल साज-समाज रचे गये,
पुर प्रभूत सुदर्शन हो गया।

यह लखो रथ आ पहुँचा, अहो !
कपिलवस्तु-धरेन्द्र-कुमारका,
चपल चंचल सैंधव हींसते,
रथ शिखाग्र प्रकाशित हो रहा ।

सुमुखियाँ शुभ गायन गा रहीं,
कर रहे सब लोग प्रणाम हैं,
विहँसते लखते जन मोदमें
नृपति-जीवनकी सुख-सारता ।

जन-समागम देख कुमारने,
चकित हो, मन-ही-मनमें कहा,
'कर सका इनका उपकार क्या ?
बन रहे यह क्यों अति मुग्ध हैं ?

'वह कहाँ शुभ उद्गम-भूमि है,
नृप न जो, उनके इस प्रेमकी ?
मनुज-जीवन-सौख्य-विधायिनी
खनि कहाँ इस सुन्दर शीलकी ?

'मुदित हो द्विज-बालक प्रेमसे
कुसुम क्यों मुझको यह दे रहा ?
रथ चढ़ा इसको द्रुत क्यों न लूँ,
सुमन लूँ, सब कारण पूछ लूँ ?

'सकल मानव चित्त-प्रसन्न हैं,
सुलभ आनँद क्या इतना यहाँ !
हय उठाकर छन्दक, सारथे,
रथ करो द्रुत ग्राम विलोक लें ।

‘ सुख-समृद्धि-विधायक राज्य है
यदि मिले वसुधा सरसा प्रजा,
त्वरित और बढ़ो तुम, सारथे,
सुभगता लख लें सब ग्रामकी । ’

नगरमें निकले अति मोदसे
गति गभीर हुई हय-यानकी,
मनुज संस्थित थे पथ-पार्श्वमें
सुगतको लखते अति प्रेमसे ।

कर प्रणाम महान प्रसन्न थे,
सुगुण थे कहते युवराजके;
कपिलवस्तु-महीप-निदेशका
सुदृढ़ पालन थी करती प्रजा ।

मनुज एक परन्तु उसी घड़ी
उटजसे निकला अति दुःखमें,
लड़खड़ाकर आकर सामने
जरठ जर्जर-देह खड़ा हुआ ।

सकल अंग जरा-कृत जीर्ण थे,
वसन-वास समस्त विशीर्ण थे,
सित शिरोरुह रूक्ष विकीर्ण थे,
गलित गात्र ज्वरादि-विदीर्ण थे ।

पलित पूय-परा विरसा त्वचा
लटकती कृश-गात्र शरीरपै,
धँस रही धरणीतलमें यथा
मनुजसे पहले मरने चली ।

दुखद जीवनके गुरु भारसे
कटि हुई नमिता, श्रमिता दशा,
धरणिमें लखता झुक व्यर्थ है
जलधिमें रस-रत्न चला गया।

धँस गये, लघु लोचन हो गये,
स-मल है बहती जल-धार भी,
वरुणियाँ सित-पिंग जरत्वसे,
खनि कपोल बने गतआयुकी।

असित कुंचित केश-कलापको
सित किया कुछ ही अवकाशमें,
कुपित हो अथवा इस दोषपै
वदनने द्विज-राजि निकाल दी

दशन-हीन हुआ मुख दीन है,
मुखर अस्फुट भी कहने लगा,
निहित इन्द्रिय-शक्ति कहाँ गई ?
जरठ बालक-तुल्य अशक्त है।

निपट जर्जर हो, बल-हीन हो,
लकुट ले करमें वह रेंगता,
निरख उत्सव, धूम, उमंग भी,
स-भय भूत-समान स-कम्प है।

कर द्वितीय धरे निज वक्षपै
जरठ घर्घर श्वास निकालता,
गिड़गिड़ाकर यों कहने लगा
स्वर कढ़ा कफ-कुंठित कंठसे—

" अतिथि मैं कुछ ही दिनका रहा,
　　अब न जीवनमें कुछ सार है,
अति बुभुक्षित हूँ, कुछ अन्न दो,
　　जय सदा जय हो, जय हो, प्रभो ! "

लख उसे निकटस्थ समूहने
　　पकड़ बाँह घसीट कहा, " अरे,
जरठ तू जड़, अन्ध, न देखता
　　इधर राजकुमार पधारते । "

जन-समूह-विताडित वृद्धको
　　द्रवित-चित्त कुमार विलोकके
कह उठे, " ठहरो, ठहरो, रुको,
　　मत करो तुम दुःखित दीनको ।

" मनुज-सी कर आकृति, सारथे,
　　बिकट जीव खड़ा यह कौन है ?
विकृत दीन मलीन अधीन जो
　　समय-दीर्ण विलास-विशीर्ण है ।

" जगतमें इस आकृतिके कहाँ
　　उपजते नर हैं, किस कालमें ?
वसति है इसकी किस लोकमें ?
　　अतिथि क्यों कहता निजको, सखे !

" रहित-भोजन, छादन-हीन है,
　　शिथिल हैं तनकी सब ग्रन्थियाँ,
विपति कौन पड़ी इस जीवपै,
　　यह विषाद-विमर्दित क्यों हुआ ? "

वचन यों सुन राजकुमारके
विनय छन्दकने इस भाँति की,
"बन गया नत जीवन-भारसे
यह स-दंड त्रिपाद मनुष्य है ।

"यह कभी नवयौवन-युक्त था,
सरस और स-शक्त शरीरका,
उर समुन्नत, अंश समुच्च थे,
परम उज्ज्वल निर्मल दृष्टि थी ।

"श्रुति हुई शिथिला, स्मृति भी मिटी,
गति हुई कुटिला, द्विज भी गिरे,
विरस गो-गरिमा अब हो गई,
जरठता कलिकाल-समान है ।

"जगतके सर-मध्य मनुष्यका
अचिर जीवन पंकज-तुल्य है,
समयका अलि कोश-निविष्ट हो
निगलता सुखका मकरन्द है ।

"ग्रहण जन्म किया जिसने, प्रभो,
(यदि मरा न अकाल-प्रभावसे)
जरठ सो बनता इस भाँति ही
परम दीन अशक्त शरीरका । "

वचन छन्दकके सुन ध्यानसे,
मनुजके तनकी लख दुर्दशा,
हृदय खिन्न हुआ अमिताभका,
त्वरित लौट पड़े निज धामको ।

मुकुर-मंजुल आननकी प्रभा
बन गई इस भाँति मलीमसा,
मुरझ कंज गया हिम-पातसे,
निगल राहु गया निशिनाथको।

अधिक स्यन्दनकी गतिसे हुई
स-जव हृद्गति राजकुमारकी,
नयन थे नत, और ललाटपै
अधिक चिन्तनसे त्रिवली लसी।

निरख चिन्तित राजकुमारको,
हृदयकी गतिको प्रतिघात दे,
सुदृढ़ साहससे कर कल्पना
कथन छन्दकने फिर यों किया—

"पर, जरा बहु आदरदायिनी
सचिव, भूप, यती, गुरु, वैद्यको,
दुखद केवल है वह दारुणा
कथक, वार-वधू, हरि, मल्लको।

"यह जरा बहु पुण्य किये बिना,
विरचती यम-सा धृत-दंडको,
स-गदको हरि, सारँग वक्रको,
शिव विरूप-विलोचनको, प्रभो!

"पलित-दूत खड़ा नर-शीशपै
जप रहा यह मंत्र स्वतंत्र है,
'अब जरा, तब मृत्यु अवाध्य है,
ग्रहण पुण्य करो, तज पाप दो।'

" निधन-अग्र-प्रसाधिनि-दूतिका
श्रुति-समीप यही कहती जरा—
' पर-वधू, पर-द्रव्य न देखिए,
चरण श्रीपतिके अवराधिए। '

शार्दूलविक्रीडित

" वीणा जो नर-देहकी बज रही थी आज लौं घोषसे,
धीरेसे रख काल-वादक उसे है हाथसे रोकता,
तारोंका अनुनाद मंद पड़ता, यों बन्द होगा, प्रभो,
होगी निःस्वन धातु-दारु-चय भी निस्तब्धता-रूपिणी। "

द्रुतविलम्बित

जन लखा, जनकी गति भी लखी,
सुख लखा, सुख-अस्थिरता लखी,
अति उदास हुए लख विश्वकी
कुगति जो अघ-कातरता-मयी।

सदनमें पहुँचे, मन खिन्न था,
अति उदास, उसास-अभिन्न था;
अब उन्हें सब साज स्व-गेहके
हृदयको दुखदायक-मात्र थे।

वह सुरा, जिससे अति प्यार था,
हृदय-कर्षणमें अब व्यर्थ थी,
पड़ गया उनको रस और ही,
चढ़ गया उनपै मद और ही।

विविध व्यंजन सम्मुख ही धरे
रह गये सब शीतल हो गये,
अशन तो उनका अति दूर था,
दृग उठा निरखा न कुमारने ।

सुभग नर्तकियाँ निज नृत्य भी
सहित-हाव स-भाव दिखा थकीं,
पर कुमार रहे स्थित मौन ही
निरत चिन्तनमें कुछ काल लौं ।

द्रुत हुई लख राजकुमारको
चपल-चिन्तित-चित्त यशोधरा,
परम प्रीतिमयी वचनावली
कथन यों उनसे करने लगी—

" नव निमित्त अकांड विषादका
कुछ न जान सकी यह सेविका,
त्रुटि हुई मुझसे यदि हो, प्रभो,
वह क्षमा करिए, सुख पाइए । "

सुन कहा यह राजकुमारने
" सुमुखि, मैं किस भाँति सुखी बनूँ ?
सकल जीवनके सुख, हे प्रिये,
परम अस्थिर हैं, अति तुच्छ हैं ।

" जरठ हो, रस-रूप-विहीन हो,
नमित हो, अति शीर्ण शरीर हो,
दिवस एक सभी, तुम और मैं,
निधन-प्राप्त, प्रिये, बन जायँगे ।

"मुख मिला मुखसे हम प्रेमसे
सुदृढ़ बद्ध रहें भुज-पाशमें,
पर महा दुखदायक कालकी
गति सभी स्थलमें सम है, प्रिये।

"जिस प्रकार असेत विभावरी,
हरण है करती द्युति काचकी,
निधन भी इस भाँति मनुष्यकी
हरण है करता सुख-संपदा।

"समय-स्यन्दनका द्रुत चक्र तो
विपथ-सत्पथ-भेद न जानता,
वह सदा चलता सम-भावसे
सुमुखि-आननपै, नर-सीसपै।

"सकल-विस्तृत है कर कालका,
ग्रहणसे रवि भी बचता नहीं,
गगनसे खग, मीन पयोधिसे
वह यथा-रुचि संतत खींचता।

"जलधिमें तिरते जब शैल हैं,
मनुजको मनुजाद विनाशते,
कपि-कलाप बना जब विग्रही,
अहह! काल-कथा कहना वृथा।

"निरखके गति काल-करालकी
विषम आज उठी यह कल्पना,
किस प्रकार बचें इससे, प्रिये,
सतत यौवनका सुख पा सकें।

" स-शिव-सुन्दर-सत्य अनन्तता
जगतके पहले जिस भाँति थी,
प्रलयमें जब विश्व समायगा
यह उसी विधि व्यक्त दिखायगी ।

" तट-विहीन तडाग-अनन्तता,
तल-विहीन पयोधि-अनन्तता,
गगन-तुल्य अनन्त अनन्तता,
अ-भव-तुल्य अनादि अनन्तता ।

क्षितिजपै नय-विस्तृत मार्ग है,
परम उज्ज्वल और प्रशान्त है,
घिर रहे सिरपै घन रागके
रँग सभी चरमाचलको गया ।

शार्दूलविक्रीडित

फैली है रजनी, प्रशान्त नभ है, राकेश है राजता,
बारंबार उसास ले विकल-से सिद्धार्थ आसीन हैं ।
क्या है जीवनका रहस्य मनमें हैं सोचते व्यग्र हो,
देखें भूप कहाँ, जिन्हें तनुजकी चिन्ता नहीं ज्ञात है ।

*

१०—भावी

शार्दूलविक्रीडित

श्रीका जो अति शुभ्र खेल-सर है, जो शैत्य-आगार है,
सो राकेश अनन्त व्योम-तलमें शोभा-सुधा-सौध है,
पुंजीभूत शकेशका सुयश या कंदर्पका धाम है,
या हो उज्ज्वल कंज ही गिर रहा देवापगा-कूलसे।

वंशस्थ

कुमुद्वती-संग पराग-राशिनी,
सुहासिनी वार-वधू-विलासिनी,
महा-तमोमंडलकी प्रकाशिनी,
प्रबुद्ध ज्योत्स्ना यह मत्त-काशिनी।

न घेरती है अब अन्तरिक्षको
पयोद-माला गत भाद्र-मासकी,
मलीमसा पावसकी दिगंगना
प्रभूत-आभा निशिनाथ-धौत है।

समग्र फैली अति शुभ्र चंद्रिका
खिली मुदा कैरवि-तारकावली,
बना नभोमंडल है तडाग-सा,
निशेश है शोभित राजहंस-सा।

निशीथिनीके इस दीप्त दीपसे
प्रकाशिता शुभ्र प्रभा-वधू हुई,
खिला हुआ यौवन मंजु कान्तिका
अनूप है मोद-प्रदान-प्रक्रिया।

हुई समुद्भूत यदा दिगन्तसे
महान शोभामयि चारुचंद्रिका,
चढ़ी हुई थी अपने शिखाग्रपै
गभीरता अच्युत अन्तरिक्षकी।

विभासिता वर्तुल तारकावली
उगी सभी ओर सुधा-निधानके
महीरुहोंपै कुछ पीतिमा लसी
महीधरोंमें सितता समा गई।

सभी स्थलोंमें, सब नीर-पुंजमें,
सभी बनोंमें सब गेह-कुंजमें,
तथा हुआ प्लावन चन्द्र-बिम्बका
गिरी सुधा-धार यथा गिरीशपै।

अमोघ है ओषधि ओषधीशकी,
प्रभाव न्यारा क्षणदाधिराजका,
तडागमें हैं लहरें विभासकी,
हुआ अकूपार तरंग-युक्त है।

विलोकिए, अम्बर-मध्य कौमुदी
स्मरातुरा वार-वधू-समा लसी,
स-राग खोला मुख-चन्द्र ही नहीं,
निकाल फेंकी तम-तोम-कंचुकी ।

प्रकाश तारापतिका विलोकके
हुआ नभोमंडल मोद-युक्त यों,
प्रफुल्ल हो, ले अधिकाधिका प्रभा
चला छिपाने विधुका कलंक भी ।

स-हर्ष पीयूष-तरंगिणी उठी,
वसुन्धरा सम्यक शासिता हुई,
बनी स-रागा अवदात रोदसी,
हुई महीमंडल जातरूपका ।

हुई द्रवीभूत सुधा सुधांशुसे
जहाँ हँसी, पारदकी नदी धँसी,
प्रकाश है शैत्य-समेत राजता,
सहर्ष है व्योम, स-हास भूमि है ।

स-रत्न मानों यह क्षीर-सिन्धु ही
हुआ समुद्वेलित, व्योममें रुका,
अभिन्न है मित्र इसीलिए, लखो,
न ज्वार-भाटा उठता कदापि है ।

प्रशान्त है विश्व, मदीय चित्त भी,
मनुष्यताका वह ताप दूर है,
अबाध है दृष्टि, विमुग्ध भाव है,
चलो लखें संसृति स्वप्न-लोककी ।

जहाँ नहीं है अवकाश कालका,
न देश कोई, न अपात्र-पात्र है,
परा अवस्था वह प्राण-हेतुकी
अनूप है संसृति स्वप्न-लोककी ।

निशीथ है, सुप्त शकाधिनाथ हैं,
महा मनोहारिणि मंजु नींद है,
कुमार सिद्धार्थ उदीयमानके
विचारने दी सुख-शान्ति है उन्हें ।

विलोकके लक्षण शाक्य-सिंहके
समाप्त जाना उनकी विरक्तिको,
नृपाल डूबे सुखकी सुषुप्तिमें
असंज्ञ, संयुक्त प्रगाढ़ शान्तिसे ।

अखंड योगी-सम एक पादपै,
खड़ा हुआ निश्चल शान्त भावसे,
उठी हुई उच्च शिखा अचालिता
प्रसुप्त है, किन्तु प्रबुद्ध दीप है ।

समीरका मंडल शब्द-शून्य है,
निकेतमें नीरवता प्रगाढ है,
(प्रसुप्त-वक्षस्थल सापवाद है)
पलंगकी चादर है अ-दोलिता ।

विलोक सप्तर्षि-समूहने निशा
समीप जाना उपयुक्त काल सो,
नृपालको स्वप्न दिये अनेक, जो
बता रहे थे घटना भविष्यकी ।

निकेतमें भूप प्रागाढ़ नींदमें,
प्रसुप्त थे स्वप्न उन्हें हुए कई,
भरे हुए जो घटना-रहस्यसे
समस्त भावी प्रतिबिम्ब-युक्त थे ।

लखी उन्होंने सुर-नाथकी ध्वजा,
महान शुभ्रा, रवि-भानु-जालिनी,
प्रवेगसे ध्वस्त किया तुरन्त ही
जिसे सकम्पानिलके झकोरने ।

अनेक छाया-नर आ गये वहीं
लगे पताका-पट नोचने सभी,
कठोरतासे करते कुशब्द वे
चले गये बाहर शाक्य-ग्रामके ।

तदा विलोका नृपने समक्ष ही
समूह जाता दश मत्त दन्तिका,
कुमार ले अंशुक अंशु-पुंजका
सवार थे अग्रग शुंड-वाहपै ।

पुनः लखा स्यन्दनमें जुते हुए
तुरंग हेषा-रव-लीन चार थे,
ज्वलन्त था आनन अग्नि-फेनसे,
निकालती थी सित धूम नासिका ।

पुनः पुनः शाक्य-नृपालने लखा
अलात-से चंक्रम-युक्त चक्रको,
अजस्र आवृत्तिमयी स्व-भ्रान्तिसे
क्षण-प्रभा जो करता परास्त था ।

प्रकाश-आपूरित चक्र-नाभि थी,
मरीचि-माला-मयि नेमिकी प्रभा,
समस्त आरोंपर थे प्रकाशते
अनेकशः मंत्र हिरण्य-गर्भ के ।

पुनः लखा सुन्दर स्वप्न भूपने,
कि मध्यमें पर्वत और ग्रामके
खड़े हुए शाक्य-कुलाधिदेवकी
महा प्रसन्ना मुखकी प्रभा लसी ।

स-नाल-कंजोपम हस्तसे मुदा
कुमार डंकेपर चोब दे रहे,
प्रचंड निर्घोष पयोद-नाद-सा
हुआ नभोमंडल-मध्य व्याप्त था ।

स-तर्क हो भूप विलोकने लगे,
मनोज्ञ था मंदिर एक सामने,
विशाल उत्तुंग गिरीन्द्र-शृंग-सा
चला गया उन्नत अन्तरिक्ष लौं ।

कुमार मुक्ता, मणि, हीर, हेम भी,
लुटा रहे थे अति मुक्त-हस्त हो,
कि व्योमसे भूपर अग्नि-देव ही
स्वकीय लीला-कण थे बिखेरते ।

असंख्य नारी-नर रंक-यूथ-से
प्रसन्न थे रत्न-समूह लूटते,
कृतार्थ हो वे कर जोड़ ईशसे
मना रहे थे जय अर्क-बन्धुकी ।

पुनः हुआ अन्तिम स्वप्न भूपको
सुना महा आर्त-निनाद गूँजता,
महा विपन्ना जन-मंडली कहीं
पलायमाना वन-गामिनी बनी।

यथार्थ थे दृश्य निशान्तकालके,
नृपाल जागे अति व्यग्र-चित्त हो,
रहस्य क्या है इन सात स्वप्नका
पड़े पड़े ही वह सोचने लगे।

तुरन्त ही सुन्दर प्रात हो गया,
सरोज उत्फुल्ल हुए तड़ागमें,
हुई प्रसन्ना अति ही रथांगिनी,
परन्तु पृथ्वीपति खेद-युक्त थे।

सुधी, गुणी, पंडित, विज्ञ-अग्रणी,
सभी बुलाये नृपने प्रभातमें,
परन्तु, कोई उन सप्त-स्वप्नका
रहस्य क्या था, न कभी बता सका।

उदास थे भूप, सदस्य मौन थे,
रहस्य-मुद्रा लग स्वप्नपै गई,
निराश लौटे जब विप्र गेहको
खड़े हुए एक सुधीन्द्र यूथमें।

सुधीन्द्रके केश-कलाप श्वेत थे,
ललाट था चन्द्र-समान राजता,
बना मुषा-तापित जातरूपका
शरीर था पुष्ट परन्तु क्षीण था।

ललाट, ग्रीवा, कर, जानु, पादकी
नसें समाकृष्ट अतीव व्यक्त थीं,
महायती इन्द्रिय-ग्राम-वाजिकी
प्रकृष्ट वल्गा-रय हों खिंची यथा।

दबा हुआ था मृग-चर्म कक्षमें,
सधा पयोभाजन वाम हस्तमें,
अलक्त माला हिल वक्षपै उठी
उठी जभी दक्षिण बाँह साधुकी।

नृपालसे वे ऋषि प्रेष्य-भावसे
भुजा उठाके जब बोलने लगे,
हुए सभा-आँगनमें प्रतीत वे
शरीरधारी भवितव्य-से सुधी।

" महा कृती भूप प्रशंसनीय तू,
त्वदीय प्रासाद पवित्र भूमि है,
प्रभा जहाँकी भुवनातिरंजिनी
विनाश देगी हृदयान्धकार भी।

" लखे धरित्रीपति, सप्त स्वप्न जो
वही महा मंगल सप्त लोकके,
प्रतीत होता वह काल आ चुका
दिनेश होगा जब व्यक्त धर्मका।

" लखा महीमें नत केतु आपने
ध्वजा गिरी है वह पाप-मार्गकी,
प्रसिद्ध थे जो व्यभिचार धर्मके
कभी न होंगे श्रुत वे भविष्यमें।

" दशा समाना रहती न सर्वदा,
सुरेन्द्रकी हो अथवा नरेन्द्रकी,
व्यतीत होते सब कल्प वार-से
समाप्त होते दिन याम-पादसे ।

" धरा बनाते नमिता स्व-पादसे
प्रमत्त देखे दश नाग आपने,
कुमारके वे दश शील मंजु हैं,
उन्हें करेंगे बहु कीर्ति-पात्र जो ।

" कुमार देंगे तज राज-पाट भी,
न वे रुकेंगे पुरमें, न प्रान्तमें,
समस्त भूमें निज धर्म-ज्योतिसे
प्रभा भरेंगे चल सत्य-मार्गपै ।

" जुते लखे जो हय चार यानमें
वही महा सौख्यद ऋद्धि-पाद हैं,
विनाशते संशय-अंधकार जो
प्रकाशते उज्ज्वल ज्ञानकी प्रभा ।

" तदा विलोका करमें कुमारके
सुवर्तुलाकार सुधर्म-चक्र जो,
जिसे घुमाके इह जीव-लोकमें
जयी बनेंगे वह चक्र-पाणि-से ।

" कुमार सारे उपदेश धर्मके
प्रसारके दुंदुभि-नाद-तुल्य ही,
विधर्मताकी करके विडंबना
सुबोध देंगे सब प्राणि-मात्रको ।

"समुच्च देखा गृह तेज-पूर्ण जो
वही महामंजुल बुद्ध-शास्त्र है,
निपात था जो बहु-रत्न-राशिका
प्रदान था सो निज धर्म-मंत्रका।

"पलायमाना जन-मंडली न थी
अनीक थी सो क्षत पाप-कर्मकी,
प्रकंपिता कानन-वासिनी बनी,
विलोक आदर्श समन्तभद्रका।

"सुखी बनो हे नृपते, विलोकके
प्रबुद्ध, सर्वज्ञ, समन्तभद्रको,
समस्त-भू-मंडल-राज्यसे कहीं
बढ़ा-चढ़ा शाक्य-मुनीन्द्र-राज्य है।

"सुवर्णके अंबरसे कुमारको
कषायके वस्त्र अतीव इष्ट हैं,
हुआ न होगा उन-सा न है कहीं
स्व-राज्य-श्री-संपति वार दीजिए।

"रहस्य ऐसा इन सात स्वप्नका
न अन्यथा है नृप, सत्य मानिए,
अवश्य ही वासर सात बीतते
न हो रहेंगे, न विचार कीजिए।"

सुधीन्द्रने यों कह भेद स्वप्नका
प्रयाण ज्यों ही निज धामको किया,
नृपालने दे धन दूत-वृन्द भी
तुरन्त भेजा उनके समीपमें।

परन्तु लौटे सब दूत, भूपसे
कहा, "अहो नाथ सुधीन्द्र-देवको
लखा सभीने कुछ दूर सामने,
निविष्ट वे मंदिर-मध्य हो गये।

"वहाँ गये तो उनको न पा सके,
तुरन्त वे आत्म-निधान हो गये,
उलूक ही देख पड़ा निकेतमें
हमें लखा तो वह भीत हो उड़ा।"

सुना समाचार नृपालने यदा
स-तर्क सम्मोहित-चित्त हो गये,
प्रकाशनेको गति अन्त-भाविनी
पधारते देव इसी प्रकार क्या?

शार्दूलविक्रीडित

"हे मंत्री, अब तो रचो भवनमें संभोगकी योजना,
मेरा पुत्र करे सदा नवनवा आनन्द-आराधना,
चौकी चौकस द्वारपै लग रहें, हो वार या यामिनी,
कैसे राजकुमार पार करता शृंगारका सिन्धु है?

जाओ, राजकुमारसे तुम कहो, "है व्यर्थकी वेदना,
जो जो है घटता मनुष्य-तनपै दुर्लंघ्य सो सर्वथा,
राजा, वैद्य, यती, सु-मंत्र नरको है सौख्यदा वृद्धता,
पण्य-स्त्री, चर, मल्ल, गायक दुखी होते उसे प्राप्त हो।

" होता स्पष्ट प्रभात-स्वप्न-सम है दीर्घायुका मार्ग भी,
सारी संसृतिका रहस्य बनता सुस्पष्ट वृद्धत्वमें,
कोई भी मरता नहीं जगतमें प्राणी जरा-रोगसे
चिन्ता, क्रोध, प्रयत्न, भीति, करुणा, पंचत्वके हेतु हैं।

" आती संतत आयु संग नरकी गंभीरता, धीरता,
दोनों सद्गुण वीरता-परक हैं, कार्पण्यसे हीन हैं,
होती यौवनमें अवश्य प्रबला संभ्रान्ति-संभावना,
प्यारे, सम्मति-दानमें जरठ ही भू-लोक-मंदार हैं।

" प्राणी जीवनकी पवित्र गति है, संतापकी शान्ति है,
सारा दृश्य महान मोदमय है, संबोध-सम्मान है,
होता है अमृतत्व-साधन वहीं वृद्धत्वके देशमें,
संध्या ही करती प्रभात जगमें, चूडान्त सिद्धान्त है।

मालिनी

" सकल दिवस चिन्ता चित्तमें हो प्रजाकी
सकल रजनि बीते ध्यानमें धर्मके ही,
सकल-जगत-कर्ता-अर्चना प्रातमें हो,
सकल-प्रकृति-आशीः साँझ लौं भूप लेवे।"

११—अभिनिवेदन

शार्दूलविक्रीडित

विधि-विधान अनादि-अनन्त है,
अपरिमेय, अगम्य, अभेद्य है,
अघट भी घटना घटती यहाँ
जग सभी भवितव्य-प्रधान है।

तदनुसार शकेश-कुमारके
हृदयमें उपजी फिर लालसा,
भवन-बाहर जाकर वे लखें
अति रहस्यमयी यह मेदिनी।

मनुजके इस जीवन-सिन्धुका
सलिल-पूर्ण प्रवाह अमन्द है,
पर विलीन सदा बनता वही
अहह ! काल-मरुस्थल-मध्यमें।

नृपतिके ढिग जाकर प्रातमें
विनय की इस भाँति कुमारने—
" जनक, है मुझको फिर लालसा,
पुर लखूँ, भवदीय निदेश हो।

" नगरमें उस वासर था फिरा
प्रभु-निदेश, ' रहें सब मोदमें, '
सकल हाट तथा सब बाटमें
परम आनँद-दायक साज थे।

" पर मुझे यह ज्ञात हुआ वहीं,
प्रकृत मानव-जीवन था न सो,
प्रथम वार समस्त मनुष्य भी
सहित-मोद-प्रमोद-विनोद थे।

" यदि मुझे भवदीय प्रसादसे
प्रकृत जीवन देख मिले कहीं,
समझ लूँ निजको अति धन्य मैं
अनुभवी बनना नृप-धर्म है।

" नृपति-धर्म सुना, प्रभु, आपसे,
परम दुष्कर कर्म कठोर है,
प्रकृतिकी स्थितिको पहचानना,
बहु विशिष्ट विधेय विचार है।

" निरख लूँ जन-शासितकी दशा
रजनि-वासर जो श्रम-लीन हैं;
समझ लूँ उनकी करुणा-कथा
नृपति जो न महान अधीन हैं।

" यदि निदेश मिले मुझको, प्रभो,
परम गुप्त बना निज वेष लूँ,
सकल मार्ग लखूँ निज ग्रामके
भवनको पलटूँ अति तुष्ट हो ।

" यदि न तुष्ट हुआ, दुख ही मिला,
फल मिला तब भी अनुभूतिका,
परम संभव है गुरु लाभ हो
युवकको,—मुझ भावि नृपालको ।"

श्रवण वाक्य किये महिपालने
हृदयमें दृढ़ता कुछ आ गई,
कुछ असंभव है न, कुमारके
हृदयका परिवर्तन हो सके ।

मुदित हो शक-भूपतिने कहा,
" हृदय-गम्य विचार, कुमार, है;
नगरको सब भाँति विलोकना,
अनुभवी बनना नृप-धर्म है ।"

शार्दूलविक्रीडित

राजाके सुन वाक्य, आ भवनमें सिद्धार्थने शीघ्र ही,
धारा वेष बनारसी वणिकका, त्यागा कुमारत्व भी,
लेके छन्दकको चले त्वरित ही प्रासादसे ग्रामको,
दोनों 'साधु' पदाति ही निरखते आगे बढ़े मार्गमें ।

द्रुतविलंबित

मिल गये द्रुत पौर-समूहमें,
उभयको पहचान सका न जो,
वणिक-वास-समावृत वेषमें
निरखते वह ग्राम-दशा चले।

विपणिके पथसे पहले चले,
बहु जहाँपर पण्य-प्रसार था,
मुखर था जन-संहतिका वहाँ
सकल थी कलनादिनि वीथिका।

वणिक-वृन्द स-मोद दुकानमें
कर रहा क्रय-विक्रय व्यस्त हो,
झगड़ते लख ग्राहक मूढ़को
रगड़ता वह था कुछ देर लौं।

वृषभ-यान कहीं उलटा पड़ा,
महिष-यान कहींपर रेंगता,
'हट चलो, कुछ दो, ठहरो, बढ़ो,'
मच रहा सब ओर निनाद था।

चपल एक लिये शिशु कूलपै
कुल-वधू घटको भर कूपसे
सम्हलती, निज गोद सम्हालती,
सदनको अपने वह जा रही।

लख पड़े धुनिये धुनते हुए,
वसन-वायक भी बुनते हुए,
प्रमथ-मंदिरकी सुन घंटिका
मुदित हो मृग-दंशक भूँकते।

अयस्कारक बैठ दुकानपै
कवच, कुन्त, कृपाण बना रहे,
विदल लोहित हो झड़ते जहाँ,
श्रवणको खलती घन-चोट थी।

पड़ रही घटपै अति मंद थी
थपक कार्य-निमग्न कुलालकी;
लख पड़ा मणि-कार-समूह भी
सुभग जो मणि-हार बना रहा।

अपर शिल्प-विधायक-वृन्द भी
अधम धातु ठनाठन पीटता,
मुखर-जीवनकी इति-सी जहाँ
मनुज-संकुल थी पथ-वीथिका।

उभय 'साधु' बढ़े कुछ और तो
लख पड़े उनको रँगहार भी,
वसनको रँग रंग-विरंगसे
वह खड़े पथ-मध्य सुखा रहे।

निकलते भट ढाल-सजे हुए,
अपर मानव वस्तु लिये हुए,
स-गुण ब्राह्मण, क्षत्रिय साहसी,
वणिक पूर्ण समृद्ध स-मोद थे।

नववधू शिविकापर बैठके
विपणिसे निकली अति मोदमें,
सहचरी सँगमें कुछ जा रहीं,
सुभग मंगल गायन गा रहीं।

अहि नचाकर जीवक भी कहीं
कर रहा पथमें बहु खेल था,
सुन वराट-विमंडित तुंबिका
घिर रहे बहु बालक-वृन्द थे।

सुमुखियाँ विधुरा समवेत हो
विनय थीं करतीं शिवसे कहीं—
'वरद, हे प्रभु, हे शिव, शम्भु हे,
दयित शीघ्र फिरें पर-देशसे।'

शार्दूलविक्रीडित

देखा दृश्य महान मोद-युत हो, सिद्धार्थ आगे बढ़े,
पीछे छन्दक था, कुमार-मनकी जो वृत्ति था देखता,
दोनों 'साधु' बढ़े अमन्द गतिसे ज्यों ही कढ़े ग्रामसे
आया एक तड़ाग जो पवनसे कल्लोल-आक्रान्त था।

द्रुतविलंबित

नगरके निकले जब प्रान्तसे
सुन पड़ा स्वर आर्त मनुष्यका,
"अब गिरा, अब, हाय! मरा अरे!
अहह! सह्य न जीवन-भार है।"

जरठ आ निकला उस मार्गमें
व्यथित क्लेशित पीडित दुःखसे,
पलित पांशुल था तन धूलिमें,
विगलिता क्षत-विक्षत देह थी।

कच अमेचक भाल भयंद था,
　　विकृत रूप, मुखाकृति भीम थी,
मसलता कर था नर दुःखसे,
　　नयन थे निकले पड़ते, हहा !

परम निर्बल वृद्ध विपन्न हो
　　कर अनेक उपाय उठा जभी,
गिर पड़ा फिर यों रटता हुआ,
　　"कर गहो, पकड़ो, न तु मैं गिरा।"

सुन कुमार बढ़े करुणार्द्र हो,
　　जघनपै उसका सिर ले लिया,
विविध भाँति कहा, समझा-बुझा,
　　"अबलका बल मैं अब आ गया।

"अब न धाक जमा सकती जरा
　　दुख दबा सकते जनको नहीं,
जगत-व्याधि-विनाशनके लिए
　　प्रकट निर्बलका बल मैं हुआ।

"अहह ! छन्दक, वृद्ध मनुष्यकी,
　　यह दशा किस कारण हो गई ?
विपति क्यों ? अति घोर कराह क्यों ?
　　रुदन क्यों ? यह ऊब-उसास क्यों ?"

सुन कहा यह छन्दकने, "प्रभो,
　　ग्रसित है यह मानव व्याधिसे,
मर रहा नर है अब शीघ्र ही
　　कुछ रहा इसके न शरीरमें।

“ विविध तत्त्व मिलें क्रमसे यदा
समझते सब जीवन हैं उसे,
जब कभी उनमें व्यतिरेक हो
मरण-संज्ञक है घटना वही ।

“ रुधिर तप्त कभी बलयुक्त था,
अब वही बल-हीन अनुष्ण है,
हृदय था तब हेतु उमंगका,
अब वही भय-कारण-मात्र है ।

“ अऋजु देह हुई, नत-ग्रीव है,
सब नसें इसकी अब स्रस्त हैं;
विगत दैहिक सुन्दरता हुई,
अहह ! जीवन-सार कहाँ गया ?

“ जरठ-अंग अतीव अराल हैं,
धँस रहे दृग हैं दृग-कोशमें,
नर विपन्न, जरा-अवसन्न है,
न अब भी तजते असु देहको ।

“ जरठके इस अस्थि-समूहको,
विरस काष्ठ बनाकर व्याधियाँ
निकल शीघ्र कहीं उड़ जायँगीं,
प्रभु सुदूर रहें गद छूत है । ”

जघनसे सिर वृद्ध मनुष्यका
विलग किन्तु किया न कुमारने,
दृग उठाकर छन्दकसे कहा
“ सच कहो, तुम निश्छल, सारथी ।

" जगतमें इसके अतिरिक्त भी
अपर मानव क्या दुख-पूर्ण हैं ?
यह दशा सबको अनिवार्य क्या ?
व्यथित क्या हम भी बन जायँगे ?

" किस प्रकार तथा किस कालमें,
दुरित हैं नरका तन छेदते ?
त्वरित दो बतला, यदि जानते,
प्रकटते गद हैं किस वेषमें ? "

" अपर मानव भी, प्रभु, विश्वमें
कृशित-काय, जराकृत-जीर्ण हैं,
सकल जीव-समूह यदा-कदा
ग्रसित हैं बनते भव-व्याधिसे ।

" स-कफ-पित्त स-वात शरीरमें
उभड़ते बहु दोप अशम्य हैं,
यकृत-फुफ्फुस-स्नायु-शिरादिसे
प्रकटते बहु दुःखद रोग हैं ।

" रुधिर-मांस-वसा-त्वक-अस्थिसे
रचित आमय-ओघ शरीर है;
जन-पुरातन-कर्म-प्रभाव ही
सुदृढ कारण है भव-व्याधिका ।

" जिस प्रकार छिपा अग-पुंजमें
झपटता लख व्याल मयूर है,
निहित सर्प यथा तृण-राशिसे
निकलके डसता पद पान्थका ।

“ जिस प्रकार अचेष्ट कुरंगपै
सघन काननसे हरि टूटता,
जिस प्रकार अकाल पयोदसे
अशनि है गिरता गिरि-शृंगपै ।

“ निधन ठीक इसी विधि-से, प्रभो,
मनुजपै करता निज घात है,
मनुज क्या, जगके सब जन्तु भी
अचल लक्ष्य बने इस मृत्युके ।

“ सब घड़ी, सबको, सब भाँतिसे
भय लगा रहता भव-व्याधिका,
मर रहस्य-निदर्शक भी गये
निधनका, पर, भेद न पा सके ।

“ नर प्रसुप्त हुआ जब रात्रिमें
बन गया वह तो मृत-तुल्य ही,
न जनमें यह साहस, जो कहे,
‘ कल प्रभात हुए जग जायगा । ’

“ सकल रोग तथा सब क्लेशकी
अशुभ उत्तरदान-स्वरूपिणी
विविध व्याधि, अशक्ति, विषण्णता,
विरस देह, विपत्तिमयी जरा—

“ जरठता रहती यदि अंतिमा,
दुख सभी यह भी अवमान्य थे,
पर, प्रभो, इसकी अनुगामिनी
अखिल-भूत-भयंकर मृत्यु है ।

" जब नितान्त-कृतान्त-स्वरूपिणी
मनुजको ग्रसती वह मृत्यु है,
सकल जीवनकी करुणा-कथा
निकलती सब अंतिम श्वासमें ।

" मनुज जो निज नेत्र-निमेषमें
विरचते अति भीषण क्रान्ति है,
मृतक हैं बनते वह भी, प्रभो,
इतरकी तब कौन कथा कहे !

शार्दूलविक्रीडित

" होता संभव है यदा मनुजका, रोता महा दुःखसे,
ज्यों-त्यों है बढ़ता, किशोर बनता, होता युवा साहसी,
ढोता है जग-ताप-भार सिरपे पाता यदा प्रौढ़ता,
होता वृद्ध, जरा-विशीर्ण बनता, जाता ज्वरा-धामको ।

" वैद्योंके मतसे त्रिदोष नरके पंचत्वका हेतु है,
ज्योतिर्ज्ञान-विदग्ध-वृन्द ग्रहके दुष्टत्वको मानता,
जो भूतज्ञ स-तंत्र-मंत्र कहते हैं 'भूत-बाधा लगी,'
विज्ञोंका अनुमान है, कुफल है प्राचीन संस्कारका ।"

द्रुतविलंबित

कुछ बढ़े, निरखी जन-मंडली
रुदन जो करती अति घोर थी,
सरि-समीप चली वह जा रही
विनत थे सबके सिर शोकमें ।

सुहृद बन्धु बने अति खिन्न थे,
स्वजन भी बहु-रोदन-युक्त थे,
विलपती वनिता सँगमें चली,
हरित बाँस बँधे मृत-यानमें ।

धवल वस्त्र ढकी तनु-यष्टिका,
मृतक था स्थित चार मनुष्यपै,
नयन प्रस्तर-से, मुख भूत-सा,
उदर पुष्कर था, अँग दारु थे ।

विरच एक चिता सरि-कूलपै,
मृतकको उसपै रख शोकमें,
कुछ क्रिया करके फिर शीघ्र ही
जन कलेवर-दाहनमें लगे ।

" किस महान प्रशान्त प्रसुप्तिके
विवश हो जनका तन सो गया ?
विपति-संपति आतप-शीत भी
अब जगा सकते उसको नहीं ।

" अब तृषा न, क्षुधा न विपत्तिकी,
न दुखकी, सुखकी न प्रमोदकी,
अनलकी जलकी न समीरकी
कुछ रही उसको अनुभूति है ।

" अनल आनन-चुम्बन-लीन है,
पर न ध्यान उसे इस तापका;
अगर-कुंकुमकी, घनसारकी,
अब न गंध वसा-पलकी उसे ।

" न रसना अब है रस-लेहिनी,
श्रवण-शक्ति हुई सब नष्ट है,
नयनसे वह ज्योति चली गई,
अहह ! भस्म हुई नर-देह है।

" सुहृद, बन्धु तथा वनिता, सुता,
तनय आदिक रोदन-लीन हैं;
नर बँधे-कर जो जगमें हुआ
वह खुले-कर आज चला गया।

" अनल पाकर दीप्त हुई चिता
धधकने हुतवाह-ध्वजा लगी
सनसनाकर दग्ध हुई चिता,
जल गई मृत-देह तुरन्त ही।

" जल गई सँग-वर्तिनि वर्तिका
अब समाप्त हुआ सब स्नेह भी,
मलिन ज्योति हुई गत-सार-सी
बुझ गया नर-जीवन-दीप है।

" रह गया लघु अस्थि-समूह है,
मनुजके तनका अवशेष जो,
सकल-जीवन-भुक्त जलान्नकी
परम स्वल्प बनी यह भस्म है।

" सब मनुष्य किसी दिन रुग्ण हो,
जरठ हो, मृत हो, जल जायँगे,
सकल जीवनके श्रम-तापका
निलय-कारक अन्त दुरन्त है।

"बच रहीं कुछ हैं सित अस्थियाँ,
न नरसे वह भी अब दृश्य हैं,
पतित जीवनके तलमें हुईं
फिर रसा-सरसा बन जायँगीं।

"कुछ दिनों पहले यह वृद्ध भी
युवक था, सुख-सिन्धु-निमग्न था,
प्रबल वायु चला इस बीचमें
उखड़ पादप भूपर आ गिरा।

"गिर पड़ा तरु-सा यह जीव, या
सलिलमें पड़ डूब मरा कहीं,
डस गया इसको अथवा फणी
बन गई क्षत जीवनकी तरी।

"कि हत आयुधसे अरिने किया,
कि तनमें अति शीत समा गया,
फट पड़ी अथवा छत दीनपै;
निधन केवल एक निमित्त है।

"धनिक, निर्धन, ब्राह्मण, शूद्र, या
नृपति, भिक्षु, सुखी अथवा दुखी,
मर गये, मरते, मर जायँगे,
मरण तो सबका अनिवार्य है।

"निगम-आगम हैं कहते, प्रभो,
ग्रहण हैं करते फिर जन्म वे,
पर न ज्ञात हुआ यह आज लौं,
किस प्रकार, कहाँ, किस कालमें?

"क्षणिक जीवन है इस लोकमें,
लघु जिसे करते प्रति याम हैं;
दिवस है युगके सम, आयुको
अपृथु हैं करते मम वाक्य भी।

"क्षणिक जीवन है, यह श्वास-सा
निकलता, हिचकी बस एक है—
अचिर-फुल्ल-प्रसून-सुगंधि जो
दिवसके सँग ही छिप जायगी।

"गगन धाम बना यह धूमका,
रस-विहीन-धरागत बिम्ब है,
वह तरंगिणि, नीरव हो गई
लख असीम समुद्र-तरंग जो।

"यह न जीवनकी सुखदा कथा,
प्रभु विलोक रहे जिस दृश्यको,
मनुज-आदिम-क्लेश-कराहकी
वसति है, बस, अंतिम आहमें।"

मन्दाक्रान्ता

ऐसी बातें श्रवण करके दुःखमें नाथ डूबे,
चिन्ता व्यापी हृदय-तलमें मीन माँजा-ग्रसी ज्यों,
आँखें भूसे गगन-छदि लौं, व्योमसे मेदिनी लौं,
दौड़ाईं तो सकल जगका भेद देखा क्षणोंमें।

नाना-चिन्ता-मथित जग क्या, आधि क्या, व्याधि क्या है?
क्या है शोकाकुल जन, जरा, रोग क्या, मृत्यु क्या है?
सारी बातें अवगत हुईं स्वस्थ हो देखते ही,
संकल्पोंसे हृदय धड़का, नेत्रमें ज्योति आई।

सारी भूकी परम गतिकी वृद्धिकी प्रेरणाने,
जीवोंके भी प्रति उस महा प्रेमकी साधनाने,
प्राणी-बाधा-जनित करुणा-पूर्ण गंभीरताने
चिन्तासे था सरस स्वरको कंठसे यों निकाला—

"कैसे कैसे सकल जगके घोर सन्ताप नाना,
सारे प्राणी सुलभ करते क्लेशकी पात्रता हैं,
बाधाओंसे व्यथित बनते, वृद्ध होते दुखी हैं,
आती मृत्यु स्थगित करती देहकी प्रक्रिया भी।

"देखा मैंने सब जगतमें व्याधिका राज्य फैला,
प्रासादोंमें सुख न मिलता, सार-शून्या धरा है,
तो भी कैसी अहमितिकरी वृत्तियाँ हैं नरोंकी,
काँटे भूमें, उपल पथमें, हाय! फैले हुए हैं।

"प्राचीमें हो उदित रवि भी साँझको अस्त होता,
पाता है जो सुख, दुख वही अन्तमें झेलता है,
संयोगी भी, अहह! सहता विप्रयुक्ता दशा है,
देखो, कैसा क्रम चल रहा जन्मका मृत्युका भी।

"देही जाता वपुष तजके चन्द्रके लोकको है,
पीछे आके विधु-किरणसे धान्यको प्राप्त होता,
यों ही प्राणी पुनरपि वही जन्म लेता धरामें,
देखो, कैसा क्रम चल रहा विश्वके चक्रका है।

"संभोगोंने निखिल जगमें दुंदुभी-सी बजा दी,
दौड़ें सारे युवक-युवती शब्दमें व्यस्त होते,
जैसे वीणा-स्वर हरिणको वागुरामें फँसाता,
वैसे ही, हा! नर फँस रहे कालके जालमें हैं।

"देखी मैंने परम प्रबला घोर माया दुरत्या
प्रासादोंमें रमण करती राज-सिंहासनोंपै,
बालाके भी मुख-विवरमें कूकती कोकिला-सी,
रक्ता हो जो नयन-सुखदा राजती है सुरामें।

"देखो, प्राणी सब पड़ रहे कालके गालमें हैं,
मैं भी वामा-दृढ़-निगडमें बद्ध पाता स्वयंको,
मेरी भी तो गति बह रही एक ऐसी नदी-सी,
जो लिप्ता हो रवि-किरणसे शान्तिसे जा रही हो।

"प्राणोंकी है सरित बहती निम्नगा नामवाली,
जो जाती है तरल गतिसे कूलको भेंटती-सी,
ज्यों ज्यों जाता अमल जल है म्लान होता महा है,
खो जाता है लवण-निधिमें, शून्य होती नदी है।

"सौभाग्योंकी अचल महिमा, मित्र, देखी निराली,
प्राणी पाता परम सुख जो दुःखका मूल होता,
तो भी, देखो, मनुज कलिकी कामनामें लगा है,
माया क्या ही अकथ गति है और चेतोहरा है।

"कैसे कैसे कलुष जगमें भोगते हैं शरीरी,
रोते-गात सकल जगके देवता भी मनाते,
रक्षा क्या वे विरच सकते चाहते जो स्वयं ही,
सारे प्राणी विमुख बनते धर्मके मार्गसे हैं।

"आया हूँ मैं विपति हरने, विश्वकी ताप खोने,
देखूँ कैसे विफल बनती प्रार्थना प्रार्थियोंकी,
शर्वाणी जो जगत-सुखदा, मंगलामोदिनी है,
कल्याणी है, अमर-जननी है, न कैसे सुनेगी?"

द्रुतविलम्बित

अभिनिवेदन राजकुमारका
नृपतिने जब छन्दकसे सुना,
बढ़ चली सुतकी हित-चिन्तना
वह विपश्चित चिन्तित हो उठे ।

द्रुत निदेश दिया कि कुमारके
भवनके सब फाटक बन्द हों,
बस, उसी क्षणसे सबका वहाँ
गमन भीतर-बाहरका रुका ।

बन गया वह रंग-निकेत भी
दुखद बन्दि-निकेतन-तुल्य ही;
अयसकी दृढ़ कील-समूह-से
प्रकट खंभ हुए उस गेहके ।

विबुध थे स्थित जो दश द्वारपै
वह समस्त अजस्र प्रबुद्ध थे,
मुदित होकर स्वस्थ निशीथमें
सुगत सुप्त, न किन्तु अ-बुद्ध थे ।

यदि विरंचि समस्त मनुष्यमें
सजगता रचता इस भाँतिकी,
तब अवश्य पुरातन पाप भी
अमृत पुण्यशरीर सँवारते ।

भवन तो यह बन्दि-निवास है,
सुमुखियाँ सब भोग-प्रयोग हैं,
नृप-निदेश खड़ा प्रतिहारपै,
परम निष्क्रिय जीवन हो गया ।

पर न निष्क्रियता यह है उसे
जगतके हितकी धुन हो जिसे;
जलधि-शान्ति प्रकंपन-पूर्वकी,
उमस है अथवा बरसातकी।

सुमन क्यों न चुनो, यदि चाहते,
समय बीत रहा दिन-रात है,
कुसुम पूर्ण-प्रफुल्लित आजका
कल नहीं मिलता निज वृन्तपै।

समय एक अगाध समुद्र है,
अयुत वत्सर तुंग तरंग हैं,
मनुज-रोदन-अश्रु-समूहके
लवणसे लवणाकर हो गया।

समय एक अपार पयोधि है,
युग जहाँ व्यसनोदय-तुल्य हैं
अति अविश्वसनीय प्रशान्तिमें,
परम भीषण उग्र अशान्तिमें।

उपरि संस्थित हो उस कालके
सुगत-भाग्य-किरीट विराजता,
पतनकी उसके न कथा यहाँ
न सुर-पाल हिला सकता जिसे।

मनुजको निज भाग्य-प्रवाहमें
सरल है बहना अति मोदसे;
पर प्रवाह-विरुद्ध भवाब्धिमें
विचरना अनुमान-अशक्य है।

मन्दाक्रान्ता

तो भी कोई सुगत बनते उत्स आलोकके हैं,
स्वेच्छाचारी विचर जगमें ध्वान्त सर्वत्र खोते,
तारा, तारा-अधिप, सविता, एककालीन ही हैं,
तेजस्वी तो सकल युगमें एक-से भासते हैं।

१२—महाभिनिष्क्रमण

वसन्ततिलका

धीरे चलो, चुप रहो, यह यामिनी है,
सोते यहीं निकट राजकुमार भी हैं,
ऐसा न हो कि जग जायँ उठें कहीं वे,
चिन्ता करें, चल पड़ें, तज गेह भी दें।

क्या ही प्रसन्न-वदना मधु-यामिनीमें
है पूर्णिमा परम निर्मल ज्योतिवाली,
अत्युज्ज्वला-तुहिन-दीधिति-अंक-शोभी
है गंधवाह बहता हृदयापहारी।

है चारु हास-सहिता छवि चन्द्रमाकी
फैली हुई वसुमती-तलपै मनोज्ञा,
जो आम्रके सघन पल्लवमध्य जाके
है खेलती प्रणय-संयुत मंजरीसे।

फूला अशोक-तरु है अति मोददायी,
गुंजार-युक्त भरते अलि भाँवरें हैं,
देखो, तरुस्थ खग-संहतिको जगाते
भूपै मधूक गिरते परिपक्व होके।

नीलाभ व्योम अब निर्मल हो गया है
हैं रौप्य-धौत अति मंजु दिगंगनाएँ,
क्या ही अनादि नभ और अनन्त भूपै
फैली हुई सुभग सुन्दर चंद्रिका है।

शाखा-समूह हिम-दीधिति-धौत-सा है,
हैं पत्र-पुष्प सब शोभित कौमुदीमें,
लोनी लता ललित-पेशल वल्लरीकी,
आराममें अकथनीय प्रभा लसी है।

उत्कंठिता सरस रागवती मनोज्ञा
बैठी हुई सलिलके तटपै चकोरी
है मंत्र-मुग्ध मनसे लखती शशीको
प्रत्येक बार निज पक्ष फुला रही है।

क्या स्वच्छ नीर-मय निर्झर हो रहे हैं,
जो शब्द मन्द करते सित यामिनीमें।
मानों सभी निरत विश्रुत गानमें हैं,
गाते हुए विरुद चैत्र-विभावरीका।

अत्युज्ज्वला रजनिकी कमनीयतामें
है व्योमकी सुभग मेचकता अनूठी,
कैसी समृद्धि अवदात निसर्गकी है
मानो सतोगुणमयी धरणी हुई है।

आभा असीम सरिके सित कूलकी है
धारा लसी रजत-पत्र-समा मनोज्ञा,
कैसी विशिष्ट छवि नीर-तरंगकी है
गंभीर धीर बहती सरि रोहिणी है।

चन्द्रोज्ज्वला सुभग सुन्दर कान्तिवाली
कैसी प्रशस्त छवि-संयुत दिग्वधू हैं;
शोभामयी वसुमती कर यामिनीमें
जोत्स्ना लसी अमित सुन्दर शोभनीया।

छाई हुई अवनिपै मृदुतामयी जो,
नाना-प्रसून-मकरन्द-सुवासिता जो,
नक्षत्रकी अवलिसे सुभगा बनी जो,
सो कौमुदी कलित रंग-निकेतमें है।

होता हुआ अचलकी तुहिनस्थलीसे
छूता हुआ सरित-साँरग आ रहा जो
जाती-मृगांक-कलिका-मकरन्द-वाही
आराम-मध्य मृग-वाहन श्वास लेता।

जो धामके शिखरपै पहले चढ़ा था
सो चन्द्रबिम्ब छिटका अब मेदिनीपै,
निस्तब्ध है रजनि, नीरव रोदसी है,
विश्राम-धाम शिशु-सा यह सो रहा है।

नक्षत्रकी अवलि स्वर्ण-ललाम धारे
सुप्ता यथा रजनि एण-दृशी लसी हो,
प्रत्येक बार मिष तोरण-वाद्यके जो
स्वप्नस्थ है इसलिए बक-सी रही है।

जो द्वार-पाल-ध्वनि विश्रुत हो रही है,
मुद्रामयी अथच अंकन-युक्त सो है,
होती समीर-सनकार गभीरतासे
निद्रा-निमग्न सब संसृति हो रही है ।

विश्राम-धामपर मंजु मयूख-माला
होती निविष्ट गृह-मध्य गवाक्ष-द्वारा,
सोती हुई विधु-मुखी रमणीजनोंकी
आदर्श-से अधरपै झुक झूमती है ।

श्रीरंग-गेह-परिचालन-शील बाला
हैं सो रहीं सकल भूपर उर्वशी-सी,
आसक्त नेत्र पड़ते जिस कामिनीपै
रंभा-समान दिखला पड़ती वही है ।

प्रत्येक सुप्त रमणी अति ही मनोज्ञा
निद्रा-निमीलित-दृशी अब ईदृशी है,
मानों विलोक रजनी दृढ़-बद्ध होके
ले अंकमें कमलिनी अलि सो गई है ।

कैसी प्रसुप्त छवि रूप-प्रदर्शिनी है,
आँखें जहाँ निरखतीं रुकतीं वहीं हैं,
जैसे समूह पटु-गारुड-नीलकोंके
आकृष्ट नेत्र करते द्रुत दर्शकोंके ।

सोतीं पड़ीं अवनिपै परिचारिकाएँ,
है गात्रकी न जिनको सुधि वस्त्रकी भी,
आधे-खुले सुभग मंजु उरोज ऐसे
जैसे 'अनूप' कविकी कविता लसी हो ।

कोई कला-कलित केश-कलाप बाँधे,
हैं पुष्प-दाम जिनमें बहु रंगवाले,
वेणी अनंग-धनु-शिञ्जिनि-सी किसीकी,
है लंक-मध्य लिपटी पवनाशिनी-सी ।

कोयष्टिका दिवसमें मृदुगीत गाके
सोती यथा रजनिमें श्रम-संयुता हो,
वैसे प्रभूत रम गायन-वाद्यमें वे
सीमंतिनी सकल भूपर सो रही हैं ।

कैसे सुगंधमय मंजु प्रकाशवाले
सोते प्रदीप गृहके प्रति-कोणमें हैं,
आलोक-युक्त कर रंग-निकेतको वे
प्रत्येक भित्तिपर बिम्बित हो रहे हैं ।

संयुक्त चन्द्र-करसे वह दीप-आभा
कैसे सुदृश्य अति शुभ्र दिखा रही है,
झोंका उसे पवनका लगता कहीं तो
होता प्रकाश बहु रंग-विरंगका है ।

ऐसे प्रकाशमय मंदिरमें अचेता
सुप्ता सभी छविवती युवती पड़ी हैं,
शोभा-पयोधि-गत-विभ्रम-मीन-सी वे
आभा-तडाग-हृदयस्थलपै लसी हैं ।

हैं वस्त्र गात्र परसे सरके किसीके
ऐसी असंज्ञ वह गाढ़ सुषुप्तिमें है,
ज्योत्स्नामयी अनुपमा सुषमा विलोको,
मानों उसे लिपटके छवि सो रही हो ।

देखो, सरोज-कर एक उरोजपै है,
है दूसरा सुमुखिके मुखको छिपाए,
मानों स-नाल सरसीरुह शम्भुपै या
राकेशपै स-बिस कैरवकी कली है।

है पुंडरीक-सम आनन चारुशोभी,
आभा कपोलपर कोकनदोपमा है,
इन्दीवराम्बक समावृत हैं निशामें,
हैं योषिता सकल मंजु मृणालिनी-सी।

है एक जो सुमुखि श्यामल आस्यवाली,
अत्यंत गौरतम तो मुख दूसरीका,
सिन्दूर-लिप्त मृदु आनन अन्यका है,
देखो, त्रिरंग विधु-बिम्ब-मयी त्रिवेणी।

भ्रू देख देख मनमें यह भ्रान्ति होती
कोदंड दो कुसुमशायकके पड़े हैं,
हैं पक्ष्म जो विनत बन्द विलोचनोंमें
वे पंच-बाण-शर-से उतरे हुए हैं।

बिम्बोष्ठ हैं सुघर, जो कुछ ही खुले हैं,
है मध्यगा धवलिमा द्विज-राजिकी भी,
श्री-युक्त ओस-कण सुन्दर मोतियों-से
मानों प्रफुल्ल सरसीरुहमें पड़े हैं।

क्या ही प्रकोष्ठपर कंकण सोहते हैं,
हैं गुल्फमें विशद बंधन नूपुरोंके,
ज्यों ही सचेष्ट हिलते अँग कामिनीके
निर्घोष पंचशर-दुंदुभिका सुनाता।

सोत्क्रोश पार्श्व-परिवर्तनसे सखीके
    है तारतम्य मिटता सुख-स्वप्नका जो,
तो शीघ्र ही अधर-आकृति भंग होती,
    है आस्यकी विकृति भी मृदु सुन्दरीकी !

देखो, पड़ी धरणिपै सुमुखी प्रसुप्ता,
    उत्संगमें परम सुन्दर वल्लकी है,
संदेश मूक श्रुतिमें यह तार देते,
    ‘ तू स्वस्थ और उलझे हम यों पड़े हैं । ’

मानों सखी परम रागवती मनोज्ञा
    वीणा बजाकर बनी रस-मत्त ऐसी,
है देहकी न सुधि, ज्ञात नहीं अवस्था,
    आनन्द-मग्न दृढ़-मीलित-लोचना है ।

सोई समीप अपरा सुमुखी सलोनी,
    ले अंकमें हरिण-शावक सुप्त ऐसा,
जो अर्ध-खादित पलाश विहाय भूपै
    रोमन्थ भूलकर संप्रति सो गया है ।

माला रहीं विरचतीं युग नारियाँ जो
    वे सो गईं शिथिल होकर यामिनीमें,
देखो कि सूत्र मणि-बंधनमें फँसा है
    लेटे हुए कुसुम कामिनि-क्रोड़में हैं ।

आरामको स-मुद आकर भेंटती जो,
    है रोहिणी रमणशीलवती नदी जो,
लोरी-समान कल शब्द सुना-सुनाके
    है पुष्प-काल-लघु-बालकको सुलाती ।

श्वेताभ कूलपर संस्थित पत्थरोंपै
देती निसर्ग-शिशुको थपकी नदी है,
ऐसे सुमन्द रवको सुनतीं-सुनातीं
सीमंतिनी सकल भूपर सो रही हैं।

डूबी सुषुप्ति-सरसी-रसमें, निशामें,
हैं कामिनी-कमलिनी अति ही मनोज्ञा,
मूँदे हुए सुभग अंबुज-अंबकोंको
आदित्यके उदयका क्षण देखती हैं।

पर्य्यंक-वाम-महिपै यह गौतमी है
गंगा, लखो, शयन-दक्षिणमें पड़ी है,
दोनों सखी परम रूपवती गुणाढ्या
हैं सेविका-वलयकी मणियाँ मनोज्ञा।

हैं गन्धसार-मय गेह-कपाट सारे,
स्वर्णाभ मेचक हरे परदे पड़े हैं,
सोपान-मार्ग चढ़ सम्मुख दृष्टि डालो,
सिद्धार्थ-रंग-गृह है यह मोददायी।

कौशेयके परम पूत बिछे बिछौने
जो कंज-पत्र-सम सौख्यद अंगको हैं,
हैं दाम भित्तिपर सिंहल-मौक्तिकोंके,
यों अन्तरंग गृहका हँसता खड़ा है।

नेत्राभिराम छत मर्मरकी बनी है,
उत्कीर्ण चित्र जिसमें ब्रज-रत्नके हैं,
कैसे गवाक्ष अति शोभित चंद्रिकासे
भृंगप्रिया-मुकुल-सौरभ-गेह-से हैं।

राकेशकी किरण और समीर, दोनों
संयुक्त प्राप्त करते सुख गंधका हैं,
शोभायमान नग रंग-विरंग-वाले
पर्य्यंकमें कुसुम-आकृतिके जड़े हैं।

ऐसे महान सुषमामय मोददायी
विश्रामके भवनमध्य शयान दोनों,
सिद्धार्थ हैं निकट सुप्त यशोधरा है,
निद्राभिभूत यह दम्पति हो रहे हैं।

वंशस्थ

प्रगाढ़-निद्रा-विवशा यशोधरा
पड़ी हुई थी शयनांकमें यदा,
हुए उसे प्रस्तुत तीन स्वप्न जो
भविष्यका आगम ही बता चले।

हुई विपन्ना सहसा सुषुप्तिमें,
उसी घड़ी चौंक पड़ी अशान्त हो,
उरोजसे अंचल लंकपै गिरा
नितान्त-पर्य्याकुल-केशिनी बनी।

सुदीर्घ-उच्छ्वास-चरिष्णु वक्षपै
प्रवाल-माला हिलने लगी तदा,
प्रफुल्ल कंजारुण नेत्र भी तभी
विमृष्ट हस्ताम्बुजसे किये गये।

मृगांगजा-लोचन-विभ्रम-प्रदा
सभीत आँखें जल-बिन्दु-पूरिता,
विषाद-रत्नाकर-शुक्ति-सी तदा
बड़े बड़े मौक्तिक डालने लगीं।

अजिह्म-ग्रीवा, स्थिर-चक्षु-सी बनी
हृदोपविष्टा, समुदंचिताम्बका,
अभीक्ष्ण ही प्रेम-प्रदत्त-मानसी
चकोरिनी चन्द्र विलोकने लगी।

यशोधरा हो अति शोक-संकुला
समीपमें शीघ्र कुमारके गई,
कपोलका चुम्बन तीन बार ले,
कहा, "अहो! नाथ, उठो, दया करो।

"स्वकीय गर्भस्थ तनूज-ध्यानमें
प्रगाढ़-निद्रावश हो गई यदा
हुए मुझे भीषण तीन स्वप्न, तो
हुआ स-रोमांच शरीर, मैं उठी।"

"अहो अहो! अम्बुज-लोचने प्रिये,
कठोर-गर्भे, अनुराग-रंजिते,
हुआ तुम्हें क्या दुख, स्वप्न क्या हुआ?
कहो, कहो, शीघ्र, अधीर मैं हुआ।"

"प्रभो, विलोका पहले सभीत जो
विशाल था सो वृष दीर्घ देहका,
महाबली, उन्नत-भाल, विक्रमी,
डकारता था वह घूम-घूमके।

"प्रदीप्त थी रत्न-प्रभा ललाटपे,
यथा उगा ऋक्ष हिमाद्रि-शृंगपै,
समस्त पाताल-मही-प्रकाशिनी
अहीशकी थी मणि गौर भोगपै।

" पुनः पुनः हुंकरता डकारता
महोक्ष भागा पुर-सिंह-द्वारको,
हुए सभीके फल-हीन यत्न भी
रुका बलीवर्द नहीं खड़ा हुआ ।

" सुरेन्द्र-वाणी तब अंतरिक्षसे
हुई महाघोर तडित्प्रहार-सी,
' न जो रुकेगा यह उक्ष ग्राममें
सुदूर होगी सब पौर-संपदा । '

" विलोकके अप्रतिबाध्य बैलको
तुरन्त मैंने भुज-पाशमें कसा,
परन्तु सो स्कंध हिला निनादसे
स-गर्व उच्छृंखल हो चला गया ।

" द्वितीय जो स्वप्न हुआ, प्रभो, सुनो,
लखा कि थे चार मनुष्य जा रहे,
विलोचनोंसे जिनके प्रदीप्तिके
स्फुलिंग थे निःसृत हो रहे, अहो !

" तदा सभी निर्जर देव-लोकसे
सुमेरुसे भूपर आ गये वहीं,
जहाँ पुरी-द्वार-समीप ही गिरी
फटी-पुरानी अमरेशकी ध्वजा ।

" अनभ्र ही व्योम स-घोष हो उठा,
हिली धरित्री, सभया दिशा हुई,
बनी स-कंपा द्रुत रोदसी तदा,
यथैव कल्पान्त समीप आ गया ।

"उसी घड़ी एक ध्वजा उठी, प्रभो,
चतुर्दिशा वेष्टित दिव्य ज्योतिसे,
समस्त भू-मंडलको प्रकाशती
ज्वलन्त माणिक्य-समूह-संयुता ।

"मरीचि-माला-मयि वैजयन्तिका
प्रकाशती थीं हृदयान्धकार भी,
स-मोद प्राणी इस भाँतिसे हुए,
मिली उन्हें इच्छित दिव्य ज्योति ज्यों ।

"चला तदा मंद समीर पूर्वसे,
झड़ी प्रसूनावलि केतु-वाससे,
प्रकाशिता चंचल चेलपै हुई
पुनीत दैवी लिपि स्वच्छ-वर्णिनी ।

"तृतीय जो स्वप्न हुआ, कृपानिधे,
लगा मुझे दुःखद सो अतीव है,
अहो ! हुई अम्बर-चारिणी गिरा,
'समीप ही है अब काल आ गया ।'

"विलोकने दक्षिण-पार्श्वमें लगी,
लगा हुआ शून्य पलंग आपका,
पड़े हुए केवल वस्त्र थे वहाँ
वही, प्रभो, थे अवशेष आपके ।

"पड़ा हुआ था कटि-बन्ध आपका
लगा मुझे दंशन-शील सर्प-सा,
मदीय केयूर अदृष्ट हो गये
लगा मुझे कंकण भार-रूप ही ।

" प्रसून-माला मम म्लान हो चली
समस्त सौभाग्य अशक्त हो गया;
गवाक्षमें केतु-वितान था वही,
स-शब्द था उक्ष वही दिगन्तमें ।

" हुई वही व्योम-प्रकंपिनी गिरा,
' समीपमें ही वह काल आ गया '
कँपा कलेजा द्रुत जाग मैं पड़ी
हुई महा व्याकुलता मुझे, प्रभो !

" प्रतीत होता फल तीन स्वप्नका
न क्षेम है, मंगल है न शान्ति है,
उदर्क होगा मरना मदीय, या
विपाक होगा भवदीय त्यागना ।"

द्रुतविलम्बित

चरम भूधरसे दिवसान्तमें,
निरखता धरणीतल भानु ज्यों,
उस प्रकार महा अनुरागसे
सुमुखिको क्षण लौं लख यों कहा—

" प्रियतमे, दयिते, न डरो, सुनो,
परम धैर्य धरो, विचरो मुदा,
अति पुनीत परस्पर प्रेमका
सुदृढ़ बंधन है कटता नहीं ।

" विषम आगम हो यदि स्वप्नका,
अमर भी यदि चंचल हो उठें,
यदि मिटे जग-मुक्ति-विभावना,
तदपि भिन्न न हो सकते कभी ।

" यह चिरंतन प्रीति, यशोधरे,
अति अभेद्य, अछेद्य, अकाट्य है—
यदि सँयोग, वियोग अवर्ज्य है,
यदि वियोग, सँयोग अवश्य है।

" विदित है तुमको, किस भाँति मैं
रजनि-वासर हूँ यह सोचता,
' किस प्रकार निरामय विश्व हो,
मनुज-जीवन सौख्य-समेत हो।'

" समयसे चलती किसकी, प्रिये,
नियति भी सब भाँति अलंघ्य है,
दुख पड़े हमपे तुमपे कहीं,
उभय संयमसे सह लें उसे।

" अपरके दुखसे दुख है मुझे,
अति असह्य, प्रिये, अघ विश्वके;
किस प्रकार लगा गृहमें रहे
मन सदा सब भाँति चरिष्णु है।

" सकल जीव मुझे प्रिय विश्वके,
अधिक हैं उनसे कुल-जातिके,
इन सभी जनमें सब भाँतिसे
प्रियतमा, तुम हो मुझको, प्रिये।

" हृदय-खंड मदीय, यशोधरे,
निहित है वह जो तव गर्भमें,
जनकसे, तुमसे, सब विश्वसे
अधिक आनँद-दायक है मुझे।

" सब दिशा-विदिशा, सब व्योममें
भटकते मम चित्त-कपोतका
सतत निश्चल ध्यान लगा हुआ
तनुज-नीड महा सुख-धाममें।

" तुम अतीव सुशील स्वभावकी,
मति उदार सदा प्रिय-कारिणी,
दुख पड़े धरना निज ध्यानमें
वह ध्वजा, वृष, अंबरकी गिरा।

" पर कदापि न, सुन्दरि, भूलना,
सुमुखि, निश्चय ही यह जानना,
जगतमें सबसे, सब भाँतिसे
अधिक हो मुझको प्रिय सर्वदा।

" यदि पड़े दुख तो अति धीर हो
समझना अपने मनमें, प्रिये,
इस त्वदीय-मदीय वियोगसे
जग कदाचित आँनद पा सके।

" प्रणयके प्रतिकार-स्वरूप ही,
फल-स्वरूप पुरातन प्रेमके,
रस-स्वरूप महासुख-भोगके,
बँध रहे हम हैं भुज-पाशमें।

" वचन-पान करो सुखसे, प्रिये,
द्रुत लहो मुख-चुम्बन भी अभी,
प्रणयमें गति निर्बल स्वार्थकी
तुम बनो अतएव प्रहर्षिता।

" अब करो दुख-त्याग, वरानने,
शयन स्वस्थ करो, दृग-मूँद लो,
फिर न हो कटु स्वप्न इसीलिए
सजग हूँ स्थित मैं, तुम सो रहो। "

शिखरिणी

तदा गोपा सोई, सिसक कर दुःस्वप्न-दुखसे
पुनः सोते सोते 'समय अब आया,' सुन पड़ा,
प्रियाके सोते ही विगत कर चिन्ता हृदयकी
लखे फूले तारे रजनिकर-संयुक्त नभमें।

निहारे तारे जो चमककर मानों कह रहे,
' तमिस्रा है आई जब सुख करो, या दुख हरो।
बनो चाहे राजा सुख-विभवसे युक्त अथवा
तपस्याके द्वारा सकल जगका मंगल करो।'

कहा, " हे हे तारो, समय वह आया निकट ही
करूँगा मैं रक्षा भव-रुज-निमग्ना धरणिकी।
नहीं हूँगा राजा मुकुट सजके वंश-गत जो,
यहाँ आया हूँ मैं सकल जगका ताप हरने।

" न इच्छा देशोंको विजित कर होऊँ नृपति मैं,
बहेगी धारा-सी मम असि न संग्राम-महिमें,
न होंगे लोहूसे हय-गज कभी रक्त रणमें,
कलंकीभूता यों अब न मुझको ख्याति करना।

" गुफा होगी मेरी वसति, सुख-शय्या धरणिकी,
त्वचा वृक्षोंकी भी परम सुखकारी वसन-सी,
सदा संगी-साथी विपिनचर होंगे सुहृद-से,
फिरूँगा योगी हो सुखद जगके भोग तजके।

" तरंगें भावोंकी हृदय-तलमें आज उठतीं,
करूँगा रक्षा मैं भव-भय-विपन्ना धरणिकी,
प्रयत्नोंके द्वारा परम गति है साध्य सबको,
तितिक्षाकी सत्ता, समय अब है, स्थापित करूँ।

" अहो ! प्राणी कैसे अवनितलपै क्लेश सहते,
दुखी हो, रोगी हो, मृत बन पुनः जन्म धरते,
सदा भोगोंमें वे रत रह अघी हाय ! बनते,
यही क्या लोगोंका अथ, इति यही क्या जगतकी ?

" धरा छोडूँगा मैं अतल खनि है जो अनयकी,
अभी मैं त्यागूँगा धन-विभव जो हेतु दुखका,
तजूँगा नारी जो विषय-तरुकी मूल दृढ़ है,
अभी मैं जाऊँगा जगत-हितके हेतु गृहसे।

" बनें साक्षी सारे तपन-विधु-नक्षत्र-धरणी,
प्रिये, मैं त्यागूँगा पुर, जन, प्रिया, गेह-सुख भी,
अभी छोडूँगा मैं सुदृढ़तर वामा-भुज-लता
नहीं छोड़ा जाना स-हरि हरको शक्य जिसका ।

" तजूँगा मैं सोते अति सुखद गर्भस्थ शिशुको,
हमारे स्नेहोंका प्रथम फल जो श्रेष्ठतम है,
अहा ! कैसा सो भी स्फुरित बनता है उदरमें;
बिदा देना चाहे यह कि मुझको रोक रखना ।

" पिताके-माताके युग हृदयको युक्त करके
हुआ है वंश-श्री-तिलक सुत गर्भस्थ यह जो,
करेगा गोपाके मलिन जब अंगांग रजसे
उसे गम्या होगी प्रणय-गत जो है विमलता ।

"अहो ! मेरी वामा, सुत, जनक, वासी नगरके,
सहो जैसे-तैसे कुछ दिवस लौं जो दुख पड़े।
तुम्हारे दुःखोंसे यदि सुखमयी ज्योति प्रकटे,
सभी प्राणी पावें सुपथ उस निर्वाण-गृहका।

"अतः जाता हूँ मैं, समय ढिग, संकल्प दृढ़ है,
न लौटूँगा प्यारी, जब तक न होगी सफलता,
धराशायी होगा जब तक न सो केतु अघका,
ध्वजा ऊँची होगी जब तक न सो, जो लख पड़ी।

"तमिस्रे, हे निद्रे, कमल-दल यों बन्द कर दो
कि गोपाके दोनों नयन-पुट भी आवृत रहें;
अहो ! जोत्स्ने, वामा-अधर अब संपुट कर दो
सुनाई दें 'हाहा—' वचन उसके जो न मुझको।

"अहो ! सोते सोते वचन सुन ले, हे सहचरी,
सदा तू देती थी परम सुख, है दुःख तजना,
न छोड़ूँ तो भी तो अति दुखद है अन्त सबका
जरा है, बाधा है, मरण-गति है, जन्म फिर है।

"प्रिये, निद्राका-सा अगमतर लेखा मरणका,
धराशायी होना, अचल बनना, जाड्य गहना,
हुई म्लाना माला तब फिर कहाँ गंध उसमें ?
दशा तैलाभ्यंगा जब न रहती, दीप बुझता।

"यथा शाखाओंमें अति लहलहे पत्र लगते,
धराशायी होते, पतझड़ उन्हें शुष्क करता,
कुठाराघातोंसे विटप कटते, दारु बनते,
न ऐसे खोऊँगा परम प्रिय है जीवन मुझे।

" बिदा लेता हूँ मैं, कमलनयने, इन्दु-वदने,
क्षमा देना प्यारी, यदि दुख लगे धैर्य धरना,
तुम्हें सौंपा मैंने हृदय-धन गर्भस्थ शिशुको,
प्रिये, जाता हूँ मैं प्रतिनिधि यहीं छोड़ अपना ।

" प्रिये, शय्यापै मैं अब न पद दूँगा पलटके
फिरूँगा, छानूँगा सकल जगकी रेणु-रज मैं, "
कहा ज्यों ही ऐसा धक-धक हुआ वक्ष उनका
चलीं दोनों आँखें बह, चरण भी कंपित हुए ।

वंशस्थ

दिगंत काँपे, हिल वायु भी उठा,
खगोल डोला, दहली वसुन्धरा,
उठा जभी पाँव शकाधिनाथका
प्रगाढ़ निद्रा सबमें समा गई ।

त्रिवार आगे पद दे चले तदा,
त्रिवार ही लौट पड़े स-खेद वे,
यथैव शैलूषक कूदने चले
करे कई बार पदक्रमा तभी ।

स-गर्भ गोपा अति ही मनोहरा
स-जीव माया सम चित्त-मोहिनी,
स्वतंत्र सत्ता जिनकी प्रकाशती
शकेश ही ब्रह्म-स्वरूप थे वहाँ ।

परन्तु लीला उस पारब्रह्मकी
प्रणम्य है, पै अधिगम्य है नहीं,
सभी जनोंके दृग खोलने सुधी
स्व-लोचनोंपै पट डालके चले ।

कलत्र सुप्ता, सखियाँ असंज्ञ थीं,
प्रसिद्ध वे भी अविकत्थनाख्य हैं,
परन्तु तो भी खुल भेद यों गया
कपाट जैसे रँग-गेहके खुले।

खुले हुए गेह-कपाट थे पड़े,
प्रगाढ़-निद्रा-वश द्वार-पाल थे,
चले युवा कृष्ण स्वतः स्वतंत्र हो
यथा अ-बंदी वसुदेवके बिना।

अधीर हो शीतल श्वास ले बहा
समीर लोटा चरणारविन्दपै,
प्रसूनने स्वागत चित्त खोलके
किया उपेक्षा करके प्रभातकी।

हिमाद्रिसे सागर लौं चतुर्दिशा
उठी नवाशा तडिता-तरंग-सी,
महान संगीत गभीर व्योममें
तदा हुआ विश्रुत जागरूकको।

मनोहरा ज्योति जगी दिगन्तमें,
विमानपै थे समवेत देवता,
विमुग्ध दिग्पालक-वृन्द भी सभी
खड़े हुए निश्चल बद्ध-हस्त थे।

यशोधरा गर्भ-युता विदेहजा,
कुमार साकेत-नरेश राम हैं,
स-दुःख सीता-वनवास था वहाँ,
स-हर्ष सिद्धार्थ-प्रवास है यहाँ।

कढ़े जभी बाहर रंग-गेहके
बढ़े सभी ओर निकेत देखते,
चमूरु जैसे कढ़ जाल-रन्ध्रसे
चतुर्दिशा देख पलायमान हो।

अधीर थे विश्व-विपत्ति-भारसे,
स-नीर थे लोचन देख आपदा,
खड़े खड़े रंग-निकेत-द्वारपै
लगे सुधी छन्दकको पुकारने।

समीप ही था वह सुप्त सारथी,
लखा, निहारा मुख शाक्य-वीरका,
कहा, "तमिस्रा अति घोर है, अभी
चले कहाँ, विस्मय है मुझे, प्रभो!"

उपांशु बोले, "तुम विज्ञ सारथी,
तुरंग लाओ अति शीघ्र, हे सखे,
समीप आया वह काल है कि मैं
विलास-कारागृह छोड़ दूँ, चलूँ।

"मदीय है मानस सार्वभौम हो
नहीं रुकेगा वह एक देशमें;
अतः सखे, जाग उठी प्रवृत्ति है,
समस्त-भू-मंगल-कामनामयी।"

तदा कहा छन्दकने विनीत हो,
"अरे प्रभो, क्या करते अनर्थ हैं?
कुवाक्य क्या वे गणकाधिनाथके
सभी घटेंगे इस घोर रात्रिमें?

" महान शुद्धोदन-सूनु, हाय ! क्या
फिरा करेगा तज स्वीय राज्य भी ?
कुवाक्य कार्तान्तिकके अवश्य ही
यथार्थ होंगे इस काल-रात्रिमें ?

" नृपाल जो हैं अति पुण्यकर्मके,
निकेत जो है नयनाभिराम ही,
कलत्र जो है रति-मान-मर्दिनी,
सभी बनेंगे परित्यक्त आपसे ?

" निकेत-दारा-जनकादि त्यागके,
उन्हें बनाके मृत-तुल्य आप यों,
सदैव भिक्षापर दत्त-चित्त हो
कहाँ फिरेंगे, यह तो विचार लें ? "

कुमारने उत्तर यों दिया उसे,
" यही, सखे, आगम-हेतु जान तू,
स-छत्र-सिंहासन राज्य त्याज्य है,
अकार्य है शासन बन्धु-वर्गपै ।

" सखे, मुझे तो बनना अवश्य है
समस्त-भू-मंडल-राजराज ही,
न स्वीय आनन्द-विधान-हेतु जो
न प्रेम सो सत्य, मृषा प्रपंच है ।

" नृपालसे, शासनसे, कलत्रसे,
सभी प्रजासे, सब जीव-मात्रसे,
प्रगाढ़ है स्नेह, इसीलिए उठी
मही-समुद्धार-उपाय-कल्पना ।

" तुरंग लाओ अतएव शीघ्र ही,
समीप संकल्प, विकल्प दूर है । "
चला तदा छन्दक अश्व-गेहको
सँवारके कन्थक ला खड़ा किया ।

अभीषु थी सुन्दर श्वेत रंगकी,
अलक्त पर्य्याण नवीन था पड़ा,
लगी हुई थी दृढ़ पाद-ग्राहिणी,
तुरंग सज्जीकृत सामने हुआ ।

समक्ष देखा निज नाथको यदा
प्रसन्न हो कंथक हींसने लगा,
परन्तु सोते जनके न कानमें
महान हेषा-रव विष्ट हो सका !

सहर्ष नेत्राम्बुजसे पुनः पुनः
विलोकके कंथकको समक्षमें,
सु-पृष्ठपै दी थपकी तुरंगके
सम्हालते बाल कहा विमुग्ध हो—

" अहो ! अहो ! कन्थक, धैर्य छोड़ दो,
बने जहाँ लौं अविराम ले चलो,
प्रगाढ़ इच्छा मम है कि शीघ्र ही
करूँ समुद्धार समस्त विश्वका ।

" अतः करो साहस ले चलो मुझे,
रुको न जो भी पथमें दवाग्नि हो,
निखातसे, प्रस्तरसे प्रपूर्ण जो
मिले कहीं मार्ग, न पाँव मन्द हो ।

"चलो मनोवेग-समान ही सखे
उड़ो अभी सत्वर वैनतेय-से,
बढ़े चलो विद्युतके प्रवेगसे
प्रवाह पीछे पड़ जाय वायुका।"

कुमार पीछे हटके तुरंगपै
चढ़े, चला यान महान वेगसे,
तुरन्त वल्गा खनकी, कभी कभी
स-घोष टापें सुन मार्गमें पड़ीं।

उसी घड़ी हर्षित देव-वृन्दने
प्रसून-वर्षा कर दी सुमार्गपै,
अतः सुमोंका रव, शब्द रश्मिका
सुना किसीने न कदापि रात्रिमें।

खुला पड़ा फाटक था निकेतका
असंज्ञ थे वे प्रतिहार-पाल भी,
समीर ऐसा उस कालमें चला
प्रगाढ़ निद्रा-वश हो गये सभी।

बढ़ा तदा कन्थक धूमकेतु-सा
हुआ यथा संक्रम दीर्घ ज्योतिका,
महान उल्का-सम वेगसे चला,
गया, पहूँचा अति दूर देशमें।

चढ़ा हुआ था कुछ शुक्र व्योममें
समीर भी था चलने लगा तदा,
कुशेशयोंमें विलसी प्रफुल्लता,
रुका यदा वाजि शकाधिनाथका।

तुरंगको वे चुमकारते हुए,
स्व-हस्तसे प्रग्रह छोड़ कंठपै,
कुमारने हो अवतीर्ण शीघ्र ही
विनीत हो छन्दकसे कहा, " सखे,

" सहायता दी कृपया उदार हो
तुम्हें मिलेगा फल योग-सिद्धिका,
यथा मिलेगी मम यत्नसे उन्हें
अशेष संसिद्धि मदीय भक्त जो।

" सहर्ष आज्ञा द्रुत मानके, सखे,
तुरंग लाके कृतकृत्य हो गये,
महान मेरे तुम प्रेम-पात्र हो
स-वाजि लौटो नृपके निकेतको।

" किरीट लो, छन्दक, राज-वास लो,
स-रत्न, कांचीकृत चन्द्र-हास लो,
तथैव लो लंक-विलंबिनी लटें,
नृपालको देकर जा कहो, सखे—

" अवश्य ही मैं तव दुःख-हेतु हूँ,
मदीय है ईषत कामचार भी;
परन्तु तो भी निज पुत्रको क्षमा
प्रदान हो, संप्रति देव-कार्य है।

" पुनः फिरूँगा कुछ वार बीतते,
न काल जाते लगता विलम्ब है,
क्षमा करो, धैर्य धरो, महीपते,
महेश्वरेच्छा महती बलीयसी। "

शार्दूलविक्रीडित

"ब्रह्मा, विष्णु, महेश, दक्ष, मघवा, नीरेश, यक्षेश भी,
सारे शैल, नदी, शशी, मिहिर भी, अंभोधि भी, वायु भी,
दैत्यादैत्य, मनुष्य, नाग, खग भी, जो गूढ़ वा व्यक्त हों,
अंगीभूत सभी विराट-वपुके, कल्याणकारी बनें।

"जो कीकाल-स्वरूप हो विहरता मध्याह्नके घाममें,
पृथ्वी, अग्नि, समीर, व्योम, जलमें साकार जो भासता,
विश्वात्मा वह निर्विकार जगकी उत्पत्ति या नाशसे,
रक्षा है करता सदैव सबकी त्रैलोक्य-त्राता वही।

१३—व्यथा

वंशस्थ

प्रभात आया, तम नष्ट हो चला,
उषा लगी पूर्व दिशा प्रकाशने,
विहंग बोले, विटपावली हिली,
प्रकाश फैला, सुम फूलने लगे ।

यथैव कोई सुमुखी नतानना,
विलोकती हो मणि-हार वक्षका,
तथैव बैठी उदयाद्रिपै उषा
निहारती थी छवि ओस-बुन्दकी ।

शनैः शनैः दीप्ति-ध्वजा दिनेशकी
दिगन्त-व्यापी यश लूटने लगी,
गतावशेषा रजनी हुई यदा,
सरोज उत्फुल्ल हुए तडागमें ।

प्रतानिनी-पुंज हिला समीरमें,
तरंगमालाकुल रोहिणी हुई,
सहस्रशः भानु सहस्र-भानुके
तुरन्त छूटे महिको दिगन्तसे।

तडागके कूल सुवर्णसे मढ़े,
हिरण्य बन्धूक-प्रसून भी हुए,
बने सभी पादप जातरूपके
सु-चारु चामीकर-सी लसी मही।

द्रुतविलम्बित

यह न थी स्थिति हा! उस ग्रामकी
कपिलवस्तुपुरी कहते जिसे;
सुर-समीहित आनँद-सिन्धुमें
उमड़ता दुख-अंबुधि था वहाँ।

श्रवणमें घुसता खर-शूल-सा
विहगका मृदु गायन उग्र हो,
अनलके सम दाहक हो गई,
अति प्रफुल्लित कोकनदावली।

गगनकी वह सुन्दर लालिमा,
निधनकी भयदा रसना बनी,
सरितकी लहरें असु-लेहिनी,
लहरने खलु व्यालिनि-सी लगीं।

हिल उठीं बहु वल्लरियाँ यथा
कँप उठीं सह विज्जु-प्रहार ही,
जलज-पल्लव भी जल-बुन्दके
मिष हुए बहु रोदन-लीन थे।

स-जल-बुन्द सरोज विलोकके
हृदयमें भ्रम यों उठने लगा,
कि दृग श्रीयुत शाक्य-नरेशके
तज रहे सित शुक्ति-कुमार हैं ।

वह लता, मृदु वल्लरियाँ वही,
पर न हैं अभिषिंचित ओससे,
वह अवश्य किसी प्रिय नाथके
विरहमें दृग-वारि बहा चलीं ।

प्रथित-पद्म-प्रसून-प्रफुल्लता
पवनमें किस ओर चली गई ?
लख जिसे दुख-संपुट-मानसा
कपिलवस्तु-धरा बनने लगी ।

जड़ नहीं, यह चेतन-रूप हैं,
तरु नहीं, यह मित्र कुमारके,
पवनसे हिलते न, वियोगसे,
सुमन-पात न, अश्रु-प्रपात है ।

सुछवि मेचक रोहिणि-नीरकी
प्रकट थी प्रतिबिम्ब विषादकी,
अहह ! मारुतकी गति मन्द थी
बहु-वियोग-व्यथा-प्रतिघातसे ।

अलि कढ़े सरसीरुह-कोषसे,
भ्रमित थे मनकी अनुभूतिमें,
परम क्लान्त नितान्त मलीन-से
कुमुद-संपुट भी नत-ग्रीव थे ।

जग पड़ी उस काल यशोधरा
नयन खोल यदा लखने लगी,
शयन शून्य विलोक हुई दुखी,
शुक उड़े उसके करसे तभी।

हिम यथा दलता जलजातको,
निगलता विधुको अघ है यथा;
दयितकी अनुपस्थितिने तथा
मन किया हत वज्र-विघात हो।

अवगता घटना द्रुत हो गई
रजनिमें पति-देव-प्रयाणकी,
तदपि कातर हो रँग-गेहमें
वह लगी उनको अवलोकने।

रुदनसे परिप्लावित-लोचना
हृदयको पकड़े निज हाथसे
विलखती बहु भाँति यशोधरा
विरह-वातुल हो बकने लगी—

" अहह, नाथ, हहा! मम प्राण हे!
हृदयके धन, जीवन-सार हे!
विरह-वारिधिमें तजके मुझे
कब, कहाँ, किस ओर चले गये?

" कुपरिहास मुझे इस भाँतिका
न रुचता, अब नाथ, कृपा करो;
प्रकट होकर दर्शन दो मुझे,
न तु गिरी, बिलखी, तड़पी, मरी।

" कह चुके यदि हो सहचारिणी,
वचन-भंग करो मत, हे प्रभो,
विपति-गह्वरमें मुझको गिरा
तुम चले भव-ताप-विमोचने ?

" स्व-हितका मुझको न विचार है,
परम सौख्य मिले यदि आपको,
न सहते बहु सेवक-संग क्या
विषम क्लेश नरेश विदेशमें ?

" द्विरदपै, शिविका, रथ, वाजिपै
निकलते घर-बाहर आप थे;
अब पदाति कहाँ तजके चले
सदन, सेज, सुरा, सखि, सुन्दरी ?

" दुखद मार्ग, अ-संग प्रयाण है,
पथ न ज्ञात, अनिश्चित देश है,
गहनमें वृक-दन्ति-मृगेन्द्र हैं,
नगरमें ठग-चोर-लबार हैं ।

" धनुषसे, असिसे, तनुवारसे
रहित होकर आप कहाँ गये ?
अनभिषंग चले किस हेतुसे
मृदुल हो, सुकुमार-शरीर हो ।

" शयन था पट-अंशुकसे सजा,
सुभग पेलव थे उपधान भी,
तदपि रंग-निकेत विहाय क्यों
दृग छिपाकर आप चले गये ?

" स्मरण आप करें जल-केलिमें
हृदयपै जब कंज-कली लगी,
बहुत-ही प्रभु क्लेशित हो उठे
अधिक कर्कश थी मम पाणिसे ।

" कर वही तजके—जिसको कभी
स-रति नाथ, किया धृत आपने—
चल दिये चुपके पर-देशको
कर मुझे असहाय-अनाथिनी ।

" नल-नरेश यथा निज नारिको
लख प्रसुप्त विहाय चले गये,
उस प्रकार प्रभो, किस दोषसे
तज मुझे तुम हाय ! चले गये ?

" प्रिय, असंभव है सब भाँतिसे
इस प्रकार मुझे तजना तुम्हें;
अति-अमोघ-विमार्जन-लेपसे
कठिन है कर-चिह्न बिगाड़ना ।

" गत भवान्तरमें मुझको, प्रभो,
विपुल बार किया परिणीत है,
वश किया जिसको इस भाँतिसे
अब उसे प्रभु, भूल गये कहाँ ?

" प्रणय-अंकुशसे मन-नागको
पलट दो मम ओर, कृपानिधे,
यह विशाल वियोग-वनस्थली
लहलही अति है, मरु-भूमि हो ।

" यह निकेत सदा प्रिय प्रेमको,
प्रणय है तुमको प्रिय सर्वदा,
तुम महाप्रिय हो मम प्राणको,
प्रिय प्रभो, मुझको मम प्राण हैं ।

" निधन जो मुझको मिल जाय तो
परम शान्तिमयी घटना घटे,
तुम छुड़ा निज प्राण चले गये,
विलग हो मम प्राण मिलें तुम्हें ।

" विधि-व्यवस्थित कर्म-विधानसे,
पड़ परिस्थितिके अधिकारमें,
तज नहीं सकती निज प्राण मैं
अबल हूँ, अबला मम नाम है ।

" न सँग मैं सकती तज आपका,
तन तथा मनमें तुम व्याप्त हो,
नयनमें अविराम लसे हुए
हृदयमें छवि-धाम, बसे हुए ।

" यदि सदा शरणागत-पाल हो,
शरण-आगत-पालन कीजिए,
तुम अभिज्ञ, तुम्हें मति कौन दे
बन सुजान अजान न हूजिए । "

मालिनी

विलप-विलप रोई, रो गिरी मेदिनीपै,
कलप-कलप गोपा मूर्छिता मृत्युप्राया,
द्रुत सहचरियोंने वारिसे कंठ सींचा,
बह जल निकला हो अश्रु-धारा दृगोंसे ।

जब कुछ-कुछ आई चेतना अंगनाके,
जल-रहित झखी-सी व्याकुला हो उठी सो;
मुखपर बरसाती आपदाकी घटाएँ
अलि-अवलि घिरी थी आर्ति-कादम्बिनी-सी।

वह उपवन-भूपै जा पड़ी व्याकुला यों,
विदलित वन-देवी मूर्छिता हो गई ज्यों,
अगणित कण छाये स्वेदके भालपै जो
वह लख पड़ते थे भाग्य ही रो रहा ज्यों।

विलख-विलख गोपा विप्रयुक्ता कृशांगी
निरख-निरख स्वामी-मार्गको रो रही थी,
चिलक-चिलक रोये चूनरीके सितारे,
पर वपुष जलानेको न पर्याप्त वे थे।

कच-तिमिर-त्विषाके वृन्दसे बद्ध-आभा
नव-रवि-कर-श्रेणी-शीर्ष-सिंदूर-रेखा,
जलद-हृत चिता-सी तेज-हीना असेता
प्रकट कर रही थी मृत्यु-आसन्नता ही।

अमित अरुण होके सूर्य भी सान्त्वनाको
दुख-युत कहते थे, "पुत्रिके, धर्म-धीरे,
विधि-विहित-व्यवस्था कर्मसे प्राप्त होती,
तपन बन गया हूँ, घूमता हूँ सदा ही।"

अति दुखित धरा भी पिंगला हो गई थी,
स-दुख पवनके थे आ रहे मंद झोंके,
सकल गगन नीला शोकसे हो गया था,
करुण-रुदन, हाहा! निर्झरोंने मचाया।

रव सुनकर गोपा प्राप्त चैतन्यको हो,
नयन-पटल लेटी खोलती-मूँदती थी,
दृग-सलिल बहाके श्वासके बाँध तोड़े,
निज हृदय-धराको नीर-मग्ना बनाया।

“ प्रियतम, द्रुत आओ, यों न प्यारे, रुलाओ,
यदि अब मत आओ, मान लो बात मेरी,
निज गुण-गण-माला जो वहींसे मँगा लो,
फिर रुदन करूँगी मैं न होगी व्यथा ही।

“ प्रियतम, मत जानो देह प्यारी मुझे है,
पर यह तन साथी आपहीका रहा है,
इन युग नयनोंने आज लौं रूप देखा,
मधुर वचन कानोंने सुना प्रेमसे है।

“ यह मधुकर-श्रेणी आपके कुन्तलों-सी,
अब निज समताका, हा ! पता भी न देती,
अमल कमल नाना जो खिले हैं सरोंमें
वह सब हँसते हैं देख मेरे दृगोंको।

“ कलरव-पिक-केकी मत्त हो कूजते हैं,
स-मद हरिण दौड़े सामने आ रहे हैं,
प्रमुदित शुक-सारी कुंजमें कूजते हैं,
पर मुझ मरतीको कौन आके जिलावे। ”

करुण-रुदन व्यापा गेहके मध्य ज्योंही
त्वरित सकल गंगा गौतमी दौड़ आई,
विथकित जब देखा सामने स्वामिनीको
परम विकल होके फूटके रो पड़ीं वे।

अवगत कर सारा वृत्त शोकाकुला वे
अविरल जल-धारा लोचनोंसे बहातीं,
बहुविधि समझातीं, पोंछतीं अश्रु भी वे,
स्मरण फिर दिलातीं गर्भका स्वामिनीको ।

मन्दाक्रान्ता

ज्यों ही जाना अवनिपतिने वृत्त तो वज्र टूटा,
भूपै ऐसे वह गिर पड़े शुष्क एरंड जैसे,
त्यों ही ऐसा निखिल नगरीमें समाचार फैला,
यात्रा जाने कब, किसलिए, आज सिद्धार्थने की ।

धाये प्राणी सकल पुरके, भूपके द्वार आये,
जैसे-तैसे विदित करके वृत्त डूबे दुखोंमें,
धारा-वाही सलिल बहता था दृगोंसे सभीके
गंगा पद्मा हिम-कुधरसे ज्यों निराधार छूटीं ।

रोगी बाला जरठ शिशुके वृन्द ही सद्ममें थे,
सारे प्राणी इतर नृपके द्वारपै रो रहे थे,
उच्छ्वासोंका अनिल बहता था महा चंडतासे,
आँखोंमें भी उदधि उठके मारता था हिलोरें ।

मानों भूके विरह, विपदा, क्लेश, संताप, पीड़ा
रोने आये नृपति-गृहके द्वारपै देह-धारी,
हाहाकारी जन-रव हुआ अभ्रके कान फूटे,
डूबी सारी विपति-विकला राजधानी दुखोंमें ।

सारी नारी कथन करतीं दुःखसे दग्ध होके
"हाहा ! गोपा नवल रमणी मन्दभाग्या बड़ी ही,
पाया ऐसा धव मधुरता-धाम था जो यशस्वी,
खोया भी हा ! कतिपय अभी ब्याहके बार बीते ।"

राजाकी भी विपति लखके ग्रामवासी दुखी थे,
"हा हा ! जैसा दुखमय हुआ कांड वैसा न होवे,
वृद्धावस्था, कच सित हुए, योषिता भी मृता है,
एकाकी था तनुज, वह भी छोड़ जाया गया है।

" हाथोंसे है जरठ नृपके दंड छूटा धरापै,
सूना-साना हृदय-गृह भी पुत्रके दीपसे है,
गोपाका हा ! विरह-दुखसे शुक्ति-सा भाग्य फूटा,
मोती जैसा हृदय-धन भी खो गया दुःखिनीका।"

दुःखोंकी जो यह घन-घटा ग्रामपै छा गई है,
ले डूबेगी कुशल-गृहको, धैर्यकी भित्तियोंको,
छाई ऐसी तबतक इसी क्रूरतासे रहेगी,
जैसे-तैसे जब तक नहीं वायु-से वीर आते।

देखी जाती शिथिल अति ही कार्य-शैली नरोंकी,
आवासोंमें परम दुखिता नारियाँ हो रही हैं,
सारे प्राणी अपर जब हैं दुःखमें डूबते यों,
कैसे गोपा, अवनिपतिकी वर्णनीया दशा हो।

आ जानेको यदि कह नहीं वीर सिद्धार्थ जाते,
हो जाता तो खँडहर तभी ग्राम है आज जैसा,
आशाकी है अमित महिमा जो जिलाती सभीको,
देखो, गोपा व्यथित हरिणी-सी पड़ी जी रही है।

द्रुतविलंबित

दिवस बीत गये, रजनी कटीं,
विपुल पक्ष गये, बहु मास भी,
तब कहीं हत-चित्त यशोधरा
तनुज राहुल पाकरके हुई।

१४—संबोध

वंशस्थ

तुरंगको, छन्दकको, स्व-वेशको
विहाय सिद्धार्थ चले प्रसन्न हो,
कुरंग जैसे दृढ़ जाल तोड़के
स्वतंत्र सानन्द पलायमान हो।

कुमार आगे जिस ग्रामसे कढ़े,
कदन्न-भिक्षा रुचि-युक्त की जहाँ,
कुतूहल-स्तम्भित पौर भी वहाँ
विलोकते थे छवि नव्य भिक्षुकी।

कुशेशयों-से दृग-हस्त-पादको
विलोक सामुद्रिक भी सतर्क थे,
" समस्त हैं लक्षण भूमिपालके,
तथापि क्यों भिक्षु कषाय-वास है।"

शकेश-दिव्यांग-प्रभा विलोकके
विनीत भावान्वित पान्थ बोलते,
" कृपानिधे, हो यदि आपकी कृपा
चले चलें साथ सुदूर देश लौं । "

स-बाल नारी-नर, वृद्ध, रुग्ण भी,
विलोकनेको प्रभुको स्व-नेत्रसे
समूढ़ होते, जब ग्राम-मध्यसे
कषायधारी कढ़ते शकेश थे ।

विलोक कोई श्रम-खिन्न देवको
किलिंज थे लाकर शीघ्र डालते,
विनीत होके कहते कुमारसे
" यहाँ विराजें क्षण एक तो, प्रभो, "

विलोकके सुन्दरता शरीरकी
प्रफुल्ल थे लोचन पौर-वृन्दके,
चले सभी सद्म विहाय संगमें
दरिद्र-से कंचन लूटते हुए ।

तुषार-सा गौर शरीर मंजु था,
कुरंग-से अंबक तर्क-प्राय थे,
ललाट था उन्नत चन्द्र-खंड-सा,
प्रफुल्ल था आनन पुंडरीक-सा ।

परन्तु था खड्ग न पास दंड था,
न थे पद-त्राण तथा न पादुका,
न छत्र ही था सिरपै न केश थे,
स्वरूप था भूपतिका न रंकका ।

कुबुद्धिसे पादप पारिजातको
पयोधिको क्षार किया विरंचिने,
न भेजता जो इनको अरण्यमें
उसे महाविज्ञ पुकारते सभी ।

विलोक जाते पथमें शकेशको
उठे मनोभाव इसी प्रकारके;
समीर था मन्द, स-मेघ व्योम था,
अनुष्ण था काल, अधूलि मार्ग था ।

चले, पहूँचे जब दूर देशमें
सुरापगा पार किया कुमारने,
कछारसे दक्षिणको गये जहाँ
निरंजना-निर्झरिणी-प्रवाह था ।

तदा लखी श्रीघनने वसुन्धरा
प्रपूर्ण हिंगोष्ट-अँकोट-गुल्मसे,
सुहावने वृक्ष मधूकके जहाँ
बना रहे थे सुखदा वनस्थली ।

पड़ी वहीं सैकत फल्गु मार्गमें,
अहार्य जो फोड़ चली सपाटमें,
विदारती स्थूल शिला गई गया—
पुरी प्रसिद्धा मृत-प्रेत-तारिणी ।

पड़े कई सैकत वप्र मार्गमें
मरुस्थली है उरु-बिल्वकी जहाँ,
उसे किया पार, मिली उन्हें तदा
हरी-भरी शाद्वल-भूमि सामने ।

अजस्र ही निर्झरके प्रवाहमें
विहार-संयुक्त मराल-युग्म थे,
जहाँ समुत्फुल्ल लसे तडागमें
सु-गौर-नीलारुण वारिजात भी ।

तृणावली-मंडित गेहमें वहीं
निविष्ट थे कर्षक सेन-ग्रामके;
उसी महीसे कुछ दूर वप्रपै
स-मोद बैठे प्रभु वृक्षके तले ।

विचारने श्रीघन बैठके लगे
मनुष्य-प्रारब्ध-रहस्य ध्यानसे,
विरोध भूका, परिणाम कर्मका,
पुराणका आशय, तत्त्व शास्त्रका ।

विचारके सृष्टि-विनाश विश्वका
विलोकने वे उस भेदको लगे,
तमिस्र आता जिस ज्योति-पुंजसे,
प्रकाश जाता जिस अंधकारमें ।

यथैव दो अम्बुद-मध्य सेतु-सा
सुरंग हो इन्द्र-शरास फैलता,
तथैव है माध्यम जन्म-मृत्युका
त्रिलोकमें जीवन-नामधेय जो ।

प्रकाश देता बहु-रंग हो यथा
स-घर्म-नीहार सुरेश-चाप है,
विलीन होके फिर सो शनैः शनैः
अदृश्य होता नभ-अंतरंगमें ।

यही दशा जीवनकी मनुष्यके,
अनेक आमोद-विषाद-युक्त जो
अनादिसे आ जगमें प्रकाशता,
अनन्तमें जा बनता अदृश्य है।

वहाँ इसी भाँति समाधि-लीन हो
असंज्ञ ऐसे रहते शकेश थे,
कि भूल बैठे निज भूख-प्यास भी,
रही न संज्ञा कुछ देश-कालकी।

प्लवंगसे पातित, वृक्षके तले,
विहंगसे खादित, गुल्मसे गिरे,
पड़े हुए जो मिलते यदा-कदा
उन्हीं फलोंपै रहते कुमार थे।

अजस्र ध्यान-स्थित-कर्शितांग वे
बने महा शुष्क तपोनिधान थे,
मुखाम्बुज-श्री गत-सार हो गई,
मिटे सभी दैहिक राज-चिह्न भी।

न लालिमा-युक्त मुखाब्ज ही रहा,
न राजसी ज्योति रही ललाटपै,
बड़े-बड़े लोचन बैठ-से गये,
कपोल सूखे, क्षति देहकी हुई।

हुए महा व्याकुल एक बार वे
अचेत-से होकर भूमिपै गिरे,
न श्वास-निःश्वास रहा शरीरमें
न रक्त-संचार हुआ मुहूर्त लौं।

उसी घड़ी एक उरभ्र-वृन्द ले
अजाप आके निकला अरण्यसे,
विलोकते ही गत-संज्ञ देवको
समीप आया अवलोकता हुआ ।

अचेत थे, लोचन थे मुँदे हुए,
बने महा पांडुर दन्त-वास भी,
प्रचंड था आतप, किन्तु देहपै
न था कहीं स्वेद, न रेणु धूलिके ।

तुरन्त ले पल्लव एक वृक्षसे
बना लिया छत्र उरभ्र-पालने,
वितान-सा तान दिया शकेशकी
महाकृशा आतप-दग्ध देहपै ।

कदम्ब-शाखा पनपी निमेषमें
यथा नया जीवन पा हरी हुई,
समीरसे डोल उठी तुरन्त ही
हिली महा सौख्यद ताल-वृन्त-सी ।

हुए जभी स्वस्थ, उठे विलोकते,
समक्ष देखा उस मेष-पालको,
महा पिपासू वह थे, कहा, " सखे,
तुरन्त दे भाजन दुग्ध-पूर्ण तू। "

परन्तु बोला वह, " हे कृपानिधे,
महान अस्पृश्य, निकृष्ट शूद्र हूँ
अदेय है पात्र अपात्रका, प्रभो,
सुपात्र हैं आप, कुपात्र मात्र हूँ। "

सुना जभी वाक्य जगन्निवासने
कहा, "न ऐसा कह तू, स्व-पात्र दे,
बने कहीं जो सम-दृष्टि तू, सखे,
गवाशमें ब्राह्मणमें न भेद है ।

"न रक्तमें वर्ण-विभेद है, सखे,
न अश्रु होते बहु जाति-पाँतिके,
समस्त भू-मंडलमें विलोक तू
समान-सू मानव-जाति एक है ।

"विलोक तू, भाल त्रिपुंड-हीन है,
बँधी नहीं है कटिमें कृपाण भी,
तुला तथा पोटलिका न पास है,
न विप्र हूँ, क्षत्रिय हूँ न वैश्य हूँ ।

"अतः मुझे संप्रति शूद्र मान तू,
निकृष्ट हूँ मैं तव जाति-बंधु-सा
वयस्य, दे दे द्रुत दुग्ध-पात्र तू,
पिपासुको इष्ट पयःप्रपान है ।"

शकेशको भाजन मेष-पालने
दिया, पिया क्षीर हुए प्रसन्न वे;
तुरन्त आया बल अंग-अंगमें
समेत-आशीष विदा किया उसे ।

मन्दाक्रान्ता

पीते ही वे पय, बन सुखी, स्वस्थतासे विराजे,
आई वाणी गहन-पथसे गीति-पूर्णा मनोज्ञा,
गाती-गाती मुदित निकलीं मार्गसे देवदासी,
जो जाती थीं नृपति-गृहको मंगलाचार गाने ।

सौभाग्योंकी विदित गरिमा नूपुरोंने सुनाई,
जाती थीं वे सुभग करके कंकणोंको बजातीं,
तालें देतीं प्रतनु कटिमें किंकिणी मंजुघोषा,
क्या ही प्यारा सम बँध गया कंठसे बोल फूटा—

" हे वीणा-वादन-पर सखे, तार हों ठीक तेरे,
ऊँचे-नीचे अब मत रहें रंग गाढ़ा जमावें,
जो होते हैं सम-बल वही मोहते विश्वको हैं
जो ढीले तो गत-रव बने, जो खिंचे शीघ्र टूटे।"

वीणा-वंशीपर वह सभी गा रहीं जा रहीं थीं,
न्यारे-न्यारे वसन हिलते वायुके वेगसे थे,
मानों पक्षी विविध रँगके पक्षवाले निराले
गाते-गाते सघन अटवीमें उड़े जा रहे हों ।

बेचारी वे यह न समझीं सिद्ध सानिध्यमें थे,
विश्वात्मा वे उस वटतले ध्यानमें थे विराजे,
बोले वाणी, " सफल लय है सार हो तारमें जो,
आत्मा भी तो बल-रहितको प्राप्त होता नहीं है।"

वंशस्थ

समीप ही सुन्दर सेन-ग्राममें
महाधनी उत्तम भूमि-हार था,
प्रधान न्यायी, धन-धान्य-पूर्ण जो
सहस्र-गो-पालक था, उदार था ।

रही सुजाता उसकी सु-गेहिनी,
सुलोचना, रूपवती, दयामयी,
महा सुशीला पति-मोद-दायिनी,
प्रभावती चन्द्र-समा कलावती ।

प्रतिष्ठिता थी वह सर्व ग्राममें
गुणान्विता, आदर-गौरवान्विता,
परन्तु था शोक उसे अजस्र ही
कि गेहका आँगन पुत्र-शून्य था।

रही मनाती वह देवता सभी
दिनेश-लक्ष्मी-शिव पूजती हुई,
प्रसूनसे, अक्षत-धूप-दीपसे
सदा सपर्या सजती स-काम थी।

अरण्यमें जाकर एक बार सो
विनीत हो सादर मानने लगी—
" सुपुत्र हो जो वनदेव, तो प्रभो,
सहर्ष क्षीरोदन-दान मैं करूँ। "

अपत्य कालान्तरमें मिला उसे,
महा सुखी पूरित-कामना हुई,
चली सुजाता नव-जात पुत्र ले
स-हर्ष क्षीरोदन ले अरण्यको।

यदा पहूँची वटके समीपमें
स-देह बैठे ' वनदेव ' को लखा,
प्रशान्त पद्मासन थे विराजते
प्रलम्ब दोनों भुज जानुपै धरे।

विलोचनोंमें अति दिव्य ज्योति थी,
विशाल थी पुण्य-प्रभा ललाटपै,
प्रसन्न था आनन, मूर्ति सौम्य थी,
समुज्ज्वला देह तुषार-श्वेत थी।

शकेशको देख अतीव भक्तिसे
सदेह जाना वनदेव ही उन्हें,
सराहती स्वीय सुभाग्य सुन्दरी
गई सुजाता कँपती समीपमें ।

स-पुत्र बैठी युग हाथ जोड़के
शकेशसे यों कहने लगी सती—
" अरण्यके रक्षक, आज आपने
दिया मुझे दर्शन, की बड़ी कृपा ।

" प्रभो, पकाया भवदीय भोगको
सुमिष्ट क्षीरोदन गंध-युक्त है,
अकिंचनाके यह पत्र-पुष्प ले
उसे कृपासे कृत-कृत्य कीजिए ।"

बढ़ा दिया स्वर्ण-शराव सामने
चढ़ा दिया चन्दन-पुष्प सीसपै,
कुलांगनासे कुछ भी कहे बिना,
शकेश भी भोजन-लीन हो गये ।

बना हुआ पायस स्वादु-युक्त था,
शकेश खाके बल-युक्त यों हुए
नितान्त भूले उपवास-काल वे,
मुधा किये जो व्रत स्वप्न हो गये ।

मरुस्थलीमें उड़ते विहंगको
यथा कहीं सागर-तीर आ मिले,
मिले पुनर्जीवन-सा पुनः उसे
बलिष्ठ हों पक्ष, प्रसन्न चित्त हो ।

तथैव पा पायसको सुखी हुए,
तुरन्त आया बल अंग-अंगमें,
जगी सु-आशा मनमें उषा-समा
सरोज-सा आनन कान्त हो उठा।

स-हर्ष पूछा, "अयि चारुलोचने,
बल-प्रदा है यह वस्तु कौन-सी,
न याचना की तुझसे, परन्तु क्यों
स-मोद लाई यह भोज्य सामने?"

कहा, "प्रभो, पायस स्वादु-युक्त है,
बसा हुआ केसर-तेजपत्रका,
स-हर्ष लाई भवदीय हेतु ही
बड़ी कृपा की सुत-दान जो दिया।"

त्रिलोक-उद्धारक शाक्यदेवने,
अपत्यके ऊपर हाथ फेरते,
कहा, "बढ़े, हो सुत दीर्घ आयुका,
सदा रहे जीवन सौख्य-पूर्ण ही।

"सुदेवि, तूने अति प्रेम-भावसे
प्रदान क्षीरोदन जो किया अभी,
हुआ मुझे द्वैध प्रमोद देखके,
मिला तुझे पुत्र, प्रसन्न तू हुई।

"न देव, साधारण एक जीव हूँ,
दरिद्र हूँ, राजकुमार था कभी;
परन्तु इच्छा यह है कि बोध दूँ
तमोगुणाक्रान्त समस्त विश्वको।

"कुलांगने, तू अति धन्य कामिनी,
उदारताकी प्रतिमूर्ति सर्वथा,
स्व-धर्मके तू अतिरिक्त धर्मको
न जानती; धर्म प्रशस्य है यही।"

प्रमोदसे बालक मातृ-अंकमें
उछालता था निज हस्त-पाद भी,
विलोकता था भगवानको मुदा
अबोध था, पै प्रभु-दत्त-चित्त था।

मन्दाक्रान्ता

धाताने भी सरल-हृदया कामिनीको बनाके,
विश्वासोंकी निचिति रचके, भक्तिको देह देके,
कैसा प्यारा भवन विरचा पुत्रका, प्रेमका भी,
तो भी कोई विरत बनते, मुक्तिको चाहते हैं।

वंशस्थ

चली सुजाता, रवि अस्त हो चला,
चले गरुत्मान स्वकीय नीडको,
सुगन्ध ले वायु चला दिगंतमें,
चली नभोमंडल छोड़ लालिमा।

विलोक संध्या उठके शकेश भी
स-हर्ष बोधि-द्रुम-मूलको चले,
घनिष्ठ छाया जिस यक्ष-वृक्षकी
अरण्यमें थी प्रसरी सुदूर लौं।

यही महावृक्ष सुदीर्घ-काय है,
चिरायु है, जीवन एक कल्प लौं,
न शुष्क होता, रहता हरा-भरा,
मुकुन्दका आश्रय एकमात्र है।

युगान्तमें स्वीय करारविन्दसे,
स-हर्ष लेके चरणारविन्दको,
निवेश दे मंजु मुखारविन्दमें,
शयान होते अरविन्द-नाभ हैं।

चले उसी पादप ओर आप भी,
त्रिलोकमें मंगल-गान हो उठा,
विलोक आता अधिराज विश्वका
हुए महाहर्षित वृक्ष-जीव भी।

मराल बोले, झख भी सुखी हुए,
कुरंगके वृन्द अभीत हो गये,
प्रसूनकी राशि बिछी सुमार्गमें,
हुई सपर्या-रत सर्वमेदिनी।

वितान-सा था तरुका तना हुआ,
घिरे हुए थे घन अंतरिक्षमें,
सरोजका सौरभ ले तडागसे
चला महामंथर गंध-वाह भी।

विरोधकी वृत्ति विहाय शाश्वती
कुरंग, पंचास्य, वराह, व्याघ्र भी,
खड़े हुए देख रहे स-मोद थे
शकेश ज्योंही वटके तले चले।

फणी उठाके फन नाचने लगा,
कपोतने कूजन भोगपै किया,
महीरुहोंपै कपि-संग खेलती
प्रसन्न थी चंचल वृक्षशायिका ।

तुरन्त छोड़ा निज भक्ष्य श्येनने,
दुरन्त आतापि निरामिषा हुई,
अरण्यमें कोकिल कूजने लगे,
कढ़ा खगोंका स्वर एक-साथ ही—

शिखरिणी

" सदा सच्चे साथी सकल जगके एक तुम हो,
तुम्हींको है, स्वामिन्, सुकर भव-उद्धार करना,
तुम्हींने जीता है भव-भय तथा क्रोध, मद भी,
करो रक्षा भूकी, स-पशु-खग-शाखी मनुजकी ।

" धरा पापोंसे है अब दब रही घोर दुखसे,
भरोसा है भारी निखिल महिको, शक्त तुम हो,
तुम्हारी इच्छा है सकल जन सद्धर्म-रत हों,
तमिस्रा आई क्या जनन करने नव्य रविको ? "

वसन्ततिलका

न्यग्रोधके निकट जाकर नाथ बैठे,
थे ध्यानमें निरत संसृति-मुक्तिके वे,
ऐसा मुहूर्त लख सिद्धि-पथावरोधी,
आया अनंग सँग लेकर स्वीय सेना ।

तृष्णा चली स-रति, काम स-क्रोध आया,
इच्छा स-लोभ-भय-मक्ष समक्ष दौड़ी,
ईर्षा तथा अरति संग लिये अहंता
आई शकेश-मनको पथसे हटाने ।

उत्पात घोरतम व्याप्त हुए धरामें
सेना-समेत रजनीचर दौड़ आये,
आँधी चली प्रबल, घोर घटा घिरी यों,
सारी निशा बिकट विघ्न मचे वहाँपै—

कादम्बिनी कड़कती गुरु गर्जनासे,
कंपायमान भय-पीड़ित मेदिनी थी,
होके महान प्रबला तडिता अदम्या
कान्तारपै अशनि घोर गिरा रही थी ।

ऐसी कराल प्रलयाम्बुदकी घटाएँ
आईं, घिरीं गगन-मध्य अभूत-पूर्वा,
सारी निशा कड़क, छोड़ कबन्ध-धारा,
ज्यों ही गई, परम कान्त निशान्त आया ।

आई अपांग-तरला, सरसीरुहाक्षी,
बाला प्रपूर्ण-द्विजराज-मुखी, मनोज्ञा;
आने लगी सुरभि चंचल अंबरोंसे
गाने लगीं मदन-कानन-कोकिला वे ।

था गंधवाह बहता अति मंदतासे,
स्वसौख्य-युक्त मृदु गायन हो रहा था,
ऐसा बना मदन-मत्त निसर्ग सारा
कान्तार भी अपर नंदन-सा हुआ था ।

आलिंगिता बन गईं तरुसे लताएँ,
आनन्दमें लिपट सिन्धु गये तटीसे,
कासारमें उमड़के सरसी समाई,
संसारमें मदन-शासन हो रहा था ।

योगी-विरक्त-मुनि-मानस-क्षोभकारी,
कंदर्प दर्प-युत हो उस काल आया,
तूणीरसे विशिख एक जभी निकाला,
आकृष्ट चाप करके विहँसा शिवारी ।

भ्रू-भंग-युक्त कर-चालन-शील वामा
गाने लगीं मधुर गायन सौख्यकारी,
हो मंत्र-मुग्ध रजनी रुक-सी गई यों;
तारे, सुधा-किरण भी स्थित हो गये थे ।

था देख देख उनको यह भास होता
श्री-सार-युक्त बस हास-विलास ही हैं,
त्रैलोक्यका अमृत-सिन्धु भरा हुआ है
सीमंतिनी-स-मद-नेत्र-कटाक्षमें ही ।

पीता न जो अधर-पल्लव कामिनीके,
भ्रू-भंगिमा न लखता अति मोदसे जो,
आगुल्फ केश लख जो न स-काम होता,
सो उक्ष निर्वृषण, क्लीब लुलाप ही है ।

नारी अनूप कुसुमायुधकी प्रिया है,
संपत्तिकी प्रणयिनी, सुभगा, सु-नेत्रा,
जो मूर्ख छोड़ इसको वनवास लेते,
मुंडी, कुरूप बन वे फिरते अकेले ।

पीयूष-पुंज, रति-राशि, समूह श्रीका,
कान्ता सदैव अधिकाधिक प्राणसे है,
हों प्राण कंठ-गत तो तन हेय होता,
कान्ता स्व-कंठ-गत तो जग स्वर्ग ही है।

जोत्स्ना-समान अति मोद-प्रदायिनी जो,
है वारुणी-सदृश मादक जो सदा ही,
आकृष्ट विश्व करती प्रभुता-समा जो,
चेतोहरा प्रथित एक नितंबिनी है।

प्रस्थान दुःख करता जब नव्य वामा
आवद्ध गाढ़ करती भुज-पाशमें है,
जो एक चुम्बन मिले वरवर्णिनीका
त्रैलोक्य-सौख्य न्यवछावर है उसीपै।

ऐसे अनूप बहु भाव बता-बताके,
जंघा-नितंब-कुच-हस्त हिला-हिलाके,
गाती महा मधुर भौंह नचा-नचाके
थीं सिद्ध-चित्त-अभिचारण-दत्त-चेता।

थी वारुणी झलकती उनके दृगोंसे,
था मन्द-हास अधरोंपर सौख्यदायी,
यों नृत्यमें चपल-चंचल हो रही थीं,
थे अंग-अंग खुलते-मुँदते सभीके।

प्रत्यूषमें पवनसे परिचालिता हो
जैसे कली विकसती, लसती सुखी है,
वैसे सुरंग अपना-अपना दिखाके
मध्यस्थ मंजु मकरन्द छिपा रही थीं।

ऐसी घटा न उनई तबसे धरापै
जैसी छटा लख पड़ी छबिकी वहाँ थी;
लंकेशके सदृश मार बलिष्ठ था, पै
सिद्धार्थ-चित्त दृढ़ अंगद-पाद-सा था।

तो कामने विषम अंतिम बाण छोड़ा,
सीमंतिनी मुकुट-रत्न चली लुभाने,
गोपा-स्वरूप बनके वह आ पहूँची
योगीन्द्र-वृन्द-अभिनंदित श्रीपदोंमें।

सिद्धार्थके हृदयको पथसे हटाने
आई ललाम ललना छविकी लता-सी,
आलिप्त थे विरह-अश्रु विलोचनोंमें,
थी पीतिमा सुभग आननपै विराजी।

आगे हुई भुज-लता अपनी पसारे,
उच्छ्वास लेकर कहा अभिचारिणीने,
"हे आर्यपुत्र, मरती भवदीय दासी,
हा! आप कौन व्रत संप्रति साधते हैं?

"शृंगार-गेह वह मंजु विलासवाला
कैसा भयंकर हुआ, चल देखिए तो,
हैं आप एक पलमें रजनी विताते,
मैं तो पहाड़-सम वासर काटती हूँ।

"प्यारे, चलो भवनको, यह प्रार्थना है,
आओ, लगो हृदयमें, तन-ताप मेटो,
मिथ्या सभी विरति है, रति ही अमिथ्या,
जौ लौं स्व-प्राण, यह संसृति भी तभी लौं।"

शार्दूलविक्रीडित

बोले किन्तु, " अये, महा छल-परे, तू भाग जा, भाग जा,
गोपाका मृदु वेष जो न धरती, होता महा अन्यथा,
हे हे काम स्वरूपिणी, स्थगित हो, तू जा यहाँसे अभी,
हा, दुर्बुद्धिमती, तुझे निरखके आती दया ही मुझे।"

वंशस्थ

चला महावात, तमिस्र हो गया,
अहार्य डोले, हिल मेदिनी उठी,
पयोदने मूसलधार छोड़ दी,
स-घोष सौदामिनि दीप्त हो उठी।

दुरन्त उल्का गिरने लगी तभी,
महान चीत्कार हुआ दिगन्तमें,
प्रकम्पमाना बन रोदसी गई,
अनी हुई प्रेरित प्रेत-लोककी।

परन्तु सिद्धार्थ अ-कंप ही रहे,
डिगे न डोले, दृढ़ ही बने रहे,
महा अहिंसा-मय सत्य-धर्मका
सु-पाठ सारे जगको पढ़ा दिया।

स-कंप बोधि-द्रुम भी हुआ नहीं,
न मूल छोड़ी उस नैश शान्तिने,
न पल्लवोंसे कण ओसके गिरे,
खड़ा रहा पादप विघ्न-वातमें।

घटे सभी दृश्य बहिःप्रकारसे,
शकेशने या अनुभूत ही किये,
रहस्य तो केवल जानता वही
किया अनंगी जिसने अनंगको।

लखी अनी संभ्रम-युक्त भागती
प्रगाढ़ ध्यानस्थ शकेश हो गये,
विचार देखी, गति जीव-जन्तुकी,
तुरन्त पूर्वस्मृति हो गई उन्हें ।

तदा विलोका क्रम पूर्वजन्मका
उन्हें हुआ ज्ञात रहस्य कर्मका,
अतीत-नैमित्तिक वर्तमान है,
भविष्य भी है फल भूत-बीजका ।

पुनः विलोका किस भाँति जीवके
समस्त संस्कार अखंडनीय हैं,
सदा इसी कारणसे नृ-लोकमें
विधान होते बहु जन्म-जन्मके ।

तुरन्त ही आश्रय-ज्ञान हो गया,
लखी सभी संस्थिति लोक-लोककी,
अखंड ब्रह्मांड समंतभद्रको
सुदृश्य, हस्तामलक-स्वरूप था ।

तदा विलोका निज दिव्य दृष्टिसे
असंख्य आदित्य निशेश व्योममें,
बँधे हुए जो असमक्ष सूत्रमें
समस्त संचालित हैं अजस्र ही ।

परोक्ष-संचोष्टित काल-चक्रसे
बँधे हुए मंडल अन्तरिक्षमें
विनष्ट होते सब कल्प बीतते,
न हैं इसी भाँति सदैव घूमते ।

अवर्ज्य-आदेश-मयी सनातनी
महेश्वरेच्छा चलती अजस्र है,
अकथ्य सिद्धान्त, अलक्ष्य सत्यका
समस्त-भू-चक्र-विधान है बना ।

हुआ इसीसे तममें प्रकाश है,
बना स-चैतन्य निसर्ग-जाड्य भी,
अशक्यको शक्य स्वकीय शक्तिसे
किया इसीने परिपूर्ण शून्यको ।

विभावना जो उस आदि शक्तिकी,
सभी सुधी सृष्टि पुकारते जिसे,
रहें उसीके अनुकूल तो सुखी,
दुखी बनाता प्रतिकूल भाव है ।

पुनः विलोका वह दुःख-सत्य जो
लगा हुआ जीवन-संगमें सदा,
न छूटता है तब लौं मनुष्यसे
न ज्ञान पाता जब लौं यथार्थ सो ।

परन्तु ज्यों ही यह दोष छूटता,
विनष्ट होते सब राग-द्वेष हैं,
प्रसिद्ध होता वह सिद्ध विश्वमें,
उदर्क भी जीवन-मुक्ति-लाभ है ।

विलोकता जो इस एक तत्त्वको
मनुष्य होता वह पूर्ण प्रज्ञ है,
विकारसे मुक्त हुआ कि पा गया
अशेष निर्वाण, समाप्ति जीवकी ।

शार्दूलविक्रीडित

पाई संसृतिने मनोजजितसे निर्वाणकी संपदा,
प्राचीमें उदिता उषा-छवि हुई, फैली प्रभा भूमिपै,
आया वासर दिव्य, सत्य-रविने मेटी मृषा यामिनी,
मानों श्रीभगवानकी विजयकी थी घोषणा हो रही ।

रेखा जो धुँधली दिगन्तपर थी, सो रक्त होने लगी,
दोषा थी तमसावृता गगनमें, सो भी अदृश्या हुई,
डूबा निष्प्रभ शुक्र व्योम-तलमें, भूपै प्रभा छा गई,
क्या ही पुण्य-प्रभात विश्व-तलमें फैला महज्ज्योतिसे ।

पाई दीधिति मेरुने प्रथम ही, माना स्वयंको कृती,
शुभ्रा ज्योति-किरीट-मंडित-शिखा थी राजिती पूर्वमें;
प्रातः वायु बहा सुगंध-युत हो, ले मन्दता शैत्य भी,
फूले पुष्प, उठे शिलीमुख, चले सानन्द राजीवपै ।

जो दूर्वादलपै पड़ी रजनिमें थी ओस सो भी उड़ी,
फैली ज्योति प्रभातकी अवनिपै याता बनी यामिनी;
हो हेमाभ चलायमान बनते थे तालके वृन्त भी,
ज्योतिर्युक्त हुई गुफा गहनकी, शैलांघ्रिकी कंदरा ।

शोभासे नव सूर्यकी जग पड़ी आह्लादिनी निम्नगा,
मानों थी सित-रत्न निर्मित बनी धारा मनोहारिणी,
पक्षी भी उठके विराव करते आनन्दमें मग्न थे,
आई दौड़ रथांगिनी स्व-पतिसे बोली, "त्रियामा गई ।"

ऐसा पुण्य-प्रभात धर्म-रविका फैला सभी ओर था,
आये श्री-सुख-प्रेम-शान्ति महिमें आनन्द होने लगा,
त्यागा बन्धन व्याधने त्वरित ही वैदेहने व्याज भी,
मूषा जो पर-द्रव्य था रजनिमें लौटा दिया चौरने ।

फैला धर्म-प्रभात था अवनिमें पीयूष-संचार-सा,
रोगी, वृद्ध, अशक्त भी मुदित थे पा स्वास्थ्यकी संपदा,
भूपोंने रणसे निवृत्त असि की क्रोधाग्निसे मुक्त हो,
सारी संसृति सत्य-चिन्तन-परा, निर्वाण-भावा बनी।

प्राणी जो म्रियमाण थे वह उठे पाके नई चेतना,
संध्या जीवनकी अहो! बदलके प्रत्यूष-भूषा हुई,
बैठी दीन यशोधरा स्व-पतिके पर्य्यंकके पास थी,
सो भी प्रात-प्रफुल्ल-पंकरुह-सी आनंदिता हो उठी।

युक्ता निर्जन भूमि भी लख पड़ी स्वर्गीय सौन्दर्य्यसे
मानों आगम देख देवपतिका आशा जगी मुक्तिकी,
सारे किन्नर-यक्ष-देव सुखसे गाने लगे व्योममें
फैला क्यों जगमें प्रमोद इतना, जाना किसीने नहीं।

वाणी अम्बरमें हुई, "खुल गया कल्याणका मार्ग है"
जो थी विस्तृत स्वर्ण-ज्योति नभमें भू-लोकमें आ गई,
सारे जीव विहाय बैर पुरमें कान्तारमें घूमते,
गोके संग मृगेन्द्र और वृकके थे साथमें मेष भी।

छोड़ा क्ष्वेड भुजंगने, गरुडने मैत्री रची सर्पसे,
लावा श्येन अभीत थे, बक लगे होने सखा मीनके,
सारे जंगम थे प्रसन्न जड़ भी कल्याणके भावमें
पक्षीमें पशुमें तथा मनुजमें फैली दया-भावना।

द्रुतविलम्बित

सकल योग-जपादिक-सिद्धिका
सुफल प्राप्त किया शक-नाथने;
सब प्रकार स-विग्रह हो गया
परम गुप्त रहस्य त्रिलोकका।

१५—संदेश

द्रुतविलंबित

मनुजकी, पशुकी, खगकी तथा
विटप-गुल्म-लता-मय विश्वकी
सुन पड़ी ध्वनि आर्त समीरमें
इस प्रकार तपोधन बुद्धको—

“ सुख-विनाशक त्रैविध तापसे
जल रही सब संसृति, नाथ, है,
न, प्रभु, आप विलम्ब लगाइए,
अब, तथागत, धर्म सुनाइए । ”

कनक-सा सरको करके यथा
निरखता रवि पंकज-पुंज है,
स्व-करसे बहु बार टटोलता
विकसनीय कली जिस भाँतिसे;

उस प्रकार विलोक शकेश भी
गगनमें उस व्याहृतिकी दिशा,
त्वरित बोल उठे अति ओजसे
'जन अवश्य गहें पथ धर्मका।'

कर ललाट समुन्नत शीघ्र वे
चल पड़े उठके वट-मूलसे,
सकल-लोक-समुन्नति-भावना
सहज-सस्मित आननपै लसी

फिर तथागत आ पहुँचे वहाँ
स्थित जहाँ नगरी मदनारिकी,
अनघ-पावन-भक्ति-विकासिनी
अति प्रसिद्ध पुरातन काशिका;

निगम-आगम-अर्थ-प्रकाशिनी,
सतत-शम्भु-त्रिशूल-निवासिनी,
सकल-संसृति-धर्म-विकासिनी,
स्व-छविसे अब भी बहु-भासिनी।

प्रभु प्रचार लगे करने वहाँ,
"सकल संसृति कर्म-प्रधान है,
मनुजकी गति भी इस न्यायसे
सब पुरातन-कर्म-विपाक है।

"नरक-ही रचके निज कर्मसे
विलपता पचता नर दुःखमें,
यदि रहे वह शान्त विरक्त तो
भुवन लभ्य, अलभ्य न स्वर्ग भी।"

यह निदेश सुना जन-यूथने
चरणमें शरणागत हो गया,
प्रभु गये सबको उपदेश दे
निकट ही 'ऋषि-पत्तन'-ग्रामको।

रजनि एक बिता कर शान्तिसे
नगरके नरको उपदेश दे,
प्रभु यदा पहुँचे 'मृगदाव'में
निरख धन्य हुए सब मागधी।

निकलते जब याचनके लिए
विनयसे युग हाथ पसारके,
जिस गली चलते मचता वहीं
रव यही, "यह लो, यह लो, प्रभो!"

तनुज लेकर पुत्रवती चलीं;
त्वरित डाल तथागत-पादपै
चरणकी रज पाकर नारियाँ
मुदित थीं बहु भाँति स्वभाग्यपै।

कठिन कानन पार किया, गये
प्रथित पर्वत पाँच खड़े जहाँ,
सघन छाँह तपोवनमें लसी,
विमल-पाथ सरोवर था जहाँ।

उपल थे प्रतिबिम्बित नीरमें,
विटप थे सरिपै झुक झूमते,
निकट ही गिरि-उच्च-शिखाग्रसे
बहु शिलाजतु निःसृत हो रहा।

कुछ बढ़े पहुँचे वन-मध्यमें
कुपथ कंटक-प्रस्तर-पूर्ण था;
अचलके उस पार गये जहाँ
कलित कानन था, सम भूमि थी।

रुचिर तापस आश्रममें जहाँ
बहु व्रती करते जप-योग थे,
स्व-तनको रिपुके सम जानके
दमन थे करते बहु क्लेशसे।

स्व-गृहको तजके, वनवास ले,
कठिन वे करते तप-साधना,
स्व-करको कर ऊर्द्ध्व दिनान्त लौं
स्थित यती रहते पद एकपै।

सकल-इन्द्रिय-ज्ञान-विभावना
दमन थे करते बहु यत्नसे,
मरणके पहले सब भाँति ही
मृत बने जिससे यम-यातना।

कुछ खड़े क्षुरसे तन छेदके,
अयस-कीलित थे अँग अन्यके,
अपर क्षार रमाकर देहपै
अनलमें तपते बहुभाँति थे।

निरखते कुदशा नर-जातिकी
प्रभु चले तरु-पुंज-तले गये,
सकल-तापस-आश्रम-अग्रणी
निवसता बुध ब्राह्मण था जहाँ।

समय पावसका लखके, वहीं
ठहर आप गये द्विज-संग ही,
निरखते उसके जप-यागको
निवसते वसु याम शकेश थे।

द्विज वहाँपर आतप-शीतमें
निवसता, करता व्रत-योग था
जप तथा उपवास-निमग्न हो
वह तपोधन ध्यान-प्रसक्त था।

खग समीप मुदा चुगते रहे,
जघनपै फिरती तरु-शायिका,
द्विज अभेद्य-समाधि-निमग्न हो
न लखता बहिरंग कदापि था।

दिवसमें, बहु आतप घोरमें,
जब कभी बनता बन दाव-सा,
वह यती निज ध्यान-निलीन हो
न लखता रविकी अति चंडता।

कब गया दिन, यामिनि आ गई,
कब हुआ रव जम्बुक-यूथका,
कब लगे तरुपै खग बोलने,
वह यती इससे अनभिज्ञ था।

रजनिमें निकलें बन-जन्तु भी
विचर भैरव-नाद करें वहीं,
तिमिर-पूर्ण यथा मनमें धँसें
खल-मलादिक पूर्ण अशंक हो।

शयन विप्र कभी करता न था,
यदि कभी करता, क्षण एक ही,
अरुणके पहले वह जागता
अति कठोर रही तप-साधना।

निरख तापसकी तप-योजना,
विपथ देख उसे श्रुति-मार्गसे,
लख महा व्यभिचार विवेकका
निगम-पालकसे न रहा गया।

वचन बोल उठे प्रभु विप्रसे—
"तुम सखे, यह क्यों दुख झेलते ?
जब न है लघु जीवन-क्लेश ही
स्व-तन क्यों करते फिर दग्ध हो ?

"निगमका पथ, आगम-मार्ग भी,
कठिन है अति, मैं यह मानता,
पर लखो यह देह मनुष्यकी
प्रमुख साधन है सब धर्मका।

"यदि कहींपर स्वर्ग-निकेत है,
इतर है जनके तनसे नहीं,
यदि उसे तुम भोग सको, सखे,
निकट तो फिर मुक्ति अवश्य है।

"निगम हैं कहते सुख स्वर्ग है,
नरक दुःख यही मत शास्त्रका,
क्रम परन्तु सदा सुख-दुःखका
न रुकता, चलता रहता, सखे,

" समय पाकर कर्म-विपाकसे
सुखदुखादिक भी मिटते सभी,
कथित है निगमागममें यही,
सुहृद, मुक्ति सदा अविनाशिनी।

" पर, तजो निगमागमकी कथा,
द्विज, निसर्ग लखो यह सामने,
यह न केवल है उपभोग्य ही
अति सुधी उपदेशक भी यही।

" निरखिए, यह पुष्प प्रसन्न हैं,
भ्रमर हैं इनपै मँड़रा रहे,
अरुणके पद छूकर जागते
मुदित सो रहते लख यामिनी।

" भ्रमरको मकरन्द, दिगन्तको
सुरभि देकर हैं यश लूटते,
स-मुद हैं चढ़ते हरि-शीसपै
पर प्रसून न भौंह सिकोड़ते।

" यह लखो वनमें तरु तालके
अति विशाल समुन्नत-भाल हैं,
पवनका मद पीकर व्योममें
स-मुद हैं सुख-संयुत झूमते।

" यह सभी तरु-गुल्म-लता, सखे,
परम तुष्ट बने तन-पुष्ट हैं,
यह विनोदमयी तरु-जीवनी
बन रही किस हेतु प्रहेलिका?

" विहग जो उनपै कल कूजते
वह कभी निजको न विनाशते,
निरखिए, अति मंजु प्रभातमें
परम मुग्ध स-हास निसर्ग है ।

" दुरित-दग्ध मनुष्य-समाजके
यह सभी उपदेशक हैं, सखे,
यजन-याजन एक यही यहाँ
प्रकृति-पाठ तपोधन जो पढ़ें ।

" द्विज पुनीत महामति आप हैं,
यदि कहीं जग-संग्रह-भाव हो,
मनुज-वृन्द गहें पथ धर्मका,
सकल संसृति मुक्ति-निधान हो ।

" विदित शिक्षक आप त्रिवर्गके
मनुज कौन तुम्हें फिर ज्ञान दे,
इस लिए यह ग्रन्थ निसर्गका
प्रकट है, कृपया पढ़ लीजिए ।

शार्दूलविक्रीडित

" पावें ब्राह्मण बुद्धि सत्य-तपसे रक्षा करें जातिकी,
सीखें पाठ सनातनी प्रकृतिसे त्यागें मृषा साधना,
सारे भूतलमें चरित्र-बलसे जो अग्रगामी बनें,
तो हिंसा मिट जाय एक क्षणमें निर्वाण-संसिद्धि हो ।"

वंशस्थ

उसी घड़ी देख पड़ी दिगन्तमें
वनान्तसे उत्थित धूमकी ध्वजा,
अनिष्टका आगम जानके उसे
स-तर्क सारे खग-वृन्द हो गये ।

पुनः हुआ शब्द सुदूर प्रान्तमें
महान अस्पष्ट परन्तु भीम जो,
विपत्तिका अग्रग मानके उसे
स-शंक सारे पशु-वृन्द हो गये ।

प्रचंड दावानल क्या अरण्यमें
लगा हुआ है, यह तर्क हो उठा;
कि युद्ध छेड़ा वनके समीप ही
अरातिसे राजगृहाधिराजने ?

विलोकनेको वह भीम धूमिका
चले यती साथ शकाधिनाथके,
समीपमें जाकर जो लखा उसे
स-वत्स मेष-व्रज नीयमान था ।

पुनः पुनः आजकको हँकारता,
चला अजा-जीव स-वेग जा रहा,
समूहको ले वह छाग-मेषके
चला वहीं काननके समीपसे ।

बटोरता छाग, उरभ्र हाँकता,
खदेड़ता दंड-प्रहारसे अजा,
महान ग्रामीण कुशब्द बोलता
चला अजापाल उसी घड़ी वहाँ ।

विलोक छागी युग-शाव-संयुता,
विपन्न थी जो निज-पुत्र-व्याधिसे
तुरन्त आगे बढ़के लखा, अहो !
शकेशने आजक-मेष-पुंजमें ।

प्रहारसे शावक पंगु हो रहा,
गिरा रहा शोणित एक पाँवसे,
स-दुःख धीमी गतिसे अधीर हो
अजाज पीछे छुटता हुआ चला ।

स्व-पुत्रको ताड़ित दंड-घातसे
विलोक होती जननी अधीर थी,
अभीत पीछे रहना असाध्य था,
प्रसह्य आगे बढ़ना अशक्य था ।

विलोकते ही प्रभुने अधीर हो
उठा लिया शावक शीघ्र अंकमें,
उसे लगाके निज कंठमें तदा
कहा, " सुने तू अयि, मंजु ऊर्णदे,

" चले जहाँ तू शिशु ले चलूँ वहीं,
न भीत हो देख मदीय कर्म तू,
सदैव मेरा प्रिय कार्य है कि मैं
हरा करूँ संकट जीव-जन्तुके । "

शकेश आगे बढ़ छाग-पालसे
स-प्रेम यों सत्वर पूछने लगे,
" सखे, कहाँको तुम जा रहे अभी
प्रचंड है आतप, तप्त भूमि है । "

कहा " प्रभो, राजगृहाधिराजके
निदेशका पालन-मात्र जानता,
सुना कि वे यज्ञ-विधानमें लगे
सहस्र आवश्यक मेष·छाग हैं। "

सुना जभी वृत्त उरभ्र-पालसे,
कहा , " वहीं मैं चलता अभी, सखे,
नृपाल देखूँ वह, जो अधर्मकी
नदी बहाता पशु-रक्त-पूरिता । "

लगी हुई थी बहु धूलि पादमें
ललाटपै शोभित स्वेद-बुन्द थे,
सहर्ष क्रोडीकृत-छाग-शाव वे
चले, लिये संग अजा स-रेंभणा ।

सुधी पहूँचे सरि-तीर तो वहाँ
लखा कि एका शव पुत्रका लिये
पछाड़ खाती सिर पीटती हुई
विलाप-मग्ना जल-ओर जा रही।

अभी हुई थी विधवा अभागिनी,
अपत्य आशा-प्रद एक-मात्र था,
परन्तु सो बालक खेलता हुआ,
डसा गया, हाय ! कराल व्यालसे ।

अपत्यको बाँध स्वकीय कंठमें
फिरी कराती बहु झाड़-फूँक भी,
न किन्तु भावी मिटती कदापि है,
कुभाग्य देखो, वह भी जिया नहीं ।

निराश्रिता होकर दीन कामिनी
हताश ज्यों ही वह डूबने चली,
तभी नदीके तटमें सुयोगसे
अनाथके नाथ शकेशको लखा।

विलोकते ही प्रभुको अनाथिनी
पछाड़ खाके गिर भूमिपै पड़ी,
अपत्यका तो शव दारु-खंड-सा
गिरा अहो ! श्रीचरणारविन्दपै।

अपत्य ज्यों ही पद-पद्मपै गिरा
तुरन्त संचेष्टित-गात्र हो उठा,
शकेशको देख हँसा सचेत हो,
विलोक माता-मुख रो पड़ा तदा।

अपत्यको जीवित देख प्राण ले
गिरी पदोंपै विधवा शकेशके,
सुवृत्त सारा पुरमें फिरा तभी
विलोकनेको जनता चली सभी।

स-हर्ष संजीवन-कार्य देखके
दिनेश अस्ताचल-धामको चले,
शकेश भी आजक-पाल-संगमें
चले मुदा राजगृहाख्य ग्रामको।

स राग हो अंतिम-रश्मि सूर्य भी
लगा छिपाने निजको दिगन्तमें,
प्रगाढ़ छाया प्रति-धामपै पड़ी
स्व-गेह प्रत्यागत गोप भी हुए।

स-छाग देखा जब पौर-वृन्दने
हटे त्वरासे पथसे शकेशके,
प्रविष्ट ज्यों ही वह ग्राममें हुए
विहंग बोले, विहँसे प्रदीप भी।

तुरन्त रोका घन लौहकारने,
रुके सभी वाद-विवाद पण्यके,
बिछी हुई थीं पथ-मध्य वस्तुएँ
सभी हटा लीं त पण्य-पौरने।

बने यहाँ निष्क्रिय तन्तुवाय, तो
हुए वहाँ लेखक त्यक्त-लेखनी,
शकेशको देख प्रसन्न नारियाँ
स-तर्क-सी होकर पूछने लगीं—

"कहो, सखी, सज्जन कौन जा रहे,
लिये हुए हैं बलि-छाग अंकमें,
अनंगको सांग बना रही लखो
मनोरमा कान्ति मुखारविन्दकी।

"लखो इन्हें, सुन्दर अंग-अंग हैं,
प्रसन्न हैं, कोमल हैं, स-तेज हैं,
प्रफुल्ल हैं लोचन पुंडरीक-से,
शशांक-सा आनन कान्ति-पूर्ण है।

"विसार-से, खंजन-से, कुरंग-से,
सरोज-से, लोचन पा गये कहाँ?
विलोकिए तो इनकी तन-प्रभा,
अनंग आया बनके सितांग ज्यों।"

सतर्क बोली अपरा विलोकके
“ यती वही आज प्रसिद्ध जो हुए,
सुना इन्हींके पदके प्रसादसे
अभर्तृकाका मृत पुत्र जी उठा। ”

प्रशान्त जाते प्रभु मार्ग-मध्य थे,
न देखते थे वह पण्य-वीथिका,
परन्तु सो संसृति-पार-वर्तिनी
ललाटपै अंकित थी प्रसन्नता।

विलोकते ही अति हर्ष-युक्त हो,
नृपालसे जाकर दूतने कहा:—
“ महान ज्ञानी मुनि एक आ रहे,
नरेश, यज्ञस्थलको विलोकने। ”

वितानमें संस्थित विप्र-मंडली
लगी हुई थी श्रुति-मंत्र-पाठमें,
पवित्र यज्ञस्थल-मध्य-शोभिनी
मखाग्नि-ज्वाला जलती ज्वलन्त थी।

पुनः पुनः भक्षण भूरि आज्यका
किये हुए, आग अनाग-रूपिणी,
पुनः पुनः पाकर हव्य और भी
प्रलम्ब-जिह्वा बनती प्रचंड थी।

नृशंस-कर्मा द्विज-वृन्दसे वहाँ
किये गये थे हत मेष-छाग जो,
हुआ उन्हींके बहु रक्त-पातसे
अलक्त यज्ञस्थल बिम्बसारका।

समीप ही जो अज दीर्घश्रृंगका
खड़ा-खड़ा रेंभण है मचा रहा,
निबद्ध है जो दृढ़ यज्ञ-यूपमें,
अभी उसीका बलिदान-बार है।

लखो, उठा याजक ले कृपाण भी,
खड़ा हुआ वेद-विधान बोलता,
"तुम्हें प्रभो, दैवत, प्राप्त हो अभी
प्रदान की जो बलि बिम्बसारने।

"करो वसा-गंध सहर्ष स्वीकृता,
ऋचा-पवित्रीकृत-रक्त देख लो,
प्रभो, इसीके सिरपै उतार दो
अनिष्ट मेरे यजमान भूपके।"

चला जभी विप्र कृपाणको उठा,
उसी घड़ी आ पहुँचे शकेश भी,
कहा पयोद-ध्वनि-तुल्य शब्दसे
"न मारने छाग, नृपाल, दीजिए।"

स-हर्ष आगे बढ़ यज्ञ-यूपसे
तुरन्त ही मुक्त किया वराकको,
विलोकके दृश्य खड़े रहे सभी
अशेष-आतंक-वितान छा गया।

कहा कि "प्यारे सबको स्व-प्राण हैं,
उन्हें न कोई तजता सुखेन है,
जिला नहीं जो सकता, न प्राप्त है
विनाशनेका अधिकार भी उसे।

" अशक्तके ही सम शक्तपै, सखे,
जमा सदासे जिसका प्रभाव है,
वही दया संसृति-मोक्ष-दायिनी
प्रसिद्ध है, सिद्ध करो न अन्यथा ।

" अशक्तके ही प्रति शक्तकी दया
महान कल्याणकरी विभूति है,
बना रही है कुछ कोमला यही
महान घोरा गति जीव-लोककी ।

" दया विराजे यदि, भूप, चित्तमें
तुरन्त निःश्रेयस-सिद्धि प्राप्त हो,
कहा गया ईश्वर विश्वमें वही
महादयासागर-नामधेय जो ।

" महान वैषम्य विलोकिए, सखे,
मनुष्य हो निर्दय चाहते दया,
न जानते है सब जीव विश्वके
विहार-निद्रा-भयमें समान हैं ।

" मनुष्यकी भाँति समस्त जीव भी
फँसे हुए हैं दृढ़ कर्म-जालमें,
रहस्य-पूर्णा विनिगूढ़-अर्थिनी
यथैव है मृत्यु, तथैव जन्म भी ।

" न भोग हैं त्याज्य, न कर्म हेय है,
विजेय निःश्रेयस है न घातसे,
न जीव है वध्य, न मृत्यु श्रेय है,
न प्रेय हिंसा, न विधेय पाप है ।

" न वध्य हैं आजके मूक यज्ञमें,
न यज्ञ है पार्थिव कामनामयी,
न कामनायोग्य अनिष्ट-भावना,
न भावना हिंसक-भाव-वर्तिनी ।

" महा पराधीन अबोध छागकी
स-मंत्र देते बलि देव-तृप्तिको,
अधर्मद्वारा गति रोक जीवकी
न सिद्ध होगी यह यज्ञ-वीरता ।

" स्व-धर्ममें है मरना, न मारना,
स्व-कर्म आवश्यक भोग्य-वस्तु है,
मनुष्य-भावी-दुखकी विभावना
न बैठती है उड़ छाग-सीसपै ।

" मनुष्यकी जो गति है शुभाशुभा
विपाक है सो सब पूर्व कर्मका,
विमुक्त होना उस कर्म-भोगसे
किसे नहीं सम्यक वांछनीय है ?"

सुनी सुवाणी प्रभुकी प्रशान्तिसे
दयाभिभूता द्विज-मंडली बनी,
नृपाल भी आसन छोड़ शीघ्र ही
खड़े हुए सम्मुख हाथ जोड़के ।

तदा सभीको लखते हुए कहा
शकेशने प्रेम-पवित्र भावसे—
" मनुष्य होते करुणार्द्र-चित्त तो
अवश्य होती सुखदा वसुन्धरा ।"

यदा हुआ भाषण बुद्धदेवका
समस्त यज्ञ-स्थल भंग हो गया,
तुरन्त फेंकी धृत हेति विप्रने,
नृपाल दौड़े पद-पद्मपै पड़े।

जगा दया-भाव नृपाल चित्तमें
तुरन्त ही की इस भाँति घोषणा—
"हुआ अभीसे वध बन्द राज्यमें,
न मांस हो भोजनमें, न यज्ञमें।"

प्रदक्षिणाकी नृपने मुनीन्द्रकी
सुने सुधा-वाक्य मुखारविन्दसे—
"महीपते, आप दयानिधान हों,
शनैः शनैः पाप सभी प्रशान्त हों।"

रुका तभीसे बलि-दान यज्ञमें
महा दया-धर्म-प्रचार यों हुआ,
महीपको दे उपदेश धर्मका
मुनीन्द्र भी वेणु-अरण्यको चले।

स्रग्धरा

नीचे पद्मासनस्थ स्तिमित दृग किये दृष्टि, अन्तर्हिता थी,
ऊँचे नासापुटोंमें अविचल स्वर थे सूर्य-चन्द्राख्य दोनों।
मध्यस्था योग-लभ्या प्रकटित लखते ज्योति आकारहीना
कैवल्याम्भोधिमें थे प्रतिपल रहते मग्न सिद्धाग्रणी वे।

१६—यशोधरा

द्रुतविलम्बित

सुत-वियोग-विपन्न-मनस्ककी
        कपिलवस्तु-धराधिपकी कथा
अमित क्लेश-प्रदायिनि क्लेशको
        अकथनीय महा दुख-पूर्ण थी ।

यदि किसी जनसे सुनते कभी
        सुभग वृत्त किसी यति-भिक्षुका,
त्वरित भेज वहाँ निज दूत वे
        नृपति मार्गण थे करते सदा ।

तज गया इस राज-निवासको,
        भटकता फिरता अब है कहाँ !
सकल-अंग-विपर्य्यय हो गया,
        न वह चिह्न रहे अब पुत्रके ।

परिनिवर्तित होकर दूत भी
विकलता अपनी कहते सभी,
विपुल यत्न किये नर-नाथने
तनुजका न पता पर पा सके।

पति-वियोग-विपन्न यशोधरा
निवसती दुखसे निज धाममें,
विकल मानसमें वसु याम ही
अचल बैठ रहा पति-ध्यान था।

प्रणय-गोपन कीट-समान ही
कर रहा अति पांडुर गंड था,
भृति-शिला-स्थित मूर्ति विषादकी
हँस रही वह थी निज भाग्यपै।

अति प्रचंड मनोभव-तापमें
हृदय भस्म हुआ उस नारिका,
पर न प्रेम घटा तिल एक भी,
यह कुतूहल-वर्धक बात थी।

धृति-तुलापर जीवन-प्रेमको
सतत तौल रहे खलु प्राण थे,
गत हुआ लघु जीवन कंठमें
हृदयमें गुरु प्रेम टिका रहा।

विषय-संग हुआ सब अस्त था,
नयन-उत्पल अर्ध खुले हुए,
श्वसन-श्वासन ध्यान-समाधिसे
बन गई कि वियोगिनि योगिनी।

अरुचि हार तथा घनसारसे,
कुरुचि थे करते दल कंजके,
बन गई अति खिन्न यशोधरा
शरद-आतप-तापित-केतकी ।

मालिनी

अब मधु-ऋतु आई, भूमिमें आ समाई,
विहग-निकर भी थे बोलते मत्ततासे,
अति अनुपम शोभा देखते ही बने जो,
बहु सुखद लसी थी प्रान्तमें काननोंके ।

कुसुम-निचयवाली भूमि सौन्दर्यशाली
नव-प्रणय-प्रणाली-संयुता सोहती थी,
प्रकृति सुरभियुक्ता, शैत्यसे हो विमुक्ता,
सहृदय जनको थी भूरि आनन्द देती ।

सुखद प्रकृतिने दी भूमिको मंजु शोभा,
मृदु परभृतको भी गंधने मत्तता दी,
स-रज सुमनने दी भृंगको भ्रान्तिमत्ता,
छवि सकल धरापै शोभनीया लसी थी ।

वह मनसिजकी जो पीठिका है प्रसिद्धा,
नव मधु-ऋतुकी जो भावना भूतिरम्या,
अति सुभग अनूठी दर्शकानन्ददात्री
विकसित सुषमा थी माधवी-वाटिकामें ।

नव कुसुम-दलोंपै, पल्लवोंपै, कलीपै,
सुभग सुफलपै भी मंजु शाखावलीपै,
उस उपवन-भूपै शोभिता नेत्र-रम्या
बहु सुखद सलोनी चारुता राजती थी ।

मुकुल-कुल-विभाकी रंग-भू दर्शनीया,
मृदु नवल कलीकी मंजुता लेखनीया,
अति सुभग धराकी रम्यता कीर्तनीया,
मधु-ऋतु-छवि फैली भूमिपै वर्णनीया।

फल-बहुल अगोंपै मंडली थी खगोंकी,
श्रुति-मधुर सुनाती कारिका गीति-मग्ना,
अतिशय सुखदायी बोल थे शावकोंके,
अभिनव तरुओंकी श्रेणियाँ पुष्पिता थीं।

अतुलित छविवाली वृक्ष-शाखा-प्रशाखा
स-मद अनिलद्वारा मत्त हो झूमती थीं,
बहु अरुण लसे थे पत्र सौन्दर्यशाली,
प्रकट कर रहे जो राग थे पादपोंका।

नव-किसलयवाली, शोभना पुष्पवाली,
अमित सुरभिवाली, भृंग-गुंजार-वाली,
विकसित-छवि-वाली बेलियाँ चारुतासे
विपिन-तरु-शिखापै शोभनीया लसी थीं।

ककुभ स-मुद थे, भू पुष्पसे संकुला थी,
सुमन-विटप भी थे युक्त उत्फुल्लतासे,
अति मुदित विहंगोंकी लसी मंडली थी,
परभृत करते थे शब्द उन्मत्तकारी।

रणित बहुल-शब्दा मंजु घंटावली ले,
मधुर मधु गिराता दानके वारि-सा ही,
तरुपर पद देता गर्वकी धीरतासे,
समद गज सरीखा अद्रिसे वायु आया।

वह अनिल चला जो पादपोंको लुभाता,
मधु-सुरभि बिछाता कुंजके प्रान्तरोंमें,
विकसित करता जो मंजु पुष्पावलीको,
अति मुदित बनाता भृंगके चित्तको था।

दुखद मधु लगा पै सुप्रबुद्धात्मजाको,
वह विरह-व्यथासे पीडिता हो रही थी,
तरु-विटप-लताएँ रक्त-पर्णा बनीं जो
वह अनल लगाके नेत्र ही दाहती थीं।

अलि-अवलि वनोंमें घूमती भ्रान्त-सी थी,
विरस बन चुकी थीं कोकिलाकी अलापें,
हृदय मथ रही थी पुष्पकी मंजु शोभा,
विदलित करता था वायु आमोदवाही।

उस समय विपन्ना सुप्रबुद्धात्मजा जा
निज सुत सँग लेके रोहिणी-तीर बैठी,
कलकल बहता था नीर स्रोतस्विनीका,
पर वह अति ही थी चिन्तिता क्लेशमग्ना।

ढलक पलकसे थे अश्रु आते क्षणोंमें,
उन कलित कपोलोंमें बसी पांडुता थी,
अधर विरह-दुःखोंसे बने शुष्क ही थे,
घन-छवि कबरी भी प्राप्त थी क्षीणताको।

सब अँग उसके थे रिक्त आभूषणोंसे,
अमित विरह-मग्ना कामिनी हो रही थी,
तनपर सित साड़ी घातिनी विज्जु-सी थी,
अतिशय दुखसे थी खिन्नता-युक्त गोपा।

वह पद, पतिके जो स्वागतोंमें सुखी हो
इभ-निभ हरते थे कंजकी मंजुताको,
कुछ चल कँपते हैं विप्रयुक्ता दशामें,
करि-कर-धृत जैसे काँपता वृक्ष रंभा ।

वह नयन, कभी थे स्नेहके दीपसे जो,
वह द्युति कढ़ती थी पुत्तली-श्यामतासे,
द्रुत-गति रथ लेके हो गया अस्त पूषा,
तजकर कुछ पीछे अंशुकी धूलि मानों ।

वह रहित हुए हैं ज्योतिसे लक्ष्यसे यों,
अब इस जगमें क्या देखना, क्या दिखाना?
ऋतुपति छविके ही संगमें सो रहे, या
छवि ऋतुपतिको ही प्रातमें आ जगावे ।

युग नयन नुकीले हो गये हाय! ढीले,
अति सुखद रसीले साँवले जो कभी थे,
अब वह न लखाते मीन-से कंज-से भी
हरि-ग्रसित-मृगी-से रिक्त-आशा हुए हैं ।

तजकर निकले थे वे जिसे यामिनीमें
उस कटि-पटको थी भेंटती खिन्न गोपा,
जब अति दुख पाती, सोचती, ऊब जाती,
दृग भरकर प्यारे पुत्रको देखती थी ।

उमड-घुमड़ आँखें श्याम कादम्बिनी-सी
बरस-बरस जातीं वक्षपै शीघ्रतासे,
रुक-रुक कर ज्यों ही देखतीं पुत्रको वे
मधुमय बनती थीं भृंगकी प्रेयसी-सी ।

वंशस्थ

समीप थी कोकनदाभिसंकुला
महा प्रफुल्ला सरसी सुहावनी,
प्रभात-पिंगा जिसमें खिली हुई
सरोजकी अर्ध-प्रफुल्लिता कली।

शकेशका लोचन-साम्य देखके
महादुखी पास गई यशोधरा,
स-दुःख सम्बोधित यों किया उसे
कहीं कथाएँ हृदयानुभूतिकी।

"अये, प्रिये, हे कलिके, अनूपमे,
पराग-गर्भे, अनुराग-रंजिते,
प्रफुल्ल-प्राये, अलि-संग-चेष्टिते,
न पूर्ण उत्फुल्ल बने कदापि तू।

"इसी दशामें तुझको लखा करूँ,
खड़ी यहींपै दिन-रात मैं रहूँ,
न मैं हटूँ और खिले न तू, प्रिये,
मिलिन्द भागें, रवि अस्त हो रहें।

"त्वदीय-जैसा मम बाल्य-काल था,
न ज्ञात था संसृति कौन वस्तु है,
समीर-दोला तुझको मिला यथा
तथा हिंडोला सुखका मिला मुझे।

"यथैव तू तोय-तलोपरिस्थिता
न जानती है महिको, न व्योमको,
तथैव मैं संसृति-सिन्धु-मज्जिता
न जानती थी सुखको, न दुःखको।

" परन्तु देखा जब नेत्र खोलके
लखा सभी विश्व प्रपंच-पूर्ण है,
यहाँ न है केवल प्रेम-वंचना,
वियोग है, वेपथु है, विषाद है ।

" प्रिये, अबोधे, कलिके, मनोरमे,
न तू हिले, हो स्थिर, बात कान दे,
न तू रुकेगी? तव डोलना, सखी,
निषेधका सूचक भासता मुझे ।

" रुके, सुने, मैं तुझ-सी रही कभी,
तडाग-सा अंगन था निकेतका,
सखी मिली थीं सकला कली-समा,
मनोहरा शैशवकी तरंग थी ।

" शनैः शनैः ज्ञान-प्रभात हो चला,
गता तमिस्रा अनभिज्ञता हुई;
उषा स-रागा हृदयाचलस्थिता
प्रकाशिता शीघ्र हुई मनोहरा ।

" सुगंधिता यौवन-वायु-दोलिता
विनोदिता थी सरसी-समान मैं,
परन्तु तू एक, मदीय दो प्रिये,
उगीं स-रागा कलिका विभावती ।

" दिनेशकी मंजु मयूख-मंडली
विलोक होती अब तू प्रफुल्ल है,
प्रिये, इसी भाँति कभी अवश्य मैं
हुई विमुग्धा लख शाक्यसिंहको ।

" मृणालिनी मंजु सुवृत्त-पल्लवा
चतुर्दिशा है सघना घिरी हुई,
अनूप तेरा लख रूप-रंग सो
स-हर्ष देती रविको बधाइयाँ।

" परन्तु तेरी छवि देख-देख मैं
हुई विपन्ना दुख-भार-वाहिनी,
मिली कहाँसे किस पुण्यसे तुझे
अनूप सिद्धार्थ-विलोचनोपमा ?

" अलक्त तेरा दृग-कोष क्यों, प्रिये ?
स्व-रोषका कारण तो बता मुझे,
विकार व्यापा तुझमें दिनेशका,
विचार आया अथवा निशेशका।

" विलोक तेरे इस रक्त रंगको
स-राग मेरे युग नेत्र हो रहे,
न बिम्ब तेरा, प्रतिबिम्ब है, प्रिये,
उसी धनीके अनुराग-रंगका।

" परन्तु मेरे इस विप्रयोगने
किये महा पाण्डुर अंग-अंग हैं,
समान-ही दुःखद था मुझे, सखी,
सरोज होता यदि पीतवर्णका।

" स-धौत-वस्त्रा बन विप्रयोगमें
हहा ! हुई हूँ हत-भागिनी महा.
कदापि होता मुझको न सौख्य जो
सरोज होता अवदात रंगका।

" विवर्ण सारी मम देह हो गई
 इसे कहें राग, विराग या कहें,
विलोचनोंके सब रंग धो गये,
 न श्वेत हैं, श्यामल हैं, न रक्त हैं।

" विलोक तेरी सुखदा प्रफुल्लता,
 पराग-गर्भा छवि मंजु कोषकी,
न क्या लखूँगी अब मैं शकेशके
 विलोचनोंकी महती मनोज्ञता।

" पवित्र-किंजल्क-समूह-संयुता
 बनी स-रागा, स-बिसा, स-पल्लवा,
विलोक तेरी सुषमा मनोहरा
 प्रसन्न होते प्रभु-पाद-पद्म थे।

" यथैव संध्यागमसे स-दुःख तू
 मलीन होती रविके वियोगमें,
तथैव मैं हूँ अति दुःख-पीडिता
 विषाद-मग्ना पति-विप्रयोगमें।

" परन्तु होते फिर शुभ्र प्रातके
 अहो! बनेगा अति सौख्य-पूर्ण तू,
अभागिनी केवल मैं, प्रसून, हूँ,
 न अन्त मेरे इस विप्रयोगका।

" विलोक जो अन्त-विहीन मार्गको
 महा दुखी होकर दीर्घ श्वास ले,
हताश हो बैठ गया विषादमें,
 प्रसून, रो तू उसके कुभाग्यपै।

“ प्रभाव हैं अश्रु मुदातिरेकके,
महान पीडा-फल एक मृत्यु ही,
परन्तु आशा सहगामिनी बनी
रुला रही है इस भाँतिसे मुझे। ”

शार्दूलविक्रीडित

आशा विश्व-विभासिनी, रँगमयी आदित्यकी रश्मि है,
संसारोदधिकी सुपुष्ट तरणी, त्रैलोक्य-संचारिणी।
ऐसी एक अलाप जो न अपरा देखी-सुनी ही गई,
गोपाके कल-कंठसे निकल यों गुंजार-युक्ता हुई।

द्रुतविलम्बित

भ्रमर एक उसी क्षण कंजपै
लख पड़ा भरता बहु भाँवरें,
निरखके वह राग मिलिन्दका
कथन यों उससे करने लगी—

“ जिस प्रकार प्रफुल्ल प्रसूनपै
सरस हो भरता, अलि, भाँवरें,
सुगतने उस भाँति कभी मुझे
कर विमुग्ध विवाहित था किया।

“ अहह ! वे दिन थे जब मैं खिली
मदन-मादन-सौरभ-युक्त हो,
दयितके दृग मत्त मिलिन्दसे
कर चले मुख-कंज-परिक्रमा।

" परम मानवती बन पद्म-सी
सिर हिलाकर मैं मुख फेरती,
प्रिय-शिलीमुख-लोचनको हटा
निरखती उनका पर मारना।

" सुमन, तू अलि-चुम्बनसे कभी
बन नहीं सकता इतना सुखी,
बन चुकी जितनी अनुरक्त मैं
अधर-चुम्बनसे शक-नाथके।

" दयितके प्रति चुम्बन-कालमें
नयन-मीलन मैं करती रही,
पर न तू, प्रिय, मीलित-नेत्र हो,
भ्रमरको करता रस-दान है।

" हृदय-हीन प्रसून विहाय तू,
भ्रमर, आ अब तो मम ओरको;
यदि त्वदीय तथागम देखके
प्रभु तथागत आगत हों कहीं।

" भ्रमर, तू मम आननसे कभी
उलझता अति था लख कंज-सा,
कर बढ़ा कर आकर शीघ्र ही
दयित वारित थे करते तुझे।

" अभय होकर आ मम पार्श्वमें,
अब सुदूर गये वह वीर हैं,
पर न तू टससे मस हो रहा,
भ्रमर, क्या मुझसे जग रुष्ट है ?

" यदि न आ, रम तू मकरन्दमें,
पर व्यथा सुन ले कुछ ध्यानसे,
अलि, मदीय समक्ष विलोक तू,
स्थल न है अनुमान-प्रमाणका ।

" कमल-केसरकी वह पीतिमा
सदृश है मम पीत शरीरके,
पर वहाँ अति सुन्दर सद्यता,
द्युति यहाँ विरसा मम गात्रकी ।

" यदि सुने दुखदा करुणा-कथा
मम व्यथा-गति भंग-मनोरथा,
मधुप, तो तुझको द्रुत ज्ञात हो
विकलता विरहाकुल चित्तकी ।

" भ्रमर, चंचल तू सुनता नहीं,
न तुझको कि वियोग-व्यथा हुई,
कि बनते सब भाँति सँयोगमें
विरहके क्षण स्वप्न-समान ही ।

" कुसुमको जिस भाँति, द्विरेफ, तू
स-सुख प्राप्त हुआ इस प्रातमें,
अब लखें कब शाक्य-कुमारके
पद-सरोज मिलें, सुख प्राप्त हो ।

" भ्रमर, कंटक-विक्षत-पक्ष तू
विलसता मकरन्द यथैव है,
उस प्रकार मदीय कटाक्षसे
दयित विद्ध हुए, सुख दे मुझे ।

" न वह हैं दिन, यामिनि भी न सो,
न दिन-यामिनि-ध्यान रहा मुझे,
विदित भेद हुआ मुझको, सखे,
मुनिगणाश्रित जीवन-वृद्धिका ।

" भ्रमर, तू मकरन्द पिया करे,
अयुत वर्ष स-हर्ष जिया करे,
सकल काल वियोग-विहीन हो
रम सरोरुहके मधु-कोषमें ।

" अलि, सदा मधु-पान प्रकाम हो
भ्रमण हो कुसुमोंपर सर्वदा
रमण हो स-पराग प्रसूनसे
यजन हो सुखसे रति-यागका ।

" मधुर गुंजन हो प्रति पुष्पपै,
चरण-पीडित हों शत-पत्र भी,
हृदय-द्वार खुला सुखसे रहे,
प्रणयका परिपूर्ण प्रवेश हो ।

" पर रुका क्षण भी न सरोजपै,
अलि बना अति निर्दय-चित्त क्यों,
त्वरित ही उड़ क्यों नभमें चला
बन कठोर गया किस हेतु तू ?

" खिल उठी कलिका क्षण एकमें
त्वरित ही वह रागवती बनी,
द्रुत हुई परिपूर्ण परागसे
भ्रमरने अपना कर यों तजा ।

शार्दूलविक्रीडित

" हैं रोलम्ब मिलिन्द आशु-गति भी रंध्रानुसारी सदा,
कीरोंकी गति पक्ष-पात-वश है, शुभ्रांशु तो व्याध-सा,
विख्याता कल कोकिला परभृता, पाथोदमें जाड्य है,
ऐसा कौन उदार जो दुखितका संदेश-वाही बने ? "

वंशस्थ

प्रवाहिता थी कुछ दूर सामने
महान धीरा अति चारुगामिनी,
प्रभातकी उज्ज्वल ज्योतिसे जगी
तरंग-तारल्य-तटा तरंगिणी ।

गता उषाकी अवशिष्ट लालिमा
अनूप थी अम्बर-बिम्ब-नीलिमा,
विराजती थी सित रोहिणी यथा
प्रसन्न-गंभीर-पदा सरस्वती ।

विलोक शोभा दुखसे यशोधरा
लगी नदीसे इस भाँति पूछने—
" प्रभूत-तारुण्य-भरे, पयोधिसे,
हिमाद्रि-भूते, मिलने कहाँ चली ?

" मदीय गाथा यदि चित्त दे सुने
शनैः शनैः तू बहती रहे, प्रिये !
विषाद मेरा कुछ-एक न्यून हो,
व्यतीत तेरा पथ हो मुहूर्तमें ।

" सजे हुए साज-सिँगार आज तू
कहाँ, नदी, वल्लभ-भेंटने चली,
न है समीचीन कु-प्रश्न पूछना,
न मैं बनूँगी प्रिय-प्राप्ति-बाधिका।

" अतः चली जा सुनती हुई कथा,
दयामयी तू अति-सौख्य-दायिनी,
बनी रहूँगी कब लौं, मुझे बता,
शकेश-प्रत्यागम-दत्त-मानसा ?

" न ध्यान आता उनको मदीय है ?
न धाम प्यारा अब क्यों रहा उन्हें ?
शकेशके स्वागतमें वृथा, सखी,
बिछा रही हूँ निज नेत्र-पाँवड़े। "

" बना चुकी मानस शिक्थ-तुल्य मैं,
शकेश होते फिर वज्र-तुल्य क्यों ?
स्वकीय सन्मूर्ति-समेत चित्तकी
चुरा चले चेतनता, कहाँ गये ?

" अहर्निशा एक शकेशके बिना
व्यतीत होता युग-तुल्य याम था,
अजस्र थी मैं उनको विलोकती
न देखते वे मम ओर आज हैं। "

विलोचनोंमें उनकी सु-मूर्ति है,
भरा उन्हींका अनुराग चित्तमें,
परन्तु तो भी दृगको रुला चले,
विमोह-प्याला मनको पिला चले।

" वियोग-मग्ना मुझ भाग्य-हीनके
न अंग ही शासनमें रहे, सखी,
अतः कहूँ क्या, अब मैं निराश हूँ,
स-दोषिणी मैं, जगती अ-दोषिणी। "

" अजस्र शोकाश्रु-प्रवाहिनी घटा
बसी हुई है मम शुष्क नेत्रमें,
परन्तु तो भी पद-पद्म-लालसा
लगी हुई है उर-मध्य अग्नि-सी।

" सहस्रधा होकर वक्ष फूटता
न यामिनीमें यदि श्वास छोड़ती,
समस्त होता तन भस्म-तुल्य ही
बहा न देती यदि वारि नेत्रसे।

" शकेशके दर्शन-हेतु मैं दुखी
कहाँ फिरूँ हाय! उपाय क्या करूँ?
धँसूँ धरामें, गिर अद्रिसे पड़ूँ,
मरूँ कि जीऊँ, मुझको बता, सखी!

" न भूलसे भी तव कूलपै कभी,
शकेश आते, फिरते न मोदसे?
कभी पधारें यदि तो सुना उन्हें
व्यथा-कथा दीन मदीय चित्तकी।

" परन्तु तू तो बहती हुई चली
विमुग्ध हो संगमको समुद्रके,
न मानती है शुभ क्या यथार्थ ही
वियोगके वाक्य सँयोग-कालमें?

" चली कहाँ तू खग-पक्ष्म-चंचले,
सुकम्बु-कंठे, सरि, मीन-लोचने,
प्रिये, कहानी सुन ले मदीय जो
सुदीर्घ है, दुःखद है, दुरन्त है।

" महा प्रसन्ना, अनुराग-संयुता,
अदोलिता नीर-प्रवाहसे, सखी,
उपस्थिता कंज-कली प्रफुल्लिता
विलोकती है तत्र शोभना छटा।

" समस्त शृंगार किये हुए मुदा,
नदी, चली यों प्रिय-संगमार्थ है,
विलोकती हूँ अति ही प्रचंड मैं
भरे हुए यौवनकी अवाधिता।

" तरंगसे अस्थिर एक देशमें
प्रसार-जैसा बन स्निग्ध कांतिका,
प्रशस्त फैला युग-तीर-तोयमें
असेत शैवाल-समूह बाल-सा।

" महान गंभीर अतीव शोभना,
अनंग-उत्पादन-कर्म-पंडिता,
अनूप आवर्त-प्रभामयी छटा
सुरम्य है गूढ़ गभीर नाभि-सी।

" विलोकनीया छविसे नितान्त ही
समन्विता है जिसकी विशालता,
स-हर्ष तेरे तटपै विराजते
उरोजसे सुन्दर कोक-युग्म हैं।

" अनूप रोमावलि है प्रवाह-सी,
तरंग-सी है त्रिवली मनोरमा,
बनी-ठनी यों सुखसे चली कहाँ ?
पयोधिके संगमको, तरंगिणी ?

" परन्तु आ तू मुझमें समा सखी,
मदीय है चित्त पयोधि-तुल्य ही,
विकार हैं नक्र-तिमिंगिलादिसे
वियोगका वाडव भी प्रचंड है।

" न तू समाये मुझमें कदापि तो
प्रविष्ट होऊँ तुझमें तुरन्त मैं,
अशक्य है जीवन धारना मुझे
असह्य है पावक विप्रयोगका।"

द्रुतविलंबित

दुखित हो इस भाँति यशोधरा
रुदन थी करती हत-तेजसा,
पुलिनपै उस काल समक्ष ही
विचरता कल हंस मनोज्ञ था।

विहगको लखके, उससे तभी
कथन यों दुखसे करने लगी,
ठहरके वह भी सुनने लगा
विरह-व्याकुल मानसकी कथा।

मन्दाक्रान्ता

" प्यारे पक्षी, अतिशय सुखी संग ले स्वीय हंसी,
मेरे आगे विहर तनमें आग क्यों तू लगाता ?
संयोगीको निरख मनमें विप्रयुक्ता दुखी हो
संतापोंकी विषम गुरुता झेलती है कृशांगी।

" तेरी शोभा अमित सित है; लालिमा चंचुकी जो
अंगारोंकी अवलि-सम सो चित्त मेरा जलाती,
है पक्षोंपै नव-विधु-कला जो महा शोभनीया,
सो भी मेरे नयन-पटपै वज्र-सी टूटती है।

" ब्रह्माका भी प्रवहण बना, यान है भारतीका,
मोती ही तू सतत चुगता मानसावास भी है,
देखा जाता विलग करते क्षीरको-नीरको तू,
न्यायी होना कठिन अति है किन्तु है सौख्यदायी।

" संतापोंको हरण करना, भक्तको ज्ञान देना,
नेत्रोंको भी निज वदनसे मुग्ध होना बताना,
दूताचारी सुजन बनना, साथ लेना स्व-वामा,
पक्षी, तू तो अनघ रँगमें, कृष्ण चारित्र्यमें है।

" तू मेरा था सहचर कभी, मान ले बात मेरी,
क्यों तू, पक्षी, अदय बनके दे रहा घोर पीड़ा ?
श्रोताको तो उड़कर नहीं घेरते दुःख देखा,
जो होते हैं सदय वह ही धन्य हैं मेदिनीमें।

" तारे मेरे युगल दृगके, भूपके जो दुलारे,
प्यारे सारे नगर-जनके धामसे हैं पधारे,
आया कोई अबतक नहीं दूत लाया सँदेसा
जाके तू ही कथन कर दे, मित्र, मेरी व्यथाएँ।

" जाना मेरे दयित-ढिग तो मानना बात मेरी,
पीछे पीछे तज न उड़ना प्रेयसीको सखे, तू,
तेरा जोड़ा निरख उनको ध्यान मेरा कहीं हो,
तो तू होगा सफल पलमें उद्यमोंके बिना ही।

" वाणीसे तू रहित खग है, क्या कहेगा-सुनेगा,
ले जा मेरी लिखित दुखकी पत्रिका चोंचमें ही;
जाके मेरे दयित-पदपै डालना नम्रतासे,
श्रीमानोंसे विनय करना धर्म है आश्रितोंका ।

" तू प्यारा था मम दयितको ध्यान होगा तुझे भी,
नाराचोंसे व्यथित तुझको नाथने ही बचाया,
तेरा त्राता अब न मुझको त्राण देता, सखे हे,
फूलोंसे भी मृदुल मनके वज्र-से क्रूर होते ।

" तू प्यारा था हृदय-धनको, वे मुझे चाहते थे,
संबंधी तू खग इसलिए मित्र मेरा पुराना;
प्यारे पक्षी, मम हित सधे, पत्रिका ले वहाँ जा,
भद्रोंके ही चरण रचते क्षेम हैं मेदिनीमें ।

" मोती खाके सुहृद जब तू बोलता वर्णमाला
शुभ्रा धारा-सदृश कढ़ती शोभना मंजुवाणी,
श्रोताओंका हसित उसकी शुभ्रताको बढ़ाता,
गौरांगोंकी सकल जगमें ख्याति पाई गई है ।

" तू सो प्राणी विलग करता क्षीरको नीरको जो,
तेरी वाणी अनृत-रहिता, युक्त है सत्यतासे,
देखूँ कैसे मम प्रिय नहीं मानते बात तेरी,
श्रद्धा होती अविचल सदा सत्यकामी जनोंमें ।

" धन्या भूमें दयित-रमिताराम-सी दक्षिणाशा,
प्यारा न्यारा मलय-गिरिका धन्य है मातरिश्वा,
शोभाशाली प्रिय-छवि वहाँ मानसोन्मादिनी है,
जो हैं साधु स्थल सब उन्हें संपदा-युक्त होते ।

" जाते जाते विपुल सरिता मार्गमें आ मिलेगी,
होंगे पक्षी स-मुद कितने खेलते निर्झरोंमें,
सीधे जाना, विरम रहना तू वहाँपै न प्यारे,
ज्ञानी सारे विषय तजके ध्येय ही चाहते हैं ।

" ज्यों ही ऊँचा उठकर, सखे, व्योममें जा उड़ेगा,
देखेगा तू प्रतनु कुटिला रोहिणी मेखला-सी,
शोभाशाली निरख छविको लौट आना न, प्यारे,
वीरोंको है उचित मरना, पाँव पीछे न देना ।

" हंसोंकी भी अवलि तुझको जो मिले रोदसीमें,
तो तू, पक्षी, न रम रहना व्यर्थ पंचायतोंमें,
सीधे जाना, सुकृत करना, शीघ्र देना सँदेसा,
सत्कार्योंमें, विहग, बहुधा विघ्न आते घने हैं ।

" देखे कोई विकल यदि तू मार्ग-भ्रष्टा मराली,
कासारोंसे दयित उसका ढूँढ़ लाना मिलाना;
झेलूँगी मैं विरह-दुखको दो घड़ी और यों ही,
निष्ठा हो तो प्रणय-धनको काल भी गौण ही है ।

" कान्तारोंपै मुदित बनके जो समुड्डीन होना,
पंखोंसे दे पवन वनकी देवियोंको सुलाना,
संयोगीको, विहग, विरहीको सदा प्रेय निद्रा,
देखो कैसी अमित महिमा मोहकी है महीमें ।

" जो ग्रामोंके भवन-छदिपै दारिका घूमती हों,
हंसोंका-सा गमन करना तू सिखाना उन्हें भी,
जाते जाते विदित करना, सीख लेंगी क्षणोंमें,
कन्याओंका प्रकृत गुण है शीघ्र ही योग्य होना ।

" यों ही, मेरे खग, निरखना चारुता वारिदोंकी,
जीमूतोंसे विलग रहना दूर ही दूर जाना,
जो जावेगा निकट उनके क्रौंच-सा ज्ञात होगा,
होते प्राय: भ्रमित लखके शुद्ध सादृश्य प्राणी ।

" प्यारे, भूके निकट इतना आ न जाना कभी तू,
जो बाणोंसे वधिकगणके विद्ध हों पक्ष तेरे,
ऊँचे-नीचे, खग, न उड़ना, व्योमके मध्य जाना,
श्रेया भूमें सकल जनको मध्यमा वृत्ति ही है ।

" मोती तेरे धवल गलमें बाँध दूँ पोटलीमें,
इच्छा हो तो स-मुद चुगना, साथ पाथेय ले जा,
पानी पीना पर न रुकके, नाथ देखे न जौ लौं,
सद्यः देता फल व्रत वही निर्जलीभूत जो हो ।

" कासारोंपै, गहन तरुपै, जो रुके ह्लादिनीपै,
तो तू थोड़ा विरम वनिताको, सखे, शान्ति देना,
जायाको ले गमन करना छोड़ देना न यों ही,
स्वामीको है अनुचित महा त्यागना आश्रितोंको ।

" जो तू देखे सुहृद, झरते मार्गमें निर्झरोंको,
तो आँखोंमें त्वरित उनका चित्र भी खींच लेना,
आगे जाके मम दयितके आँसुओंको गिराना,
वाक्योंसे क्या? यदि न बनता कार्य हो इंगितोंसे ।

" जो वृक्षोंपै विहग अपने कोटरोंमें बसे हों,
शिक्षा देना निकल कण ला शावकोंको खिलावें,
यों ही माता-तनुज-सुख है विश्वमें वृद्धि पाता,
देखी जाती अमित महिमा स्नेहकी सर्वदा है ।

" कोई पक्षी स-रुज, अथवा विद्ध हो शायकोंसे,
जाता हो जो स-दुख नभमें, व्याधिमें जो फँसा हो,
तो तू प्यारे, विरम करके धैर्य देना उसे भी,
संतापोंको शमित करना धर्म है साधुओंका।

" जो देखे तू विहगपर हो श्येनका वार होता,
तू है पक्षी, पहुँच ढिगमें पक्ष लेना दुखींका,
है वैरी पै निरख तुझको मित्र होगा पलाशी,
तेजस्वीके निकट पलमें द्वेष भी प्रेम होता।

" कासारोंपै, तरु-अवलिपै, वापिकापै, द्रुमोंपै,
उद्यानोंपै, कुसुम-चयपै, दृष्टि जो डालना तू,
तो मार्गोंमें थम न रहना वात-सा, तात, जाना,
मेरे-जैसे दुखित जनको है त्वरा वांछनीया।

" अच्छा, तो तू त्वरित खग, जा, हों जहाँ प्राणप्यारे,
जानी मैंने अबतक नहीं सो स्थली पुण्यशीला,
तो भी थोड़ी अनुमिति मुझे है, तुझे मैं कहूँगी,
लिप्सा हो जो प्रबलतम तो मुक्ति भी प्राप्त होती।

" तू पक्षी है, गगनचर है, क्या तुझे मैं बताऊँ,
सीमासे भी रहित पथ तू नीडका ढूँढ़ लेना,
इच्छागामी विहगवर तू, नाथपै जा सकेगा,
योगी, भोगी, अनिल, मनका नाम है कामचारी।

" शोभाशाली सदनपर तू भूलसे भी न जाना,
ऊँचे ऊँचे भवन तजना, देखना भी न नीचे,
सोते होंगे मम प्रिय नहीं स्वर्णके आलयोंमें,
ज्ञानी-ध्यानी स्वगृह तजके घूमते हैं वनोंमें।

" जाना, प्यारे, न उपवनमें युक्त आमोदसे जो,
किंजल्कोंमें भ्रमर रमते हों जहाँ मत्ततासे,
उन्मत्तोंका जमघट कहीं, बन्धु, होता नहीं है,
दो खड्गोंको गृह न मिलता एक ही कोषमें है ।

" कुंजोंमें, हे विहगवर, तू स्वप्नमें भी न जाना,
वे प्राणीको व्यथित करते मारके शायकोंसे,
मेरा प्यारा रति तज तथा कामको छोड़ भागा,
द्वन्द्वातीता प्रकृति जनकी कामना-हीन होती ।

" उद्यानोंमें नवल अबला झूलती हों जहाँपै,
होंगे ऐसे स्थलपर नहीं प्राणप्यारे हमारे,
होंगे बाबा वह न जिनके संगमें चेलियाँ हों,
एकाकी ही भ्रमण करते 'एक' को खोजते जो ।

" धामोंमें जो श्रवण करना गीत होते कहीं हों,
तो तू जाना ढिग न उनके मार्ग ही छोड़ देना,
वीणा प्यारी अब न उनको जो पड़ी गेहमें है,
शिक्षा लेता प्रकृत रवसे नाद-ब्रह्मानुरागी ।

" जाना प्यारे तुम न पुरकी पण्य-वीथी जहाँ हों,
आती-जाती सकल जनकी मंडली हो जहाँपै,
ऐसे ग्रामों, सघन नगरोंमें न तू पाँव देना,
योगी होते विजन-प्रणयी और एकान्तवासी ।

" मेरे प्यारे विहग, सुन ले मैं बताती तुझे हूँ,
बैठे होंगे जिस विजनमें प्राणप्यारे हमारे,
पक्षी तू है समझ उनके रूपको रंगको ले,
चिह्नोंद्वारा परिचय विना ज्ञान होता नहीं है ।

" जैसी होती शरद-ऋतुकी उज्ज्वला मेघमाला,
प्यारेका भी विमल तन है स्वच्छता-युक्त वैसा,
दोनों कंधे वृषभ-सम हैं, वक्ष है वज्र-सा ही,
राजाओंका वदन रहता युक्त वर्चस्वितासे ।

" वर्षा-सी जो उमड़ पड़ती मौलिपै शान्ति-शोभा,
नेत्रोंसे जो झलक उठती स्वच्छ स्वर्गीय आभा,
हंसोंका वे गमन लखके मुग्ध होते महा हैं,
जो स्नेही हैं, सरलचित हैं, सौख्यशाली वही हैं ।

" बैठे होंगे विजन वनमें या किसी कंदरामें,
कासारोंके निकट अथवा निर्झरोंके तटोंपै,
या होंगे वे प्रणव जपते तीर देवापगाके,
शुद्धात्माको त्वरित फलदा जापकी प्रक्रिया है ।

" जो बैठी हो उपल-गठिता मूर्ति पद्मासनस्था,
तो तू जाके निकट उसको देखना धीरतासे,
अंगोंको यों निरख लखना चिह्न मेरे बताये,
सीधी-सादी अनुमिति सदा बुद्धिमत्ता नहीं है ।

" लंबा-चौड़ा अवनि-तल है, साधु भी सैकड़ों हैं,
जो खोजेगा मम दयितको तो मुझे मान्य होगा,
पक्षी, तेरी प्रथित मति है, न्यायकारी बड़ा तू,
जो न्यायी है सुजन वह ही पा सका सौख्य भी तो ।

" बैठे होंगे गहन-सरके तीरपै प्राणप्यारे,
एकाकी वे जगतपतिके ध्यानमें लीन होंगे,
आती होगी तरल-तरला अश्रु-धारा दृगोंसे,
ब्रह्मानन्दी पुरुष करुणामूर्ति हो राजते हैं ।

" मेरे प्यारे हरि-चरणके ध्यानमें मग्न हों जो,
तो तू धीरे उतर नभसे पार्श्वमें बैठ जाना,
मौनी मुद्रा निरख उनकी तू, सखे, मूक होना,
सत्कार्योंका अनुकरण भी पुण्य-भागी बनाता।

" श्रीपादोंपै, सुहृद, पहले पत्रिका डाल देना,
केंकारोंसे मम दयितका खींचना ध्यान पीछे,
ज्ञानी तू है पहुँच ढिगमें युक्तिसे काम लेना,
कार्यार्थीको सुख-दुख सभी एकसे भासते हैं।

" जो बैठे हों दयित तटपै, सामने ह्रादिनी हो,
तो कूलोंके कमल-वनमें जा बुलाना प्रियाको,
संश्लेषोंसे विदित करना, इंगितोंसे बताना,
खो देता है सकल दुखको भेंटना कामिनीका।

" जो देखें, तो दल-निचयको चोंचसे नोंच, प्यारे,
अंभोजोंको, सुहृद, जलमें शीघ्रतासे डुबोना,
वे भी जानें कि मुख दृगके वारिसे धो रही हूँ,
बैठे-ठाले रुदन करना दुःखितोंकी क्रिया है।

" कासारोंमें भ्रमण करके रक्त अंभोज लाना,
धीरे धीरे सरक उनके पाँवपै डाल देना,
वे भी देखें कि वह विधुराका कलेजा नहीं है,
भूमें जीवे चिर विषमता-साम्यका मंजु जोड़ा !

" तेरी वाणी सुखद उनको सर्वदासे रही है,
धीरे धीरे ध्वनित करना सर्वशः रोदसीको,
गाना अच्छा यदि न लगता हो उन्हें, तो न गाना,
रोना भी तो सकल जनको, मित्र, आता सदा है।

"तेरी पीडा हरण करनेके लिए, प्राण-प्यारे,
धीरे धीरे जब उठ चलें वे तुझे त्राण देने,
वैसे ही तू, सुहृद, उड़ना शीघ्र मेरी दिशाको,
लीलाशीला प्रकृति कितने ही खगोंकी सुनी है।

"पीछे पीछे दयित लपकें मित्र, आगे बढ़े तू,
ऐसे ही जो मम सदनको नाथको खींच ला तू,
तो तू मेरा परम प्रिय हो, पूज्य हो, तू हितू हो,
मोती दूँगी, विहग, तुझको हेमकी थालियोंमें।"

द्रुतविलंबित

इस प्रकार असंयत ध्यानमें
वह प्रियागम-स्वागत सोचती
उठ खड़ी परिरंभणको हुई
विकलता-वश खिन्न यशोधरा।

पर उसी क्षण आकर गौतमी
सुखद वृत्त मुदा कहने लगी,
अयुत श्रोत्रवती बन कामिनी
श्रवण आतुर हो करने लगी।

"त्रपुष भल्लिक नामक सेठ दो
नृप-सभा-स्थित आकर जो हुए,
कथन हैं करते वह भूपसे
सब कथा शक-राजकुमारकी।"

सुन सुवाक्य स-हर्ष यशोधरा,
उमँगने अति आनँदमें लगी,
सलिल-संयुत सावनमें यथा
उमड़ती सरिता तट-भंजिनी।

चल पड़ी वह भूपति-धामको
पति-कथा सुनने गत-धैर्य हो,
मति मराल-प्रशंसक थी अभी,
गति मराल-विनिन्दक हो गई।

शार्दूलविक्रीडित

आशा अद्भुत इन्द्र-चाप-छवि है वर्षान्त आकाशकी,
संध्याके रवि-अंशु-सी जलदको विच्छिन्नता-दायिनी,
बंदीकी निजतंत्रता, सरुजी है स्वस्थता-स्थापना,
प्रेमीकी अति सौख्यदा विजय है, संपत्ति है रंककी।

१७—दर्शन

वंशस्थ

वसन्तका अंतिम सांध्य काल था,
दिनेश थे पश्चिम दिग्विभागमें,
खगोलमें उत्थित वज्र-तुंड भी
शनैः शनैः श्यामल वृक्षपै गिरे।

समोद लौटे पशु-यूथ ग्रामको,
स-गान गोपालक साथ साथ थे,
प्रवृत्त थी पावन-कारिणी घटी
पुनीत वेला शुभ धेनु-धूलिकी।

प्रलम्ब छाया तरु-पुंजकी बनी,
लसीं शिखाएँ सब हेमवर्णकी,
खगावली पल्लव-मध्य-वर्तिनी,
हुई सुराराधनमें प्रवृत्त थी।

पयोद-रेखा सित-पीत-रक्तिमा
स-भंगिमा पश्चिमके ललाटपै
दिगन्तमें जाग्रत स्वप्न-सी बनी,
लसी क्षपा-नाटक-रंगभूमिपै।

दिनान्तमें पंकज बन्द हो चले,
मिलिन्द बन्दी कल कोषमें हुए,
बलाक तीरस्थ-अरण्य-वृक्षपै
विलोकते थे शुभ स्वप्न मीनके।

समीर भी कानन-प्रान्तसे चला,
सुगन्ध फैली रजनी-प्रकाशकी,
प्रसन्न हो सत्वर मन्द हो चली
तरंग सोने सर-तीर-अंकमें।

प्रशान्त है व्योम, समीर शान्त है,
नितान्त निस्तब्ध बनी वसुन्धरा,
यथा महानीरव स्वप्न स्वप्नमें
विलोकता नीरवता महान हो।

तडाग, कान्तार, निकेत, खेत भी
विभिन्न छायामय भासने लगे,
सभी सुधा-दीधिति-तंत्र-हीन-से
प्रशान्त वादित्र समीरके बने।

दिनान्तमें शावक-प्रेम-बद्ध हो
शकुन्त आये अपने कुलायमें,
प्रवाससे आगत पण्य-विक्रयी
चकोर भार्या-मुख-चन्द्रके बने।

परन्तु आये अब लौं न धामको
त्रिलोक-संपूजित शाक्य-केसरी,
कहाँ पधारे किस हेतु विक्रमी
भुला पिता-पुत्र-प्रदीपदर्शिनी।

यथा ऋणीको दिन दीर्घ कालके,
वियोगिनीको रजनी समायता,
तथैव शुद्धोदन खिन्न-चित्तको
मुहूर्त भी विस्तृत कल्प-कल्प था।

नरेश-चिन्ता हृदयान्तरिक्षसे
विलोक संध्या दृग-नीडको चली,
परन्तु हो चंचल-चित्त बीचमें
समा रही थी बलिमें कपोलकी।

विशाल शुद्धोदन-भालपै लसीं
अनेक रेखा अति खिन्न भावकी,
नृपाल-निद्रा सब धूलमें मिली,
कुमार-आशा शश-शृंग हो गई।

उसी घड़ी आकर राज-धाममें
नरेशको ज्ञापित सेठने किया—
" प्रभो, विलोका हमने स्व-नेत्रसे
त्रिलोक-संपूजित-पाद-पद्मको।

" अधीनके मित्र, दरिद्रके सखा,
त्रिलोकके जीवन, प्राण प्राणके,
सदा परे जो भव-आधि-व्याधिके
प्रसन्न हैं, यों कहना विडम्बना।

" प्रकाशसे मंडित नग्न मुंड है,
प्रदीप्त है कान्ति मुखारविन्दपै,
ललाट तेजोमय शान्ति-युक्त है,
स-राग हैं लोचन देव-देवके ।

" यथा यथा वे फिर चक्र-वात-से
मुदा सुनाते उपदेश लोकको,
तथा तथा मानव शुष्क पर्णसे
बने शकेशानुविधेयशील हैं ।

" दिविष्ट-कान्तार अपार पूत भी
न क्षीरिका काननके समान है;
जहाँ महाधर्म-रहस्य-रूप वे
अभी समासीन त्रिलोक-नाथ हैं । "

तदा महाधर्म-प्रचारकी कथा
नृपालने विस्तृत रूपसे सुनी;
दिया पुरस्कार, विदा किया उन्हें,
चले गये सेठ स-हर्ष गेहको ।

महीपने आतुर हो उसी घड़ी
बुला सदा-उद्यत अश्ववार नौ,
तुरन्त ही काननको विदा किये,
स-पत्र संदेश दिया स्व-पुत्रको—

" विना तुम्हारे मुझको विषादमें
व्यतीत संवत्सर सप्त हो गये,
पता लगाते, बहु दूत भेजते
मदीय तो अंतिम काल आ गया ।

" वहाँ नहीं काननमें प्रमोद है,
कठोर है कंटक-ग्राव-शेखरी,
यहाँ तुम्हारा सब राज-पाट है,
यशोधरा है, सुख है, समृद्धि है । "

तदा बुला दूत-समूह गेहमें
यशोधरा यों कह भेजने लगी—
" अमा-समा देख वियोगकी निशा
बनी चकोरी मुख-चन्द्रकी दुखी ।

" यथा दुखी कैरविणी दिनान्तमें
विलोकती मार्ग निशाधिराजका,
अशोक-वल्ली जिस भाँति चाहती
रजस्वला-पाद-प्रहार है, प्रभो !

" तथा तुम्हारा पथ मैं विलोकती,
स-प्रेम छूना पद-पद्म चाहती,
विलोचनोंका, मनका स्वभाव है,
विलोकना स्नेह-समेत चाहना ।

" कहीं नृपालोचित-गेह-त्यागसे
हुआ बड़ा हो यदि लाभ आपको,
मुझे न कोई सुख और चाहिए
मदीय अर्धांगिनि-अर्ध-भाग दो । "

तुरन्त ही वाचिक दूत ले गये
जहाँ समासीन समन्तभद्र थे;
सुना सुधीसे जब सार धर्मका
नरेशका भूल गये निदेश वे ।

निमेषमें ही अनिमेष हो गये,
खड़े रहे चित्रित चित्र-लेखसे,
सुनी जभी व्याहृति बुद्धदेवकी
रही नहीं चंचल वृत्ति चित्तकी।

दयामयी, शान्तिमयी, सुधामयी,
महा पवित्रा गुरु ज्ञान-दायिनी,
हुए सभी मूक, अहो! यदा सुनी
प्रसन्न-गंभीर-गिरा शकेशकी।

द्विरेफ जैसे निज गेहको तजे
चले, पहूँचे, सरि-तीर मुग्ध हो,
परागका पान करे प्रकाम जो
महान-आनन्द-निमग्न-चित्त हो;

निलीन हो यों मकरन्द-पानमें,
लखे न संध्यावृत कंज-कोष भी,
प्रमोदमें भूल स्वकीय देह सो
अखंड-आनन्द-निलीन-ध्यान हो।

हुए उसी भाँति विदेह दूत भी
मनोरमा व्याहृतिसे शकेशकी,
रहा नहीं ध्यान उन्हें स्व-कर्मका
बने सभी भिक्षु विहाय वासना।

यथैव वैश्वानर स्वीय हव्यको
तुरन्त देता निज रूप-रंग है,
तथैव विज्ञान-विधान दान दे
किया उन्हें दीक्षित बुद्धदेवने।

अनेक बीते दिन, मास भी गये,
मिला समाचार कुमारका न, हा!
फिरे न प्रत्युत्तर ले सवार भी,
हुए महाराज अधीर खेदमें।

परन्तु निश्चिन्त न मुख्य दूत था,
विचारता था उपयुक्त काल जो,
स-मंत्र दे वाचिक बुद्धदेवको
यशोधराका, शक-मंडलेन्द्रका।

मिला उसे जो अवकाश एकदा,
गया सुधी अंतिक बुद्धदेवके,
विनीत बोला वह प्रेष्य भावसे—
"प्रभो, सुनें एक मदीय प्रार्थना।

"उठा कृपा-धाम, विचार चित्तमें
न एकदेशीय निवास युक्त है,
सुने कभी हैं भवदीय वाक्य भी
'विशेष हो जंगम-भाव भिक्षुमें।'

"प्रयाण हो जो निज जन्म-भूमिको
बड़ा भला हो पुर-भूप-नारिका,
प्रसन्न हों पौर, स-नाथ हो धरा,
विमुग्ध हों भूप, सुखी यशोधरा।"

विलोक आकर्णविलोचनान्त लौं
स-हर्ष बोले भगवान भिक्षुसे—
"अवश्य ही जन्म-धरा विलोकना
मदीय है धर्म, त्वदीय प्रार्थना।

" सदैव स्वर्गादपि जो गरीयसी,
त्रिलोककी संपतिसे महीयसी,
वरिष्ठ है आदर जन्म-धामका,
गरिष्ठ है गौरव मातृ-भूमिका ।

" नृदेव ही हैं जननी तथा पिता,
न पुत्र चूकें निज धर्ममें कभी,
उपासनासे उनकी मनुष्यको
अवश्य निःश्रेयस-प्राप्ति शक्य है ।

" स्व-धर्म-निष्ठा जिसमें अखंड हो
निविष्ट-निर्वाण-निवेश है वही,
अवश्य ही पातक-पुंज-नाशसे
प्रवेश पाता नर पुण्य-धाममें ।

" विसर्ग, दाक्षिण्य, दया, उदारता
समेत जो जीवनको बिता सके,
विलेखनीया उसकी सुमूर्ति है
प्रशंसनीया उसकी सुकीर्ति है ।

" अवश्य ही मैं स्व-पिता-निदेशके
विशेषतः पालनमें समर्थ हूँ,
कहो महाराज-समीप जा, सखे,
' सदा शिरोधार्य निदेश तातका ' । "

द्रुतविलंबित

चर चला प्रभु-वाचिक ले यदा
कपिलवस्तुपुरी प्रति शीघ्र ही,
विदित वृत्त तदा सब राज्यमें
नृपति-नंदन-आगमका हुआ ।

मुदित पौर सभी रचने लगे
भवन-द्वार अपार उमंगमें,
सज उठे प्रिय-दर्शन मार्गमें
सुगत-स्वागत-साज-समाज भी।

तन गया पुर-दक्षिण-द्वारपै
परम चित्र-विचित्र वितान भी,
अवलियाँ गुण-विद्ध प्रसूनकी
विलसतीं जिनमें अति मंजु थीं।

स-घट-मंगल-द्रव्य-वितानमें
विशद वंदनवार सजे गये,
परम दिव्य सिंहासन भी लगा
नृपति-नंदनके अभिषेकको।

प्रचुर पातित पावन नीरसे
नगरके पथ पंकिल हो गये,
स-दल मंजरियाँ सहकारकी
वसन-मंडप-मंडनशील थीं।

लसित तोरणपै पवमानसे
फहरता हरता मन केतु था,
वसनमें जिसके विरचा गया
सहित-स्वर्ण-वरंडक पुष्करी।

बज रहे बहु डिंडिम झाल थे,
सुमुखियाँ करतीं कल गान थीं,
जन खड़े पुर-दक्षिण-द्वारपै
नृपति-नंदन-स्वागतमें सभी।

परम-हर्षित-चित्त यशोधरा
चढ़ चली शिविकापर पुत्र ले,
नगर-बाहर जाकर सुन्दरी
रुक गई पति-स्वागतके लिए।

नगरके नर-नारि प्रमोदमें
सब समूढ़ हुए पुर-द्वारपै
जन अनेक चढ़े तरु-शृंगपै
निरखते पथ थे शकनाथका।

सुगत-स्वागत-आनँद-सिन्धुमें
सब निमग्न हुए नर-नारि यों,
सुखद दर्शनको शक-चन्द्रके
उमड़ते सबके हृदयाब्धि थे।

पथिक जो कढ़ता उस मार्गसे
परिसरस्थ सभी यह पूछते—
"यदि लखा कृपया बतलाइए
नृप-कुमार कहाँतक आ गये?"

पथिक-उत्तर भी सुनती हुई,
नयनसे लखती प्रिय-मार्गको,
श्रवणपै रख पाणि समुत्सुका
स्थित हुई गत-धैर्य यशोधरा।

तब अचानक देख पड़ा उसे
पट कषाय धरे तनपै यती,
सँग लिये स-कमंडलु भिक्षु दो
कर प्रसार चला वह माँगता।

मनुज जो स्थित थे उस मार्गमें
लख मुनीन्द्र हुए कृत-कृत्य वे,
फिर बढ़ा युग-तापस-अग्रणी
समुद पत्तनके प्रतिहारको ।

नयन थे परिपूरित प्रेमसे
झलकती मुखपै कल कान्ति थी,
अति अलौकिकतामय भिक्षुका
गमन गौरव-युक्त गभीर था ।

लख उन्हें बनते सब चित्र-से
लकुट-से गिरते पद-पद्मपै,
नयनसे निकली सुख-अश्रु हो
न तनमें मुद-राशि समा सकी ।

निरख कान्ति अपूर्व शरीरकी
सब उपांशु परस्पर पूछते,
" यदि कहीं परिचायक चिह्न हों
कथन क्यों न करो, यह कौन हैं । "

इस प्रकार समीप शनैः शनैः
जब तथागत आगत हो गये,
त्वरित पाट-कपाट खुले तभी
स्थित हुई पथ-मध्य यशोधरा ।

हट गये पट श्वेत पयोद-से,
खुल गया मुख पूर्ण सुधांशु-सा,
सिसकती 'पति, आर्य' पुकारती
गिर पड़ी प्रभुके पद-पद्मपै ।

वंशस्थ

सुना जभी भूपतिने कि द्वारपै
खड़े हुए राजकुमार भिक्षु-से,
हुए महाक्षुब्ध प्रकोप-युक्त वे,
तुरन्त वात्सल्य विलीन हो गया।

न साथ है भूपतिका दरिद्रका,
न साम्य नीलाम्बरका कषायका,
किरीटके योग्य न नग्न मुंड है,
प्रभुत्वका प्रेम न निर्धनत्वसे।

उठे जरा-श्वेत स्व-गुंफ ऐंठते,
स-रोष उर्वीपति दाँत पीसते,
समस्त सामन्त-समेत गेहसे
तुरन्त ही कंपित-ओष्ठ हो चले।

चतुर्दिशा देख अराल दृष्टिसे,
हुए समारूढ़ तुरन्त वाजिपै,
चले महाराज समाज साथ ले
विलोकनेको निज पुत्रकी दशा।

चढ़े हुए चंचल सिन्धुवारपै
बढ़े स-सामन्त नृपाल मार्गमें,
प्रवृद्ध होता पथमें शनैः शनैः
अजस्र नारी-नरका समूह था।

विलोकनेको जिसको स्व-नेत्रसे
मनुष्य एकत्र हुए असंख्य थे,
उसी महा भिक्षुकको विलोकके
अ-रोष हो भूपति शान्त हो गये।

नृमाल-व्यग्रानन देख भूपकी
        रही नहीं पूर्व मनःप्रवृत्ति भी,
मुहूर्तमें नम्र-विनीत हो गये
        स्व-तात-सम्मान-धुरीण नेत्र भी ।

विलोक शालीन स्वभाव पुत्रका
        नृपालको हर्ष हुआ अतीव था,
कुमारका हंस-स्वरूप देखके
        कली हुई पुष्प मनस्सरोजकी ।

शरीर था स्वच्छ, प्रभाव प्रेय था,
        विभूति थी भव्य, चरित्र दिव्य था,
विलोक सद्भाव स्वभाव बुद्धका
        नितान्त ही शान्त नृपाल हो गये ।

तथापि बोले नृप खिन्न-चित्त हो
        " विरंचि, तेरी यह दुर्विदग्धता !
कषाय-कंथा सज, राज्य त्यागके
        हुआ महाराज-कुमार भिक्षु है !

" सुकीर्तिमें, शासनमें, प्रभावमें
        नृपाल-चूडामणि शाक्य-वंश है,
स-कंप होके जिसको कभी, सभी
        विलोकते थे सुर अर्घ्य-दृष्टिसे ।

" उसी यशस्वी सुकृती सु-वंशमें,
        सुपुत्र, संभूत हुए, न भूलिए,
पिता दुखी हो यह सामने खड़ा,
        विशाल साम्राज्य त्वदीय दाय है ।

" पड़ी हुई दीन वधू निकेतमें
मलीन है क्षीण अधीन-चित्त है,
बिना तुम्हारे मुझको अजस्र ही
किरीट है हेय, अनेय राज्य है।

" स-राग होता वनका निवास भी,
विराग भी शक्य स्वकीय गेहमें,
मनुष्य जो आश्रय पुण्य-कर्मके
उन्हें तपोभूमि-समान धाम है।

" न जानती थी पहले यशोधरा
कि आप आते पहने कषाय हैं,
सुवर्णवस्त्रान्वित हो न सो सती
स्व-कान्तके स्वागतको पधारती।"

नृपालको देख विनीत भावसे
स-हर्ष मन्दस्मित देव हो उठे,
विलोकना ही उनका उसी घड़ी
नरेश-संबोधन-हेतु हो गया।

यशोधराके दृग दिव्य ज्योतिसे
विशाल हो अश्रु-विहीन हो गये,
दिनान्तकी ओस यथा सरोजपै
अदृष्ट होती लख सु-प्रभातको।

द्रुतविलंबित

सब समागत मानव भेंटके
जनकके पद छूकर बुद्धने
अमृत-स्रावक भाषण जो किया
वह महाजन-संस्मरणीय है।

शार्दूलविक्रीडित

"भूके गोल खगोलमें विरचते ऐसे महा विक्रमी,
लेते चक्र दशावतार गतिका भूके समुद्धारको,
हो निर्द्वन्द्व कपाल-पाणि-पुटसे हैं माँगते भीख भी,
ब्रह्मा विष्णु तथा उमापति सभी आधेय हैं कर्मके।

"थी उत्पत्ति दिनेश-वंश-विभवा, थे राजराजेन्द्र जो,
जाया थी जनकात्मजा छविवती शुद्धा शुभा सौख्यदा,
पाते थे भुजदंडकी न समता देवाग्रणी विष्णु भी,
वे भी धातृ-विडंबना-वश गये श्रीराम कान्तारको।

"मान्धाता नरपाल सत्य-युगके जो भूषणीभूत थे,
राजा राघव वासुदेव बलि भी थे वीर-भूपाग्रणी,
ऐसे ही शिशुनाग आदि नृप थे आदित्यसे जो तपे,
वे साकल्य चिताग्निके बन गये, है नामशेषा मही।

"आपाथोधि-समस्त-विस्तृत मही पर्य्यंकके तुल्य है,
चारों ओर वितान नील नभका चन्द्रार्क-संयुक्त है,
योगीके वशमें विरक्ति रमणी है मोद-उद्भासिनी,
क्यों मानें वह उच्च भूप-पदवी जो वीतरागी सुधी?

"भेदाभेद-विचार भी न जिनको माया तथा मोहमें,
कार्याकार्य न कर्म शेष जगमें निर्मूल-संदेह जो,
जो सर्वत्र प्रपूर्ण शून्य नभ-सा हैं ब्रह्मको जानते,
वे ही साधु निषेध और विधिकी सीमा नहीं मानते।"

द्रुतविलंबित

इस प्रकार उन्हें समझा-बुझा,
स-मुद ले सबको पुरको चले,
सुगतने उस वासरसे, अहो!
नगरकी कुछकी कुछ की दशा।

१८—निर्वाण

शार्दूलविक्रीडित

काशीसे वृष-यानसे यदि कभी ईशानको जाइए,
आगे है शुभ सारनाथ-महि जो है पुण्यशीला महा;
यों ही जाकर पाँच-सात दिनमें आती वही मेदिनी,
लोगोंसे बहुधा हिमाद्रि-हिम भी देखा जहाँसे गया।

फूलोंसे फलसे लदे झुक रहे हैं मंजु शाखी जहाँ,
शोभासे परिपूर्ण हैं अति घनी आरामकी राजियाँ;
वृक्षोंकी पड़ती जहाँ सुरभिता छाया मनोमोहिनी,
जाते ही नर-चित्त-वृत्ति लहती स्वर्गीय आनन्द है।

काले प्रस्तरपै जहाँ जम रहे प्राचीन वल्मीक हैं,
अश्वत्थादि अनेक दीर्घ तरुकी हैं श्रेणियाँ शोभना,
संध्याको जब मन्द मन्द बहता आराममें वायु है,
होती है छवि-राशि भूमि-तलकी संबद्ध आनंदसे।

मिट्टीके अब ढेर ही बन गये सौन्दर्य्यके धाम वे,
जो थे अद्रि समान उच्च गृह वे सर्वसहामें मिले,
भूपोंकी पद-पीठपै अब बसी गोमायुकी मंडली,
सारे चिह्न समृद्धिके मिट गये, भू झाड़-झंकाड़ है।

वैसे ही सर-दीर्घिका-जलधिगा इत्यादि हैं सोहतीं,
शोभा किन्तु पुरातनी वसतिकी है स्वप्न-सी हो गई,
थे शुद्धोदन नामके नृप जहाँ, है राजधानी वही,
होते थे उपदेश बुद्ध प्रभुके देखो यहींपै कहीं।

क्या ही काल अपूर्व था जब रही सौन्दर्ययुक्ता मही,
चारों ओर मनोरमा अवलियाँ आरामकी थीं यहाँ,
घंटा-मार्ग विशाल विस्तृत बड़े, प्रासाद उत्तुंग थे,
धारा-यंत्र रहे अनेक चलते नैसर्गिकी भाँतिसे।

धामोंपै बहु पन्नगारि सुखसे संनृत्य-संलग्न थे,
उच्चस्तम्भ-अलिन्दयुक्त नृपका प्रासाद था सोहता,
द्वारोंपै नव तोरणादिक लसे, शोभा महा मंजु थी,
बैठे श्रीभगवान बुद्ध सबको ले संगमें एकदा।

संध्या-काल पुनीत था शुभ घड़ी थी पूर्णिमा ज्येष्ठकी,
बैठा पश्चिममें सरोज-प्रिय था, राकेश था पूर्वमें;
डोला मारुत मन्द मन्द गतिसे आनन्द देता हुआ
बैठे श्रीभगवान सूर्य-विधुके मध्यस्थ हो सर्वथा।

होते निष्प्रभ सैकड़ों रवि जहाँ, लाखों निशानाथ भी,
संख्या कौन गिनें वहाँ भगणकी, पाते तिरोधान जो,
ऐसा शून्य-स्वरूप रूप लखके वारेश राकेश भी
थोड़ी देर रुके स-संभ्रम, अहो! अस्तोदयाहार्यपै।

बैठे श्रीभगवान, और जनता बैठी उन्हें घेरके,
आई थी सुनने स-हर्ष सुखदा ज्ञेया गिरा मुक्तिदा,
देती सन्मति जो सदा कुमतिको, निर्वृत्ति उद्विग्नको,
विख्याता भव-पाशको विकट जो है खंड-धारा-समा।

बैठे श्रीभगवानके निकट ही राजा महामोदसे,
चारों ओर प्रसिद्ध शाक्य कुलके सामन्त आसीन थे,
आये थे प्रिय देवदत्त सँगमें आनन्द शारेय भी,
कैसी ज्ञान-प्रधान शाक्यमुनिकी सिद्धास्पदा थी सभा।

चारों ओर इतस्ततः निरखता सारंगके शाव-सा,
बेटा राहुल पासमें जनकके था चैलको खींचता;
गोपा श्रीभगवानके चरणमें बैठी महामोदसे
पीड़ाएँ जिसकी वियोग-जनिता सारी व्यतीता हुई।

कैसा प्रेम विशुद्ध बुद्ध-प्रति था, स्वर्गीय आनन्द था,
भोगा जा सकता कभी अवनिमें जो इन्द्रियोंसे नहीं,
आया जीवन ताप-तप्त तनमें, तृष्णा मिटी भौतिकी,
गोपा तो अब सत्य ही सुगतकी अर्धांगिनी हो गई।

जायाको अब नव्य-जीवनमयी संजीविनी-सी मिली,
देती शाश्वत आयु जो, न जिससे आती कभी वृद्धता,
देखा अन्तिम दृश्य देख जिसको आती नहीं मृत्यु भी,
धन्या है वह सुप्रबुद्धतनया बुद्धांगना शोभना।

बैठी ले पति-वास-कोण सिरपै सौभाग्यमें मुग्ध हो,
धारे सव्य स्वकीय हस्त करपै श्रीबुद्धके स्वामिनी,
थी आसीन सप्रेम सन्निकटमें ऐसे महातीर्थके,
वाणीको जिसकी त्रिलोक सुनके होता विनिर्मुक्त है।

आये जो सुनने त्रिलोकपतिकी वाणी महा मोक्षदा,
संख्या थी उनकी अनन्त, गणानातीता महाशेषसे,
थे प्रत्यक्ष खड़े, परन्तु उनसे लाखों गुने और भी
अप्रत्यक्ष असंख्य पितृ-सुर भी संबोध-सुश्रूषु थे।

सारी देव-अदेव-लोक-अवली यों शून्यगर्भा हुई,
मानों सृष्टि समस्त ताप-भवसे थी पीडिता आ गई,
पापी नारकमें पड़े सड़ रहे, वे भी चले मुक्त हो,
तोड़ा बन्धन बोधसे निरयका, एकत्र हो आ गये।

सारी चेतन-सृष्टिको प्रिय लगी शुद्धा गिरा बुद्धकी
थे सारंग मृगेन्द्र-संग सुखसे बैठे लवा-श्येन थे,
उत्साहान्वित वीचि-संग जलमें थे कूदते मीन भी,
आये कीट-पतंग भी जब वहाँ तो अन्यकी क्या कथा ?

चारों ओर फले हुए विटपपै बैठे हुए कीश थे,
संध्या भी अनुराग-रंग-सहिता थी झाँकती अद्रिसे,
आई सुन्दर यामिनी उदित हो पूर्वा दिशासे मुदा
जो थी मंजु तुषार-रश्मि-धवला संस्तुत्य नीलाम्बरा।

कैसी सुन्दर क्रीड थी प्रकृतिकी, कैसा सुखी काल था,
शीता सौरभ-गर्भिता अचपला थी वायुकी संपदा,
क्या ही पूर्ण निशेश-तुल्य मुखसे वाणी कढ़ी मुक्तिदा,
हो निस्तब्ध सभी चराचर गये, श्रीबुद्धने यों कहा—

"ऐसा है वह शून्य ब्रह्म जिससे आकाश भी स्थूल है,
पारावार अगाध भी न जिसकी पाते कभी थाह हैं।
जाना आदि न अंत भी न जिसका ब्रह्मा तथा विष्णुने,
सत्ता है जिसकी अखंड जगमें, ब्रह्माण्डका मूल जो।

"सो है गोचर बुद्धिको न मनको तो नेत्रकी क्या कथा ?
ऊहापोह मृषा मनुष्य-मतिका, सो कल्पनातीत है।
दृश्या केवल कार्य-कारणमयी संसारकी योजना,
घूमी जो बन काल-चक्र जगमें सत्ता सुराराधिता।

"जैसे सूर्य स्वकीय स्वर्ण-करसे कीलालको खींचता,
जो हो अम्बुदकी घटा गगनमें सर्वंसहा सींचता,
प्राणी-मात्र तथैव कर्म-वश हो संसारमें घूमते,
है आयान-प्रयाण काल-गतिसे कीला हुआ जीवका।

"ब्रह्मा नित्य अपार सृष्टि रचते, श्रीनाथ हैं पालते,
स्वेच्छासे प्रतिवार नष्ट करते कंकालमाली उसे,
क्या आश्चर्य त्रिदेव कर्म-वश हैं, सारे पराधीन हैं,
एका केवल ब्रह्म-शक्ति रहिता है काल-कर्मादिसे।

"सोता रंक निशीथ-मध्य, उठता प्रत्यूपमें भूप हो,
राजा भी बनता अकिंचन कभी, संसार निस्सार है,
ऐसा चक्र अलक्ष्य-भेद-युत हो ब्रह्माण्डमें घूमता,
भूमें क्या स्थिरता, महान सुख क्या, विश्राम क्या, शान्ति क्या ?

"देखो शक्ति सनातनी यह वही है कर्मके वेषमें,
धारे है जड़-जंगमादि सबको जो धर्मके नामपै,
कल्याणी जगका निसर्ग करती है सिद्धिस्वत्वोन्मुखी,
ऐसी शाश्वत-रूपिणी कि रहिता है आदिसे अंतसे।

"होते स्पर्श प्रफुल्ल पाटल हुए, धीमे हँसी मल्लिका,
वाटी सौरभ-युक्त सुन्दर हुई, राजीव फूले सभी,
श्वेता प्रत्युषकी प्रभा लख पड़ी, संध्या बनी रागिणी,
ऐसा है जिस शक्तिका बल वही माया मनोमोहिनी।

" माया ही वह इन्द्रचाप रचती आकाशके अंकमें,
देती है हरितत्व मंजु शुकको, धावल्य भी हंसको,
केकीके रचती विचित्र रँग है लीलावती उत्तमा,
होती विज्जु पयोदमें, गगनमें तारा, शशी, अर्यमा ।

" छाया, चेतन-शक्ति, बुद्धि, कमला, श्रद्धा, दया, स्वामिनी,
लज्जा, शान्ति, स-भ्रान्ति कान्ति अथवा जो तुष्टि या पुष्टि है,
तृष्णा, क्षान्ति, सुवृत्ति जो गुणमयी देवासुराराधिता
माया मूर्तिमती अमूर्त प्रभुकी, त्रैलोक्य-संचारिणी ।

" देखो गूढ़ रहस्य, विश्व-जननी कैसी निगूढ़ा बनी,
माया-मंडित अंडजा छविवती होती कपोती झषी,
सो ही गोमय-अंशसे विरचती बिच्छू विषैले बड़े,
चींटी-मीन-विहंग मार्ग गहते भू-नीर-आकाशका ।

" प्राणीको करती अचेत पलमें घोरा बुभुक्षा वही,
देती है क्षणमें जला गहनको दावाग्नि हो दारुणा,
देखो दुर्दमनीय वाडव बनी पाथोधिमें भी तपी,
बैठी हो वह दुग्ध मातृ-कुचमें, भेकारिमें क्ष्वेड हो ।

" हैं भू-गोल ख-गोल, दो छविवती तुम्बी स्वरान्दोलिनी,
देखो, दीधिति-तार वार-पतिके कैसे खिंचे व्योममें,
क्या ही सुन्दर अद्वितीय छविसे ब्रह्मांड-वीणा सजी,
कैसी वादन-तत्परा, छवियुता है शक्तिकी तर्जनी ।

" माया आकर-मध्य नीलमणि हो, माणिक्य हो, रत्न हो,
बैठी काननमें अनूप छवि हो, सौन्दर्य हो, कान्ति हो,
आई होकर द्रव्य, सौख्य, प्रभुता, संगीत, बाला, सुरा,
सत्ता है वह ही निगूढ़ फलमें जो गुप्त है बीजमें ।

" है सर्वत्र प्रवृत्त जो गतिवती सत्ता परब्रह्मकी,
सो है नित्य, अमोघ, सत्य, सफला, संभाविनी, शाश्वती,
माया शान्ति-स्वरूपिणी, छविमयी, कल्याण-संयोजिनी,
शुद्धा, ब्रह्म-विकार-सार-सरसा, आद्यन्तसे हीन है ।

" प्राणी जो करते वही भुगतते, बोते वही काटते,
पीड़ा, दुःख, विषाद, शोक फल हैं पापाश्रिता वृत्तिके,
जो है पुण्य-प्रसाद पूर्व-कृतका सो हेतु है सौख्यका,
देखो कर्म-प्रधान विश्व जिसकी सीमा ध्रुवा शक्ति है ।

" क्यों अंभोधि पयोद-रूप रखता ? क्यों मेघ होता नदी ?
क्यों झंझानिल शीतमें उमड़ता ? क्यों ग्रीष्म निर्वात है ?
कैसे पल्लव-पुष्प-युक्त वनमें दावाग्नि है व्यापती ?
देखो, चेतन-शक्ति एक प्रभुकी गूढ़ा अदृश्या महा ।

" जो सत्कर्म-परा प्रवृत्ति रखके संसारको झेलता,
सारे दुःख स-हर्ष भोगकर जो कल्याणको खोजता,
जो गंभीर विनम्र न्याययुत हो, औदार्यसे पूर्ण हो,
प्राणी जीवन-वासना-रहित हो, जीता वही मुक्त है ।

" देखो, जो वह सामने पुरुष है बैठा सभा-कोणमें,
जो दारिद्र्य-स्वरूप देख पड़ता सो सिद्ध है, मुक्त है,
यावच्छक्य सदैव दान करता, मिथ्या नहीं बोलता,
तीनों हैं इस वज्रको कुसुम-सी हिंसा, सुरा, सुन्दरी ।

" ऐसे ही जन वृत्ति-बंधन बिना देखे गये मुक्त हैं,
होती जो इनकी कहीं बहुलता, तो थी धरा स्वर्ग ही,
पाँवोंपै इनके किरीट नृपके हैं लोटते नित्य ही,
मन्दा कान्ति-विहीन रत्न-अवली होती नख-ज्योतिसे ।

“ श्रद्धावान, सुजान, धीर, सुकृती, गंभीर, योगी, गृही,
जो हैं शुद्ध-चरित्र वीर विनयी, निर्वाण पाते वही,
प्राणी जो उपकारमें निरत हैं, वे सौख्य ही भोगते,
नाना क्लेश उठा-उठाकर अघी होते दुखी नित्य ही

“ जो हैं प्रेम-दया-समुद्र जन वे निर्बंधके पात्र हैं,
श्रद्धा है जिनमें निवास करती वे भक्तिके सिंधु हैं,
सृष्टामें अनुराग नित्य रखते, वे धर्ममें लीन हैं,
प्राणी जो निज कर्ममें निरत हैं वे स्तुत्य हैं, पूज्य हैं ।

“ भाई, इन्द्रिय-भोगसे गुरुतरा कोई नहीं वागुरा,
द्वेषीसे बढ़के न हीन जगमें, क्लेशी न आसक्त-सा,
हिंसासे अधिका न दुष्कृति कहीं देखी गई विश्वमें,
निर्वाणास्पद हैं वही विरत हों जो उक्त दुर्वृत्तिसे ।

“ श्रद्धा-भक्ति-पयस्विनी, गतिवती, सत्कर्म-संप्लाविनी,
सौख्यावर्तमयी, विमुक्त-सुखदा, पुण्य-प्रसूनावृता,
सर्वांशा जिसमें निगूढ़ रहती सद्धर्म-रत्नावली,
सो निर्वाण-स्वरूपिणी बह चली पीयूष-धारा नदी ।”

वाणी श्री भगवानकी उस घड़ी गंभीरभावा हुई,
प्राणी-मात्र निमग्न हो वचनमें डूबे सुधा-सिंधुमें,
ऐसा भाव अगाध था न तलको पाते कभी शेष भी,
वाणी भी न समीप थी पहुँचती, ब्रह्मा न सानिध्यमें ।

सारी रात्रि समन्तभद्र सबको संबोध देते रहे,
ऐसा ज्ञान-प्रकाश था कि अधिका राका हुई उज्ज्वला,
निद्रा, मोह, प्रमाद और जड़ता संसारसे यों उठे,
माया-नाटककी यथा यवनिका आतुर्य्यसे हो उठी ।

तारा शुक्र प्रभात-अग्रसर हो प्राची दिशामें उगा,
प्रातः वायु चला हिमाद्रि-तटसे, आशा हुई रंजिता,
शोभा मंजुल नव्य जीवनमयी फैली मुदा विश्वमें,
सारे जीव उठे स-हर्ष सुनके पीयूष-वाक्यावली ।

भूके ऊपर एक दिव्य सुखका संचार होने लगा,
प्राणी-मात्र प्रसन्न हो सुगतकी आज्ञा लगे मानने,
छाया धर्म-प्रभाव भूमि-तलपै, हिंसा मिटी सर्वथा,
नाना दान-विधानसे नर लगे सद्धर्मको पालने ।

माहेयी श्रुति विप्रको, नृपतिको उर्वी हुई श्रृंगिणी,
उस्रा वैश्य-समूहको कृषि हुई, सेवा सुरा शूद्रको,
चारों वर्ण प्रसन्न-चित्त रत थे श्रीबुद्ध-संबोधमें,
डूबे धर्म-पयोधिमें मिट गया संसारका ताप था ।

राजा भी सुन धर्म धैर्य धरके ऐसे विरागी बने,
भूला ध्यान स्व-देहका जनक-से ब्रह्मर्षि ही हो गये,
हो संबुद्ध यशोधरा बन गई संन्यासकी पुत्तली,
शुद्धा ब्रह्म-स्वरूपिणी सुगतकी सर्वांगिनी हो गई ।

सारे द्वेष, कुभाव, दंभ, छल या दारिद्र्यकी आपदा,
पीडा, शोक, विषाद, रोग भवमें पाते तिरोधान थे,
यों ही नीच परस्व-मूषण-परा पाखंडकी मंडली,
जाके सप्त समुद्रके क्षितिजपै थी नामशेषा हुई ।

सारे वृक्ष उदार-चित्त फलते थे फूलते सर्वदा,
गोभी सुन्दर रोहिणी-सम हुई स्निग्धा चतुर्हायनी;
पृथ्वी शस्य समस्त रत्न-चय भी देती महामुग्ध थी,
देते भानु-मयूख थे नव सुधा, पीयूष भी चन्द्रमा ।

ऐसा शुद्ध प्रभाव बुद्धप्रभुका फैला धरा-धाममें
भागी निस्वनतामयी कुमति भी, डंका बजा ज्ञानका,
जागे जीव-समूह धर्म-मय हो निद्रा गई पापिनी,
देनेको जगको सदाचरणकी शिक्षा चले भिक्षु भी।

यों ही श्रीभगवान देश-भरमें संबोध देते रहे
भूले या भटके मनुष्य उनसे पाते महा मार्ग थे,
ऐसी ज्योति जगी समस्त महिमें सन्मार्ग सारे खुले
लोगोंने प्रभु-मंत्र ले स-कुल की निर्वाणकी साधना।

ध्यानावस्थित हो जिसे निरखते योगी, यती, संयमी,
जो है भानु-कृशानु-कारणमयी त्रैलोक्य-उद्भासिनी,
ऐसी ज्योति जगी कि भूमि-तलपै आनन्द होने लगा,
भक्तोंके प्रतिगेहमें द्रुत हुई कल्याणकी स्थापना।

आस्था वेद-पुराणमें बढ़ गई ऊँची ध्वजा धर्मकी,
श्रद्धा गो-द्विजमें जगी अतिशया क्षोणी हुई हर्षिता,
गंगा पावन प्रेमकी अवनिपै ऐसी बही सर्वगा
डूबा विश्व कृपानिधान प्रभुकी लीलामयी भक्तिमें।

वंशस्थ

सदा इसी भाँति समस्त देशको
अनूप देते उपदेश धर्मका,
महा महामैत्र समन्तभद्रको
व्यतीत पैंतालिस वर्ष हो गये।

चलायमाना गति है त्रिलोककी
विलीयमाना सब विश्व-संपदा
शकेश मानों इस एक सत्यको
चले पुनः स्थापनको नृलोकमें।

विदेह हो, केवलज्ञान-मग्न हो,
अनंग हो, संसृति-अंग-लग्न हो,
अनादिकालीन प्रभा प्रसारके
अनन्तदेशीय शकेश हो गये ।

व्यतीत था देह-अशीति-वर्ष भी
न शेष भू-भार, न शेष भार था,
अतः, महामंगल-राशि, अन्तमें,
चले कुशी-नामक एक ग्रामको ।

समीर पंखा झलता स-हर्ष था,
चला सुखाता श्रम-वारि-बुन्द भी,
वितान था अंबरमें पयोदका
बिछा रहे पुष्प-समूह वृक्ष थे ।

पुनः पुनः श्रीघन-पाद-पद्मको
विलोकते अन्तिम वार प्रेमसे,
छिपे कर-ग्राम-समेत सिन्धुमें,
स-भक्ति अस्तंगत भानु हो गये ।

परन्तु सन्ध्या कुछ देर लौं रुकी,
स-लालिमा पश्चिम-दिग्विभागमें ।
स-तार तारापति पूर्वमें उगे,
यदा पहूँचे भगवान ग्राममें ।

कुशी-निवासी-गण-चित्तमें उठी
उमंग आनंद-तरंग-सी तदा,
यथा सुराराध्य-मुखारविन्दके
परागका एक-शतांश इन्दु हो ।

हुए महा मंगल धाम-धाममें,
स-पुत्र माता निकलीं निकेतसे,
प्रमुग्ध हो धेनुक धेनुसे मिले,
चले सभी स्वागतको शकेशके।

न जानते थे वह आज रातको
प्रयाण होगा जगसे शकेशका;
मनुष्यता है अति स्वार्थतत्परा
स-प्रेम जिज्ञासु हुई स्वधर्मकी।

समीप ही नाथ विशाल शालके
शयान हो शुद्ध प्रसन्न भावसे
स-हर्ष देते उपदेश धर्मका
बिता रहे थे वह काल-यामिनी।

कुशी-निवासी श्रुति-विज्ञ भूपसे
प्रशान्त प्रश्नोत्तर जो हुआ वहाँ,
मुमुक्षुओंके सब भाँति सर्वदा
विचारने योग्य अवश्यमेव है।

'यथार्थ क्या?' 'कर्म-प्रधान विश्व है;'
'विचार्य क्या?' 'केवल स्वीय धर्म ही;'
'भयावहा क्या?' 'पर-धर्म-वासना;'
'विधेय?' 'कर्तव्य;' 'विजेय?' 'देह है।'

'हितैषणा क्या?' 'जगकी समृद्धि ही,'
'सदैव क्या है परिहार्य?' 'पाप ही,'
'अधर्म क्या?' 'पीडन;' 'धर्म?' 'साधना;'
'अधिष्ठिता?' 'शक्ति;' 'अधीश?' 'ब्रह्म है।'

'अकार्य ?' 'हिंसा;' 'प्रभु-कार्य ?' 'दान है;'
'अदेय ?' 'निष्ठा;' 'अभिधेय ?' 'सत्य है;'
'प्रशस्य ?' 'चिन्ता निज देश-बन्धुकी;'
'रहस्य ?' 'निःश्रेयस-लाभ-युक्ति है।'

'अनादि क्या ?' 'जन्म;' 'अनन्त ?' 'मृत्यु है;'
'अनाद्यनन्ता ?' 'गति निर्विशेषकी;'
'प्रमाण क्या ?' 'सम्मत वेद-शास्त्रका;'
'विधेय क्या ?' 'पूजन देव-पितृका।'

शार्दूलविक्रीडित

"हेया है जगमें प्रपंच-रचना, श्रेया निकुंजावली,
देया संपति दीन-हीन जनको, ज्ञेया कथा शम्भुकी,
ध्येया प्रेम-प्रपत्ति है रसमयी, पेया सुधा मुक्तिकी,
जेया इन्द्रिय-शक्ति है, स्व-मति है नेया सदा ब्रह्ममें।"

द्रुतविलंबित

इस प्रकार तथागत प्रेमसे
स-मुद उत्तर देकर भूपको,
मनसि इन्द्रियज्ञान समेटके
मन किया लय सत्वर प्राणमें।

कर स्व-प्राण निमज्जित जीवमें,
निलय जीव किया निज रूपमें,
उदधि-बाष्प-समान खगोलमें
प्रभु स-देह तिरोहित हो चले।

अहह ! घोर असुन्दर काल भी
परम सुन्दरतामय हो गया,
सुगत अंतिम दर्शन दे यदा
सहित देह तिरोहित हो चले ।

जगत-दृश्य अदृश्य शनैः शनैः,
समय भी गत-भाव हुआ उन्हें,
पर न शिष्य निराश्रय-से लसे,
प्रकृति-निःस्वन नीरव हो चला ।

रवि तिरोहित हो रह-सा गया,
ग्रहण-युक्त हुआ द्विजराज भी,
गगन यों गुण-हीन बना तदा
कि वन-वैभव अ-स्वर हो गया ।

इस महाभयकारक कालमें
प्रकृत-निर्भय बुद्ध अभीत थे,
चमकती उनके मुखपै लसी
अमर-भेद-समुत्थित भावना ।

रजत-पत्र-समुज्ज्वल भालपै
छविमयी प्रभुता रत-नृत्य थी,
परम वैभव-पूर्ण समा रही
युगल लोचनमें अभिरामता ।

अमरता उनके प्रतिश्वाससे
तनु-प्रवेश तदा करने लगी
अमर कीर्ति विहाय नृ-लोकमें
चल दिये प्रभु यों निज धामको ।

त्वरित शब्द हुआ घन-नाद-सा
सब दिशा व्यनुनादित हो उठीं,
ध्वनिमयी बन नीरव रोदसी
परम दिव्य प्रकाशवती हुई।

लख पड़ा तब जो उस ज्योतिमें
वह अतीव अलौकिक दृश्य था,
लख पड़ी घन-वाहनकी ध्वजा
फहरती नभ-मंडलमें मुदा।

ककुभमें दश वारण भी लसे,
धरणिपै रथ देख पड़ा वही,
लख पड़ा वह उज्ज्वल चक्र भी,
पणव-आनक-गोमुख भी बजे।

फिर प्रशान्त हुई सब रोदसी
सकल संसृति धर्म-मयी हुई,
अमर-वृन्द सभी सुखमें सने,
बन गई गत-भार वसुन्धरा।

शार्दूलविक्रीडित

व्याप्ता है षटचक्र-मध्य जिनकी आत्मानुरूपा दशा,
शुद्धा वृत्ति हृदब्जमें परिगता, संप्राप्त-संसिद्धि जो,
जो पद्मासन बैठ ध्यान धरते नासाग्रमें दृष्टि दे,
वे योगीश्वर-रूप गौतम सदा पीडा हमारी हरें।

राकानायक निष्कलंक, मणि भी कार्कश्यसे मुक्त हो
तेजोराशि पतंग स्वीय पदसे पीयूष वर्षा करें,
तो भी नीरज, रत्न, और खगमें वैसी कहाँ योग्यता,
ऐसे वाद-विवाद-ग्रस्त जनकी सिद्धार्थ बाधा हरें ।

पुंजीभूत समस्त आर्त जनकी अभ्यर्थना बुद्ध हैं,
मूर्तीभूत अनूप शाक्य-नृपके सौभाग्य सर्वार्थ हैं,
एकीभूत रहस्य हैं निगमके, संसारके सार हैं,
श्वेतीभूत-स्वरूप शून्य विभुके साकार सिद्धान्त हैं ।

समाप्त

कठिन शब्दोंका कोश

अ—आ

अकांड=असमय ।
अकिंचना=दारिद्रा, धन-हीना ।
अकूपार=समुद्र, सूर्य ।
अग=वृक्ष, पेड़ ।
अग्रग=आगे जानेवाला ।
अगद=ओषधि, दवा ।
अघ=दुःख, पाप, राहु ।
अचेष्ट=निष्क्रिय ।
अजस्र=सदा, निरंतर ।
अजाज=बकरीका बच्चा ।
अजाजीव=बकरी चरानेवाला ।
अजिन=मृगका चर्म ।
अजिन-अंबर=तपस्वी, भक्त ।
अजिर=आँगन ।
अटवी=जंगल, वन ।
अणी=नोक, पैनी कोर ।
अद्वयवाद=दोनों वादोंसे इतर वाद ।
अद्रि=पर्वत, पहाड़ ।
अधः, अधो=नीचे ।
अधित्यका=अटारी, पर्वतकी उपरकी भूमि ।
अध्रुव=अनिश्चित ।
अनघ=शिव, पाप-रहित ।
अनभिसंग=बिना साथके ।
अनीक=सेना ।
अनुजीविनी=सेविका, दासी ।
अनुधावन=पीछे दौड़ना ।
अनुवीक्षण=बारीकीसे देखना ।
अनुष्ण=गर्मीसे रहित ।
अनूरु-सारथी=सूर्य ।
अनूरु-रथ=सूर्य ।
अपनोदन=दूर करना ।
अपांग=कटाक्ष ।
अब्ज=कमल, चन्द्रमा ।
अब्द=वर्ष ।
अभ्र=मेघ, बादल ।
अभ्रमु=ऐरावतकी स्त्री ।
अभर्तृका=विधवा, पति-हीना ।
अभावी=न होनेवाला ।
अभिचारिणी=तंत्र-मंत्र करनेवाली ।
अभिज्ञ=ज्ञाता ।
अभिजित्=एक नक्षत्र ।
अभीक्ष्ण=बारबार, लगातार ।
अभीषु=लगाम ।
अभ्यर्थना=प्रार्थना ।
अमरावती=देवताओंकी पुरी ।
अमृत=देवता, सुधा ।
अमिताभ=अमित तेजवाले, बुद्धदेव ।
अमोघ=अव्यर्थ ।
अयस=लोहा ।
अयुत=करोड़, असंख्य ।
अर्क=सूर्य ।
अर्कबन्धु=तेजमें सूर्यके भाई,—बुद्धदेव ।
अर्भक=लड़का, पुत्र ।
अरति=विरति, त्याग ।
अरुण-प्रिया=हंसिनी, सूर्यकी स्त्री ।
अर्यमा=सूर्य ।

अलक्त=लाल, महावर।
अलात=आतिशबाजीकी चर्खी।
अलाप=बात।
अलिंद=बरामदा।
अवदात=शुभ्र, श्वेत, सुन्दर, महान्।
अवर्ज्य=अवश्य होनेवाली।
अविकत्थन=अपने विषयमें कुछ न कहनेवाला, अनिन्द्य,—बुद्धदेव।
अविपाल=भेड़ें पालनेवाला।
अशन=खाना।
अशीति=अस्सी, ८०।
अशेष=सब।
अश्वत्थ=वटवृक्ष
अश्ववार=असवार, अश्वारोही।
असि=तलवार।
असु=प्राण।
अस्र=रक्त।
अहंता=अभिमान
अहार्य=पर्वत।
अक्ष=धुरी, आँख।
आजक=बकरा।
आज्य=घी।
आतापि=चील।
आतुर्य=आतुरता।
आदान=लेना, लेन-देन।
आनक=एक बाजा, मृदङ्ग।
आपुंख-मग्न=परोंतक देहमें घुसा हुआ।
आमय=रोग, क्लेश।
आमात्य=मंत्री।
आमलक=आँवला।
आमोद=सुगंध, आनंद।
आयत=दीर्घ, लम्बा-चौड़ा।
आयान=आना, आगमन।
आराम=वाटिका, बाग़।
आवर्त=चक्कर, भौंर।
आशा=दिशा।
आश्रय=भरोसा, अवलंब।
आसन्नता=निकटता।
आस्था=विश्वास।
आस्य=मुख, चेहरा।

इ—ई

इन्दीवर=कमल।
इभ-निभ=हाथीके समान।
इन्द्रगोपिका=वीरवधूटी।
ईदृशी=ऐसी।
ईषत्=थोड़ा।
ईशान=उत्तर-पूर्वका कोण।

उ—ऊ

उक्ष=बैल।
उटज=कुटी।
उत्कीर्ण=निकाले हुए, खोदे हुए।
उत्तरासंग=एक वस्त्र।
उत्तर-दान=मृत्युके पश्चातकी संपत्ति।
उत्स=सोता, झरना।
उत्संग=गोद।
उदग्र=उन्नत।
उदर्क=परिणाम।
उदया=पूर्वा, पूर्वदिशा।
उदीरिता=कही हुई, फेंकी हुई।
उद्भासिनी=प्रकाशिनी।
उद्‌भूत=दैवी, अस्वाभाविक।
उपकूल=समीप।
उपधान=तकिया।
उपयम=विवाह।
उपांशु=फुसफुसाकर, धीरेसे, समीपमें।
उभयत्र=दोनों ओर।
उरभ्र=मेढ़ा, मेष।

उरु=जंघा ।
उल्का=पुच्छल तारा ।
उर्वी=पृथ्वी ।
उसास=ठंढी साँस ।
उदीरिता=उत्पन्न की गई, निकाली गई ।
उस्रा=एक प्रकारकी गो ।
ऊर्मि=तरंग ।

ए-ओ-अं

एकाकी=अकेला ।
एण=मृग । एणी=मृगी ।
ओघ=समूह ।
अंक्रन=पहरेवालोंकी एक प्रकारकी बोली ।
अंगराग=देहमें लगानेका चूर्ण, पाउडर ।
अंघ्रि=पैर, जंघा ।
अंचित=पूजित, उत्थित ।
अंबर=कपड़ा, आकाश ।
अंश=कंधा ।
अंशु=किरण ।
अंशुक=रेशमी कपड़ा ।

क

ककुभ=दिशा ।
कच=बाल ।
कदन्न=रूखा-सूखा अन्न ।
कबन्ध=पानी, वर्षा ।
कबरी=वेणी ।
कमलासन=ब्रह्मा ।
कमलांगज=कमलसे उत्पन्न ।
कर्षिताग=दुबला ।
करक=ओला ।
कर्क=एक राशिका नाम,-केंकड़ा ।
करद=कर देनेवाला मनुष्य ।
करेणु=हाथीका बच्चा ।
कलविंग=एक छोटा पक्षी, गौरैय्या ।
कल्प=काल-परिमाण, तुल्य ।
कलाधर=चन्द्रमा, कलाकार ।
कलापी=मयूर ।
कवि=शुक्र, कविता करनेवाला ।
कष=कसौटी ।
कशा=कोड़ा, चाबुक ।
कातर=अधीर ।
कादम्बिनी=मेघमाला
कान्त=प्रिय, सुन्दर ।
कान्तार=वन, जंगल ।
कार्पण्य=भीरुता, कृपणता ।
कारिका=गहरे दार्शनिक विचारयुक्त कविता, गीत, संगीत ।
कारु=बढ़ई ।
काशिनी=प्रकाशिनी ।
कासार=तालाब ।
किंजल्क=पराग ।
किरीटी=राजा, अर्जुन ।
किसलय=पत्ते, पत्र ।
कीलाल=जल, मृगजल ।
कुंचित=टेढ़ा ।
कुमुद्वती=कुमुदिनी ।
कुन्त=भाला, नेज़ा ।
कुंतल=बाल ।
कुलाय=घोंसला ।
कुलाल=कुम्हार ।
कुशेशय=कमल ।
कोक=चकवा-चकई ।
कोकनद=कमल ।
कोदंड=धनुष ।
कोयष्टिका=टिटिहरी ।
क्रेन्कार=हंसकी बोली ।
क्रोड़=गोद ।

कौश=रेशम ।

कौशेय=रेशमी ।

कृत्ति=त्वचा, खाल ।

कंथा-शेषा=केवल चिथड़े पहने हुए ।

ख

खचित=खोदा हुआ, चित्रित ।

खड्गी=तलवारवाले ।

खनि=खान, आकर ।

खश्वास=वायु ।

खादित=खाये हुए ।

ग

गणक=ज्योतिषी ।

गद=रोग

गरिष्ठ=बड़ा

गरीयसी=बड़ी

गरुत्मान=पक्षी ।

गवय=वनकी गाय ।

गवाक्ष=जालीदार खिड़की ।

गह्वर=खंदक, गुफा ।

गारुड=पन्ना ।

गिरि-कन्यका=पार्वती ।

गिरिश=शिव ।

गीर्वाण=देवता ।

गुण=रस्सी, गुण ।

गुल्फ=पाँवका टखना ।

गुंफ=मूँछ, डाढ़ी ।

गोचर=इन्द्रियगम्य ।

गोपन=छिपाना ।

गोमायु=गीदड़ ।

गोमुख=एक बाजा ।

ग्राम=समूह ।

ग्राव=कंकड़, पत्थर ।

घ

घनसार=चंदन ।

घनान्त=शरद् ऋतु ।

घंटा-मार्ग=राजमार्ग, आम रास्ता ।

च

चक्र-वात=वायुका बगूला ।

चटक=एक छोटा पक्षी, चिड़िया ।

चतुर्हायनी=एक प्रकारकी उत्तम गाय ।

चमूरु=मृग, काला मृग ।

चरम=अन्तिम ।

चर्व्यमाण=खाया जाता हुआ ।

चरिष्णु=चलनेवाला ।

चामीकर=सोना ।

चंक्रम=बार-बार चलना ।

चन्द्रशाला=चटशाल ।

चन्द्रहास=तलवार, चाँदनी ।

चिकुर=बाल ।

चिरंतन=सनातन ।

चैल=वस्त्र ।

छ

छद्म=कपट ।

ज

जगदेकहेतु=संसारका एक-मात्र कारण ।

जरठा=वृद्धा ।

जरा=बुढ़ापा ।

जव=वेग, तेज़ी ।

जलदागम=वर्षाका प्रारंभ ।

जलधिजा=लक्ष्मी ।

ज्वरा=मृत्यु ।

ज्वराधाम=परलोक ।

जागरूक=जाननेवाला ।

जातरूप=सोना ।

जाती=एक प्रकारका पुष्प, चमेली ।
जाया=स्त्री ।
जिज्ञासु=जाननेकी इच्छा रखनेवाला ।
जीमूत=मेघ ।
जीवक=साँप नचानेवाला ।
जीविता=जीवन ।
जीवन=पानी ।
जेया=जीतने योग्य ।

झ

झग्व (ष)=मछली ।
झटिति=शीघ्र ।
झापस=झाड़ोंसे छिपी हुई भूमि ।
झंकृति=शब्द, आवाज़ ।
झंझा=तीव्र वायु ।

ड

डिंडिम=एक बाजा ।

त

तथागत=बुद्धदेव ।
तन्तुवाय=जुलाहा ।
तन्द्रा=निद्रा ।
तनुरुह=रोयाँ, रोम ।
तनूज=पुत्र ।
तपन=सूर्य ।
तामिस्रहा=सूर्य ।
तमी=रात्रि ।
तल्प=बिछौना, पलंग ।
त्वदीय=तुम्हारा ।
त्वरित=शीघ्र ।
तादात्म्य=तल्लीनता ।
तार=ऊँचा ।
तितिक्षा=त्याग करनेकी इच्छा ।
तिमिंगिल=एक बड़ी मछली ।
तिरोहित=अस्त, दृष्टिसे बाहर ।
त्रिदिवेश=इन्द्र, देवतागण ।
त्रियामा=रात्रि ।
त्विषा=प्रकाश, ज्योति ।
तुरीया=चतुर्थावस्था ।
तुषार=पाला, बर्फ ।
तुहिन=हिम ।
तुहिन-दीधिति=चन्द्रमा ।
तुहिन-धूम=कुहरा ।
तूणीर=शरोंका कोष ।
तैलाभ्यंगा=तेलसे भीगी हुई ।
तोम=स्तोम, ढेर ।
तोरण=दरवाजेकी मेहराब ।

द

दक्ष=एक प्रजापति । कुशल ।
दयित=प्रिय ।
दर्भ=कुश ।
दव (दाव)=वनकी अग्नि ।
द्वन्द्वातीत=दोनोंसे पर, अलग ।
द्विज=पक्षी, दाँत, ब्राह्मण ।
द्विजिह्व=साँप ।
द्विफाल=दो भाग ।
द्विरद=हाथी ।
द्विरेफ=भ्रमर ।
द्वैध=दो प्रकारका ।
दाम=रस्सी ।
दारिका=कन्यका ।
दाक्षिण्य=अनुकूलता ।
दिविष्ट=स्वर्ग ।
दीधिति=किरण ।
दीर्घिका=झील, हौज ।
दुरत्या=न पार करने योग्य ।
दुरित=पाप, क्लेश ।

द्रुत=शीघ्र ।
दुर्विदग्धता=अपांडित्य, मूर्खता ।
दोला=हिंडोला ।
दंतवास=होठ ।
दंशक=काटनेवाला ।

ध

धन्वी=धनुष चलानेवाला ।
धमनी=नस ।
धमिल्ल, धम्मिल्ल=बाल, वेणी ।
धव=पति, एक वृक्ष ।
ध्वान्त=अन्धकार ।
धाता=ब्रह्मा ।
धान्य=अनाज
धानुष्क=धनुष चलानेवाला ।
ध्रुव=निश्चय, अचल ।
धुरीण=धारण करनेवाला ।
धुर्य=मंत्री ।
धूमिका=धूम-राशि ।
धूलिध्वज=वायु ।
धौत=धोया हुआ ।
धृति=धैर्य ।

न

नक्र=मगर, नाक ।
नटसाल=न निकलनेवाला उलटा तीर ।
नतांगी=झुकी हुई देहवाली ।
नभ=श्रावण, आकाश ।
नमित=झुका हुआ ।
नय=न्याय ।
न्यग्रोध=वट-वृक्ष ।
नाग=हाथी ।
नामधेय=नाम ।
निकूंजित=पक्षियोंके कूजनका शब्द ।
निकेतन=घर ।
निखात=खाई ।
निगीर्यमाण=निगला जाता हुआ ।
निचय=राशि ।
निचिति=राशि, समूह ।
नितंबिनी=स्त्री ।
निधन=मृत्यु ।
निभ=सदृश
निमीलित=बंद ।
निरय=नरक ।
निरामिष=मांस न खानेवाला ।
निर्वाण=मुक्ति ।
निर्वृत्ति=त्याग, वैराग्य ।
निर्घोष=ध्वनि, शब्द ।
निर्बन्ध=मोक्ष ।
निर्झरिणी=नदी ।
निर्वृपण=नपुंसक ।
निष्ठा=विश्वास ।
निशित=तेज़, तीक्ष्ण ।
निःसृत=निकला हुआ ।
निःश्रेयस=मुक्ति ।
निहित=छिपा हुआ ।
नीड़=घोंसला ।
नेय=वहन करने योग्य ।
नैश=रात्रिका ।

प

पक्ष्म=आँखकी पलक ।
पटु=एक प्रकारका रत्न ।
पणव=एक बाजा ।
पण्यविक्रयी=बनिया, व्यापारी ।
पण्यवीथिका=बाज़ार ।
पत्तन=नगर, घर ।
पतंग=सूर्य ।
पदक्रमा=पैरोंका संचालन ।

पदत्राण=जूता ।

पदाति=पैदल ।

परभृत=कोकिल। ।

परा=श्रेष्ठ, युक्त, चरम ।

परिणय=विवाह ।

परिवेश=घेरा, वृत्त ।

परिनिवर्तित=लौटना ।

परिप्लावित=डूबा हुआ ।

पर्ण=पत्ता, पत्र ।

पर्याय=समानार्थक ।

पर्य्याण=घोड़ेकी काठी ।

पर्य्यंक=पलंग, बिस्तर ।

पलित=बुड्ढी, गली, सड़ी ।

पलाशी=मांस खानेवाला, बाज पक्षी ।

पवमान=पवन ।

पश्यतोहर=भ्रमर ।

प्रणय=प्रेम ।

प्रतिकार=बदला ।

प्रत्यागम=लौटकर आना ।

प्रत्यन्त=पीछेवाले ।

प्रत्युष, प्रत्यूष =प्रभात ।

प्रतनु=दुबला ।

प्रतानिनी=लता ।

प्रतिहार=दरवाज़ा ।

प्रथमा दिशा=पूर्व दिशा ।

प्राथित=उत्तम ।

प्रदीप-दर्शिनी=दीपके समान उज्ज्वल दिखाई देनेवाली स्त्री ।

प्रपत्ति=भक्ति ।

प्रभूत=बहुत ।

प्रमदा=स्त्री ।

प्रयाण=जाना ।

प्रवहणी=सवारी, वाहन ।

प्रसह्य=ज़बरदस्ती ।

प्रसाधन=सवाँरना ।

प्रसूतिनी=माता ।

प्रसून=उदरस्थ शिशु, फूल, कली ।

प्लवंग=बन्दर ।

पाटल=गुलाब ।

पांडुर=पीला ।

पातित=गिराये हुए ।

पाथेय=रास्तेका खाना, कलेवा ।

पादुका=खड़ाऊँ ।

पायस=खीर ।

पारद=पारा ।

प्राकार=खाई ।

प्राची=पूरब ।

प्रासाद=महल ।

पांशुल=मैला, भद्दा ।

पिपासु=प्यासा ।

पिंग, पिंगल=बादामी, पीलापन लिये हुए ।

पीठिका=स्थान ।

पीयूष=अमृत ।

पुरुषोत्तम=विष्णु भगवान ।

पुलोमजा=इन्द्राणी ।

पुष्करी=हाथी ।

पुष्कल=बहुत अधिक ।

पुत्तली-श्यामता=आँखकी पुतलीका काला हिस्सा ।

पुष्पवती=रजस्वला, पुष्पवाली ।

पुंश्चली=दुश्चरित्रा स्त्री ।

पूषा, पूषण=सूर्य ।

पूय=पीब, सड़ा खून ।

पेलव=कोमल ।

पेशल=मुलायम ।

पौर=पुर-वासी ।

पंकिल=कीचड़से युक्त ।

पंगु=लँगड़ा।
पंचत्व=मृत्यु।
पंचशर=कामदेव।
पंचास्य=सिंह।

फ

फलक=एक अस्त्र।
फुफ्फुस=फेंफड़ा।

ब

बड़ेरे=बड़े।
बनी=दुलहिन।
बन्धूक=एक पुष्प।
बल=बलदेवजी।
बलाक=बगुला।
बलीयसी=बलवती।
बिस=कमलकी डंडी।
ब्रज=समूह।

भ

भगण=तारागण।
भद्र=सज्जन, श्रेष्ठ।
भवती=आप।
भान=सुधि, ज्ञान।
भास्विता=तेजस्विता।
भूति=विभूति, शोभा।
भूभृत्=पहाड़।
भूर्ज=भोज-पत्र।
भोग=साँपका फन।

म

मकरकेतन, मकरध्वज=कामदेव।
मक्ष=माया, क्रोध।
मत्तकाशिनी=अत्यन्त मोहक स्त्री, प्रमदा।
मदालसा=मदसे अलस।
मदीय=मेरा।
मधूक=महुवा।
मनसि=मनमें।
मयूख=किरण।
मरन्द=पराग।
मलीमसा=मैली।
मह=यज्ञ, उत्सव।
महिषी=रानी, भैंस।
महिम=बड़प्पन,-उच्चताका गर्व।
महीयसी=बड़ी।
मागध=एक जाति।
मातरिश्वा=वायु।
मातंगवती=जिसमें हाथी अथवा भंगी नहाते हों।
मानसावास=मान-सरोवरमें रहनेवाला।
मारुत=वायु।
मार्गण=खोज करना, राह देखना।
माहेयी=एक प्रकारकी उत्तम गाय।
मिहिर=सूर्य।
मीलन=बन्द करना।
मीलित=बन्द।
मुखर=शब्द।
मुद=आनंद।
मुद्रा=पहरेवालोंकी एक बोली।
मुद्रित=अंकित।
मुषा=सोना-चाँदी गलानेका बर्तन।
मुष्टिक=घूँसा, एक राक्षस।
मेचक=नीला।
मेदुर=मुलायम, अधिक।
मेष=मेढ़ा।
मौञ्जी=मूँजकी रस्सी।
मंगल्य=एक वृक्ष।
मंदार=एक वृक्ष, धतूरा।
मृगांक=कपूरका वृक्ष।
मृगांगजा=हरिणी।

मृग-दंशक=कुत्ता।

मृगव्य=शिकार।

मृग-वाहन=वायु।

मृणालिनी=कमलिनी।

य

यकृत=शरीरका एक अंग, जिगर।

यक्ष-वृक्ष=वट-वृक्ष।

यक्षेश=कुबेर।

याग=यज्ञ।

यावच्छक्य=जितना शक्तिमें हो।

युग=बैलके कंधेपरका जुआ।

युग्म=जोड़ा।

र

रक्तिम कृत्तिकी=लाल त्वचा,-चमड़ेवाली।

रणन=बजना।

रतीश=कामदेव।

रथांग=चकवा-चकई।

रद=दाँत।

रन्ध्रानुसारी=छिद्रान्वेषी।

रभस=एकाएक।

रय=रस्सी, डोरी।

रस=जल, सारांश।

रसा=पृथ्वी।

रागवती=लाल, प्रेमपूर्ण, वासनावाली।

राजि=श्रेणी, माला।

राजीव=कमल।

रुचि=शोभा।

रोदसी=पृथ्वी और आकाशका मध्यभाग।

रोमन्थ=जुगाली।

रोलम्ब=मक्खी।

रौप्य=चाँदी।

ल

ललाटिका=बिन्दी।

ललाम=सुन्दर, आभूषण।

लाविता (प्लवंग-)=बन्दरोंकी उछलकूदसे उत्पन्न।

लिप्सा=पानेकी इच्छा।

लुब्धक=बहेलिया।

लुलाप=भैंसा।

लोरी=बच्चोंको सुलानेका गीत।

व

वक्र=दुष्ट, धूर्त, बदमाश।

वज्रतुंड=गीध।

वनेचर=जंगलमें रहनेवाले।

वप्र=पहाड़का उतार, टीला।

वपुष=देह।

वरिष्ठ=श्रेष्ठ।

वरूथ=समूह।

वरेण्य=श्रेष्ठ।

वरोरु=सुंदर जंघावाली स्त्री।

वरंडक=हौदा।

वर्तुल=गोल।

वर्हिण, बर्हिण=मयूर।

वल्गा=लगाम।

वलय=हाथका आभूषण।

वल्लकी=वीणा।

वलीवर्द=बैल।

वसति=बस्ती, नगर।

वसा=चरबी।

वसु=आठ।

व्यसनोदय=चढ़ती-पड़ती।

वागीश्वरी=सरस्वती।

वागुरा=जाल।

वाचिक=संदेसा।

वाटी=वाटिका, बाग ।
वामनीभूत=छोटी हो गई हुई ।
वायक=बुननेवाला ।
वार-वधू=गणिका, वेश्या ।
वारण=हाथी ।
वारेश=सूर्य ।
वास=कपड़ा ।
वासव=इन्द्र ।
विक्षत=चोट लगी हुई ।
विग्रह=शरीर ।
विडंबना=अपमान ।
वितान=शामियाना ।
विधेय=करने योग्य ।
विनिगूढ़=छिपा हुआ ।
विपर्यय=उलट जाना ।
विपश्चित=पंडित ।
विपाक=फल ।
विपंचिका=वीणा ।
विप्रयुक्ता=विरहिणी ।
विभ्रम=विलास, शोभा ।
विभावती=प्रकाशवती ।
विभावना=भावना, विचार ।
विमार्जन=मिटाना, मलना ।
विराव=उच्च शब्द ।
विरुद=यश ।
विसार=मछली ।
वेणी=चोटी ।
वेष्ठित=लिपटा हुआ ।
वैदेह=सूदपर रुपया देनेवाला ।
वैनतेय=गरुड पक्षी ।
वैश्वानर=अग्नि ।
व्यजन=पंखा ।
व्यामोह=मोह ।
व्याहृत=फैला हुआ ।
व्याहृति=वाणी ।
वृक=भेड़िया ।
वृक्ष-शायिका=गिलहरी ।
वृत्त=हाल, समाचार ।
वृषभ-केतन=शिवजी ।
वृष-भानु=गर्मीका तेज़ सूर्य ।
वृहती=बड़ी ।

श

शकजाति=कविने 'शाक्य' के स्थानपर प्रायः 'शक'का प्रयोग किया है ।
शकल=खंड ।
शकुन्त=पक्षी ।
शकुनि=पक्षी ।
शतपत्र=कमल ।
शयन=पलंग ।
शयान=लेटा हुआ ।
शर्वाणी=कल्याणी, शक्ति ।
शराव=प्याला ।
शरास (न)=धनुष
शलभ=छोटे छोटे कीड़े ।
शव=मृत शरीर ।
शाक्त=शक्तिको सर्वोपरि माननेवाला शक्तिशाली ।
शाखी=वृक्ष ।
शाण=पैना करनेवाली, शान ।
शाद्वल=हरी-भरी भूमि ।
शारेय=शारिपुत्र, बुद्धदेवके एक शिष्य ।
शालिमा=ओज, प्रभा, शालीनता ।
शाव (क)=बच्चा ।
शास्ता=उपदेश देनेवाले, बुद्धदेव ।
शाश्वती=सनातनी ।
शिलीमुख=भ्रमर ।

शिक्थ-तुल्य=मोम सरीखा।
शिव=कल्याण।
शिञ्जिनी=धनुषकी डोरी।
शिरा=नीली रक्तवाहिनी नसें।
शिविका=पालकी।
शुक्ति-कुमार=मोती।
शुण्ड-वाह=हाथी।
शुभ्रांशु=चन्द्रमा
शुश्रूषा=सेवा चाकरी।
शेखरी=पहाड़।
श्येन=बाज़।
शैत्य=शीतलता।
शैलूषक=नट।
शैवाल=सिवार, जलकी घास।
शोणित=रक्त, लोहू।
शौरी=विष्णु।
श्यामल=पीपल वृक्ष।
श्येन=बाज़पक्षी
श्रीखंड=चन्दन।
श्रुति=कान, वेद।
श्रुवा=घी होमनेका हत्था, या करछला।
श्लथ=ढीला।
श्रृंगार=साज।
श्रृंगिणी=एक प्रकारकी गाय।

ष

षडभिज्ञ=बुद्धदेव।

स

सतत=सदा।
सद्यता=ताज़गी।
सपर्या=पूजा।
सम=गानेका एक अंग।
समवराधन=पूजा करना।
समवेत=इकट्ठा।
समष्टि=सामूहिक रूप।
समान-सू=एक भाँति उत्पन्न करनेवाली।
समावृत=घिरा हुआ।
समिध=हवन-सामग्री।
समीचीन=युक्त।
समुपयान=समीप जाना।
समूढ़=इकट्ठा हुआ।
समन्तभद्र=सब ओरसे कल्याणकारी,-बुद्धदेव।
समुदंचित=ऊपर उठाये हुए।
सर्वार्थ=बुद्ध भगवान्।
सर्वसहा=पृथ्वी।
सरि=चाल।
सहकार=आम्र-वृक्ष।
सहस्र-भानु=सूर्य।
साकल्य=हवन-सामग्री।
सानिध्य=निकटता।
सानु=चोटी।
सारथ=शहद।
सारंग=कामदेव, शिव, सज्जन, भ्रमर, मृग, धनुष, जल।
सित-भानु=चन्द्रमा।
सित-पिंगल=सिंह।
सितापांग=मयूर, चाँदनी, स्त्री, चमेली।
सितांग=चन्द्रमा।
सिन्धुवार=घोड़ा।
सीमंतिनी=स्त्री।
सुकर=सरल।
सुकम्बुकंठी=शंखसरीखी ग्रीवावाली।
सुखेन=सुखसे।
सुगत=बुद्धदेव।
सुम=पुष्प।
सुमन=पुष्प।

सुरभि=सुगंध, गाय ।
सुरा=एक प्रकारकी गाय ।
सुरापगा=गंगाजी ।
सुवृत्त=गोल, सुन्दर चरित्रवाला ।
सुश्रूषा=सुननेकी इच्छा करनेवाले ।
सूत=एक जाति, रथ चलानेवाला ।
सूत=तागा ।
सूनु=लड़का ।
सेनानी=सेनापति ।
सैकत=बालूसे युक्त ।
सैन्धव=घोड़ा ।
सैरन्ध्री=नौकरानी ।
सोत्क्रोश=स-शब्द ।
सोपान=सीढ़ी ।
सौध=महल ।
संक्रम=चलना ।
संचेष्टित=जगा हुआ ।
संजीवन=जिलाना ।
संपुटी=बन्द कोश ।
संभ्रमसारिणी=चकरानेवाली ।
संभ्रम=गौरव, सिटपिटाना ।
संभार=पालन ।
संयत=शासित ।
संसृति=जगत ।
संश्लेष=चिह्न, इशारा ।
संश्रय=आश्रय
संहति=समूह ।

स्फुलिंग=आगकी लपट ।
स्तमित=बन्द ।
स्थपति=कारीगर, राज ।
स्नायु=नसें ।
स्नेह=तैल, प्रेम ।
स्मर=कामदेव ।
स्रग=माला ।
स्रावक=झड़नेवाला ।
स्रोतस्विनी=नदी ।
स्वत्व=अधिकार ।
स्वाहा=अग्निकी स्त्री ।

ह

हय=घोड़ा
हरि=विष्णु, सिंह ।
ह्रदोपविष्टा=तालाबपर बैठी हुई ।
ह्रादिनी=तालाब ।
हिमाहार्य=हिमालय ।
हिरण्य=सोना ।
हेति=अस्त्र, छुरी ।
हेषा=घोड़ेका शब्द ।
हंस=सूर्य, एक पक्षी ।

क्ष

क्षपा=रात्रि ।
क्षान्ति=क्षमा ।
क्षीरोदन=खीर ।
क्षोणी=पृथ्वी ।
क्ष्वेड=गरल, विष ।

*

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	श्लोक	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३९	४	४	द्रत	द्रुत
४८	२-४	२-३	उद्भुत	अद्भुत
५२	१	४	विशाद	विषाद
५६	१	३	साम्राज्ञि	सम्राज्ञि
८२	१	२	सरु	सरि
८६	१	१	तोरणदि	तोरणादि
८६	३	४	सुवासान्तिकता	सुवासन्तिकता
९५	२	३	सुमुन्नत	समुन्नत
१३५	३	४	हुई	हुआ
१३७	१	१	प्रागाढ	प्रगाढ
१९०	२	१	कीकाल-स्वरूप	कीलाल-स्वरूप
१९८	५	१	सान्त्वनाको	सान्त्वना दे
२११	३	२	सुमिष्ठ	सुमिष्ट
२११-१२	५-३	१	स्वादु-युक्त	स्वाद-युक्त
२१८	२	१	जोत्स्ना	ज्योत्स्ना
२२३	३	२	राजिती	राजती
२२३	५	१	निम्रगा	निम्नगा
२३७	२	४	लीं त	लीं द्रुत
२७१	२	३	सरुजी	सरुजकी

सूचना—कृपाकरके ग्रन्थमें इस शुद्धिपत्रके अनुसार संशोधन कर लीजिए और फिर इसे फाड़कर फेंक दीजिए। इनके सिवाय कुछ स्थलोंमें डेश आदि चिह्न भी या तो ग़लत लग गये हैं और या छूट गये हैं।